आधुनिक विश्व का इतिहास

1453 ईस्वी से 1815 ईस्वी

इतिहास विभाग

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

विश्वविद्यालय मार्ग, तीनपानी बाईपास

हल्द्वानी-263139

ई-मेल info@uou.ac.in, http@//uou.ac.in

अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष

कुलपति

अध्ययन मण्डल के सदस्यों के नाम

प्रोफेसर गिरिजा प्रसाद पाण्डे , प्रोफेसर इतिहास एवं निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा**,** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय**,** हल्द्वानी
प्रोफेसर आर.पी. बहुगुणा, प्रोफेसर इतिहास एवं पूर्व निदेशक**,** दूरस्थ शिक्षा केन्द्र **,** जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय**,**दिल्ली
प्रोफेसर शन्तन सिंह नेगी, पूर्व विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग**,** एच.एन.बी. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय**,** श्रीनगर (गढ़वाल)
प्रोफेसर वी.डी.एस.नेगी, विभागाध्यक्ष इतिहास**,** एस.एस.जीना विश्वविद्यालय**,**अल्मोड़ा
डॉ. एम.एम.जोशी, एसोसिएट प्रोफेसर**,** इतिहास एवं समन्वयक इतिहास**,** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय**,** हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक- डॉ. मदन मोहन जोशी

ब्लाक एक
इकाई एक- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-301 से साभार
इकाई दो– उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-301 से साभार
इकाई तीन- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-301 से साभार
ब्लाक दो
इकाई चार - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-301 से साभार
इकाई पाँच – डॉ. जीतेश कुमार जोशी एवं उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-301 से साभार
इकाई छह - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-301 से साभार
ब्लाक तीन
इकाई सात - डॉ. जीतेश कुमार जोशी एवं उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-301 से साभार
इकाई आठ – उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-301 से साभार
इकाई नौ - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-301 से साभार
ब्लाक चार
इकाई दस – विकास जोशी एवं उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-301 से साभार
इकाई ग्यारह – उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-301 से साभार
इकाई बारह - विकास जोशी एवं उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-301 से साभार
ब्लाक पांच
इकाई तेरह – विकास जोशी , असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, इतिहास, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
इकाई चौदह – उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-301 से साभार
इकाई पन्द्रह डॉ. जीतेश कुमार जोशी , असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, इतिहास, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
इकाई सोलह उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-301 से साभार

आई.एस.बी.एन. :
कॉपीराइट : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
प्रकाशन वर्ष :

Published by : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

Printed at :

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथ्वा किसी अन्य साधन से पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इकाई एक

ईसाई धर्म एवं इतिहास चिंतन

1.1. प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 ईसाई इतिहास लेखन की परम्परा

1.3.1 प्रारम्भिक ईसाई इतिहास लेखन

1.3.2 सन्त अगस्ताइन (354-430 ईसवी)

1.3.3 सन्त अगस्ताइन के परवर्ती ईसाई इतिहासकार

1.4 ईसाई इतिहास लेखन की विशिष्टताएं

1.4.1 इतिहास में ईश्वरीय इच्छा की महत्ता

1.4.2 ऐतिहासिक बलों की दैविक प्रकृति

1.4.3 ईसाई इतिहास लेखन में तिथिक्रम तथा काल-विभाजन

1.4.4 ईसाई इतिहास लेखन के आधार-स्रोत के रूप में बाइबिल की महत्ता

1.5 ईसाई इतिहास लेखन के गुण व दोष

1.5.1 ईसाई इतिहास लेखन के दोष

1.5.2 ईसाई इतिहास लेखन के गुण

1.6 सारांश

1.7 पारिभाषिक शब्दावली

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1..1. प्रस्तावना

प्राचीनकालीन इतिहास लेखन (ग्रीको-रोमन, चीनी तथा भारतीय) की तुलना में मध्यकालीन इतिहास लेखन की प्रमुख विशेषता यह थी कि इसमें दैवीय विधान को महत्व दिया गया जिसमें कि व्यक्ति की भूमिका नाम मात्र की थी। मध्यकालीन, विशेषकर ईसाई इतिहास लेखन की परम्परा में धर्म को सर्वोपरि स्थान दिया गया और विधर्मियों पर ईसाइयत की विजय ने ईसाई इतिहास लेखन की परम्परा के लिए प्रेरित किया। ईसाई इतिहासकारों ने यहूदी धार्मिक ग्रंथों को मूल स्रोतों के रूप में स्वीकार किया। ईसाई धर्म के व्यापक प्रचार-प्रसार और रोमन साम्राज्य में सम्राट

कॉन्सटैन्टाइन प्रथम के काल के पश्चात उसकी प्रतिष्ठा में अपार वृद्धि के परिणामस्वरूप ईसाई धर्म-विज्ञान एवं बाइबिल में निहित सिद्धान्तों को समाविष्ट करके एक विशिष्ट ईसाई इतिहास लेखन की परम्परा का विकास हुआ। मध्यकाल में ईसाई सन्यासियों एवं पुरोहित वर्ग की इतिहास-लेखन में अत्यधिक अभिरुचि थी। उन्होंने यीशू मसीह, चर्च और उसके संरक्षकों तथा स्थानीय शासकों के राजवंशीय इतिहास के विषय में प्रचुर मात्रा में लिखा। प्रारम्भिक मध्यकाल में ऐतिहासिक रचनाओं का स्वरूप आख्यानों अथवा इतिवृत्तों के रूप में होता था जिनमें कि साल दर साल की घटनाओं का सिलसिलेवार वर्णन होता था। केवल तिथिक्रमानुसार घटनाओं के वृतान्त की इस शैली के लेखन में विशिष्ट घटनाओं और उनके कारणों के विश्लेषण की सम्भावना नहीं रह पाती थी। मध्यकालीन ईसाई इतिहास लेखन वास्तव में हेलेनिस्टिक व रोमन इतिहास लेखन परम्परा की ही अगली कड़ी है। ईसाई इतिहाकारों ने जिस काल को अपने लेखन का विषय बनाया, उस काल के परिवेश, परिस्थिति एवं अवस्थिति का सामान्यतः उनके लेखन पर प्रभाव पड़ा है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको मध्यकाल में ईसाई धर्मावलम्बियों द्वारा लिखित ऐतिहासिक ग्रंथों की विषय-वस्तु, इतिहास-लेखन के उनके उद्देश्य, ऐतिहासिक स्रोत एकत्र करने की उनकी तकनीक, उनके द्वारा प्रस्तुत जानकारी की प्रामाणिकता, उनके पूर्वाग्रह, इतिहास-लेखन के क्षेत्र में उनके योगदान आदि से अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- ईसाई इतिहास लेखन की परम्परा

2. ईसाई इतिहास लेखन की विशेषताएं।

3- ईसाई इतिहास लेखन में यीशू मसीह और बाइबिल की महत्ता।

4- ईसाई इतिहास लेखन के गुण व दोष।

5- परवर्ती इतिहास-लेखन को ईसाई इतिहास-लेखन की देन।

1.3 ईसाई इतिहास लेखन की परम्परा

1.3.1 प्रारम्भिक ईसाई इतिहास लेखन

मध्यकालीन इतिहास लेखन परम्परा में पश्चिमी इतिहास लेखन का विशिष्ट स्थान है। पश्चिमी इतिहास लेखन का प्रमुख केन्द्र बिन्दु ईसाई इतिहास लेखन की परम्परा है। जहां ग्रीको-रोमन इतिहास लेखन परम्परा में बुद्धि एवं विवेक का स्थान था, वहीं ईसाई इतिहास लेखन परम्परा में धर्म को सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया था। ईसाई इतिहासकारों ने विधर्मी इतिहास लेखन को शैतान की कृति कहकर उसकी भर्त्सना की थी किन्तु पूर्वकालीन इतिहास लेखन, विशेषकर ग्रीको-रोमन इतिहास लेखन व इतिहास-दर्शन ने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उनके लेखन को प्रभावित किया था। ईसाई इतिहास लेखन में 'ओल्ड टैस्टामैन्ट' को ऐतिहासिक स्रोत के रूप में प्रमुख स्थान दिया गया। प्रारम्भिक काल में ईसाई मतानुयायी यीशू मसीह के शिष्यों और धर्म प्रचारकों द्वारा उनके उपदेशों एवं उनके कृत्यों के वृतान्त पर निर्भर करते थे परन्तु धीरे-धीरे जब यीशू मसीह के समकालीन काल के गाल में समाते चले गए तो

इस श्रुत परम्परा का स्थान लिखित दस्तावेज़ों ने ले लिया। प्रथम तथा द्वितीय शताब्दी में लिखित 'गॉस्पल ऑफ़ मार्क', 'गॉस्पल ऑफ़ मैथ्यू', 'गॉस्पल ऑफ़ ल्यूक' तथा द्वितीय शताब्दी में लिखित 'गॉस्पल ऑफ़ जॉन' में यीशू मसीह के उपदेशों को ईश्वरीय वचन के रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'गॉस्पल ऑफ़ मार्क' (रचनाकाल 65-70 ईसवी) सम्भवतः प्रथम यहूदी-रोमन युद्ध के पश्चात लिखी गई थी। 'गॉस्पल ऑफ़ मैथ्यूज़ (रचनाकाल 80-85 ईसवी) का लक्ष्य यहूदियों के समक्ष यह बात रखने का था कि यीशू मसीह ही हमारा मुक्तिदाता मसीहा है और वह मोज़ेज़ से भी महान है। 'दि गॉस्पल ऑफ़ ल्यूक' (रचनाकाल 85-90 ईसवी) और 'ल्यूक एक्ट्स' को सभी गॉस्पल्स में साहित्यिक दृष्टि से सबसे उत्कृष्ट और कलात्मक माना जाता है। अन्त में 'गॉस्पल ऑफ़ जॉन' (रचनाकाल दूसरी शताब्दी) का उल्लेख आवश्यक है जिसमें यीशू मसीह को दिव्यवाणी का सन्देश वाहक बताया गया है। इसमें यीशू मसीह स्वयं अपने जीवन के विषय में और अपने दिव्य अभियान के विषय में विस्तार से बोलते हैं। इसमें लॅज़ैरस के पुनरुत्थान जैसे चमत्कारों का भी उल्लेख है। 'जॉन ऑफ़ गॉस्पल' में यह दर्शाया गया है कि यीशू मसीह और उनके उपदेशों में आस्था रखने वालों की ही मुक्ति सम्भव है।

जोसेफ़स

जोसेफ़स की रचनाओं में यहूदी शासन काल के मैकाबीस, होस्मैनियन राज्यवंश तथा हीरोद महान के उत्थान तथा प्रारम्भिक ईसाई काल की जानकारी उपलब्ध है।

टैसिटस

टैसिटस के इतिवृत्त को हम पहला ज्ञात धर्म-निरपेक्ष इतिवृत्त कह सकते हैं। टैसिटस ने नीरो द्वारा ईसाइयों के उत्पीड़न का सजीव चित्रण किया है।

सेक्सटस जूलियस एफ़्रीकैनस (180-250 ईसवी)

सेक्सटस जूलियस एफ़्रीकैनस की 5 खण्डों की पुस्तक 'क्रोनोग्राफ़िया' को हम तिथि-क्रमानुसार वृतान्त की पहली रचना कह सकते हैं। एफ़्रीकैनस का यह विश्वास है कि यीशू मसीह के 500 वर्ष बाद ही संसार का विनाश हो जाएगा। एफ़्रीकैनस ने मूल स्रोतों के स्थान पर मेनेथो, बिरोसस, अपोलोडोरस, जोसेफ़स तथा जस्टस की रचनाओं को आधार बनाकर अपने ग्रंथ की रचना की है। इस दृष्टि से हम एफ़्रीकैनस की रचना को मौलिक रचना की श्रेणी में नहीं रख सकते।

यूज़िबियस (260-340 ईसवी) -

ग्रीको-रोमन परम्परा में बुद्धि व विवेक का सर्वोपरि स्थान था किन्तु ईसाई इतिहास लेखन की परम्परा में धर्म को सर्वोपरि स्थान दिया गया था। सिज़ेरिया के निवासी यूज़िबियस द्वारा सन् 324 के आसपास रचित प्रथम कलीसियायी इतिहास में लिखित स्रोतों का प्रचुर मात्रा में उपयोग किया गया। प्रथम शताब्दी से लेकर यूज़िबियस ने अपने समय तक ईसाई धर्म के विकास का तिथि-क्रमानुसार सिलसिलेवार इतिहास लिखा है। यूज़िबियस की रचनाओं में 'हिस्टोरिया एक्लेसियास्टिका', 'डिमॉन्सट्रेशन ऑफ़ दि गॉस्पल', 'प्रिपरेशन इवैन्जेलिका', 'डिस्क्रिपेन्सीज़ बिटवीन दि गॉस्पल्स' तथा 'स्टडीज़ ऑफ़ दि बाइबिकल टेक्स्ट' प्रमुख हैं। यूज़िबियस अपने ग्रंथों में प्लैटो तथा फ़िलो के ग्रंथों का उपयोग

करता है। वह ओक ऑफ़ मानेर की धार्मिक परम्पराओं का उल्लेख करता है तथा ओल्ड व न्यू टैस्टामेनट की समीक्षा करता है। रोमन सम्राटों, विशेषकर कॉन्सटैन्टाइन प्रथम के शासन काल, यहूदियों और ईसाइयों के मध्य सम्बन्ध और ईसाई शहीदों के विषय में

उसने विस्तार से लिखा है। यूज़िबियस सामाजिक एवं धार्मिक पहलुओं पर भी प्रकाश डालता है। ईसाई धर्म-विज्ञान में यह माना जाता है कि समय एक रेखा के रूप में ईश्वरीय योजना के अनुसार आगे बढ़ता है। चूंकि ईश्वरीय योजना में सभी समाहित होते हैं इसलिए ईसाई इतिहास लेखन का दृष्टिकोण सार्वभौमिक होता है। सिज़ेरिया के निवासी यूज़िबियस के चौथी शताब्दी में रचित चर्च सम्बन्धी इतिहास में प्रथम शताब्दी से लेकर उसके अपने समय तक ईसाई धर्म के विकास का तिथि-क्रमानुसार सिलसिलेवार इतिहास वर्णित है। यूज़िबियस के ग्रंथ 'कोनिक ग्रीक' भाषा में लिखे गए हैं और अब इनके लैटिन, सीरियिक तथा आर्मीनियन संस्करण भी उपलब्ध हैं। यूज़िबियस के ग्रंथों को हम ईसाई दृष्टिकोण से लिखे गए पहले सम्पूर्ण इतिहास-ग्रंथ कह सकते हैं। यूज़िबियस ने अपने ग्रंथों की रचना में अनेक धार्मिक दस्तावेज़ों, शहीदों के कृत्यों, पत्रों, पूर्व में लिखे गए ईसाई ग्रंथों के सार-संक्षेपों, बिशपों की सूचियों आदि का उपयोग किया है और उसने अपने ग्रंथों में ऐसे मूल स्रोत-ग्रंथों का उल्लेख कर उनके विस्तृत उद्धरण भी दिए हैं जो कि अब अन्यत्र उपलब्ध नहीं हैं। यूज़िबियस पर प्रायः यह आरोप लगाया जाता है कि वह जानबूझ कर तथ्यों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करता है और व्यक्तियों व तथ्यों मूल्यांकन के समय वह निष्पक्ष तथा तटस्थ नहीं रहता है।

सन्त एम्ब्रोज़ (340-497 ईसवी)

सन्त एम्ब्रोज़ ने सन्त अगस्ताइन के विचारों और उनके लेखन पर विशेष प्रभाव डाला था। उनकी रचनाओं में 'फ़ेथ टु ग्रैशियन ऑगस्टस', 'दि होली घोस्ट' तथा 'दि मिस्ट्रीज़' प्रमुख हैं।

1.3.2 सन्त अगस्ताइन (354-430 ईसवी)

मध्ययुगीन ईसाई इतिहास लेखन की परम्परा के प्रमुख प्रतिनिधि संत अगस्ताइन थे।

उन्होंने ऐतिहासिक लेखन में दैवीय घटनाओं को प्रमुखता दी थी। सन्त अगस्ताइन इतिहासकार, धर्म-विज्ञानी, दार्शनिक, शिक्षक एवं कवि थे। 'सिटी ऑफ़ गॉड' उनकी प्रमुख रचना है। सन्त अगस्ताइन ने ईश्वर की आज्ञा का पालन मनुष्य का परम कर्तव्य माना है। उनके अनुसार ईश्वर की आज्ञा का पालन करने वाले देवता व मनुष्य देव नगर में निवास करते हैं जब कि उसके विरोधी पाप नगर में रहने के लिए अभिशप्त हैं। अपने इस विचार की पुष्टि के लिए सन्त अगस्ताइन रोम के उत्थान और पतन का दृष्टान्त देते हैं। उनके अनुसार रोम का उत्थान ईश्वरीय अनुकम्पा के कारण हुआ परन्तु कालान्तर में जब रोम-वासियों ने अपने जीवन और विचारों में पाप, अन्याय व अनैतिकता को स्थान दिया तो उन्हें ईश्वरीय कोप का भाजन होना पड़ा जिसके फलस्वरूप रोम का पतन हुआ। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ईश्वर को भुला देने वालों अथवा उसकी आज्ञा का पालन न करने वालों को ईश्वर द्वारा दण्डित किया जाता है। सन्त अगस्ताइन की दृष्टि में राज्य की उत्पत्ति में कुछ भी दैविक नहीं है। ये मानव-निर्मित संस्था है अतः इसमें दोषों का होना स्वाभाविक है। जब इसमें अच्छाइयों का आधिक्य होता है तो इसका उत्थान होता है और जब इसमें बुराइयां घर कर जाती हैं तो इसका पतन होता है। छोटे से छोटे राज्यों से लेकर बड़े से बड़े साम्राज्यों तथा सभी संस्कृतियों के उत्थान

और पतन के साथ यही दैविक-नियम लागू होता है। ईश्वर कृत रचनाओं में सब कुछ निर्दाेष एवं परिपूर्ण होता है जब कि मानव-निर्मित रचनाओं में मौलिकता का अभाव व अपूर्णता होती है। कोई भी शासन-व्यवस्था निर्दोष व परिपूर्ण नहीं नहीं हो सकती परन्तु चर्च की रचना ईश्वर ने की है इसलिए वह दोषरहित व परिपूर्ण हो सकता है। 'सिटी ऑफ़ गॉड' एक धार्मिक साम्राज्य है। मानव-निर्मित साम्राज्य की स्थापना बिना रक्तपात के नहीं हो सकती जब कि ''सिटी ऑफ़ गॉड' अपना आधिपत्य बिना रक्तपात के स्थापित करता है। मानव-निर्मित राज्यों को अपने क्षण-भंगुर कानूनों के अनुपालन के लिए सैन्य दल की आवश्यकता होती है जब कि ईश्वर निर्मित राज्य में शाश्वत दैविक नियमों के अनुपालन हेतु किसी वाह्य बल की आवश्यकता नहीं होती है।

सन्त अगस्ताइन का इतिहास लेखन मुख्य रूप से धर्मनिर्पेक्ष एवं धर्मतन्त्रात्मक शक्तियों के मध्य संघर्ष की गाथा है जिसमें कि उन्होंने धर्मतन्त्रात्मक पक्ष का समर्थन किया है। सन्त अगस्ताइन के अनुसार ईश्वरीय आदेश का पालन करने वाले को स्वर्गलोक में वास करने का अधिकार मिलता है जब कि उसकी आज्ञाओं का उल्लंघन करने वाले को नर्क में रहने के लिए अभिशप्त होना पड़ता है। सन्त अगस्ताइन रोमन साम्राज्य के इतिहास का उल्लेख करते हुए यह बतलाते हैं कि उसका उत्थान प्रभु की कृपा के कारण हुआ किन्तु उसका पतन कालान्तर में पाप, अन्याय व अनैकिता के कारण अर्थात् ईश्वरीय आदेश की अवज्ञा के कारण हुआ। दृष्टान्त देते हुए सन्त अगस्ताइन के इतिहास लेखन की सबसे बड़ी कमी यह है कि वह घटनाओं को तोड़-मरोड़कर उनका प्रस्तुतीकरण इस प्रकार करते हैं कि उनका अपना मन्तव्य सिद्ध हो जाए। इन कमियों के बावजूद उनके ग्रंथ 'सिटी ऑफ़ गॉड' को प्लैटो के ग्रंथ 'रिपब्लिक', सर टॉमस रो के ग्रंथ 'उटोपिया' तथा बैकन के ग्रंथ 'अटलान्टिस' के समकक्ष रखा जाता है।

1.3.3 सन्त अगस्ताइन के परवर्ती ईसाई इतिहासकार

पॉलस ओरोसियस (380-420 ईसवी)

सन्त अगस्ताइन के शिष्य और इतिहास लेखन में उनके अनुयायी पॉलस ओरोसियस की मान्यता है कि विभिन्न समुदायों के भाग्य ईश्वर द्वारा ही निर्धारित होता है। ओरोसियस की सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुस्तक - 'सेवेन बुक्स ऑफ़ हिस्ट्री अगेन्स्ट दि पैगन्स' की रचना सन् 411-418 के मध्य हुई थी। इस ग्रंथ में मानव की सृष्टि से लेकर गॉलों द्वारा रोम के विनाश तक का इतिहास है। ओरोसियस के लेखन पर सन्त अगस्ताइन के अतिरिक्त हेरोडोटस लिवी तथा पोलीबियस की रचनाओं स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। ओरोसियस के ऐतिहासिक ग्रंथ में अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों तथा देशों का उल्लेख ही नहीं किया गया है। इस अपूर्णता के अतिरिक्त ओरोसियस के इतिहास गं्रथ का सबसे बड़ा दोष यह है कि वह जानबूझ कर यह प्रदर्शित करता है कि ईसाई धर्मावलम्बियों की तुलना में अन्य धर्मों के अनुयायियों को युद्ध, महामारी, अकाल, भू-कम्प, बाढ़, बिजली गिरना, तूफ़ान, आपराधिक घटनाओं आदि का अधिक सामना करना पडा है।

सन्त जेरोम (347-420 ईसवी)

सन्त जेरोम ने सन् 391 में पूर्व काल के 135 लेखकों के जीवन वृतान्त वाली पुस्तक 'दि विरिस इल्यस्ट्रिबस सिवे दि स्क्रिप्टोरिबस एक्लेसियास्टिक्स' की रचना की थी। उसकी अन्य रचनाओं में 'लाइफ़ ऑफ़ पॉल', 'दि फ़र्स्ट हेरमिट' तथा 'वल्गेट' प्रमुख हैं।

मार्क औरेलियस कैसीडोर (480-570 ईसवी)

इटली के निवासी मार्क औरेलियस कैसीडोर की रचनाओं 'वेराय', 'हिस्ट्री ऑफ़ गोथ' तथा 'हिस्टोरिया ट्रिपार्टिया' में ऑस्ट्रोगोथ काल के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन की झांकी मिलती है।

वेनरेबिल बेडे (672-735 ईसवी)

वेनरेबिल बेडे ने 'एक्लेसियास्टिकल हिस्ट्री ऑफ़ इंग्लिश पीपुल' में जूलियस सीज़र के काल से लेकर सन् 735 तक इंग्लैण्ड के धार्मिक एवं राजनीतिक इतिहास का वर्णन किया है।

1.4 ईसाई इतिहास लेखन की विशिष्टताएं

1.4.1 इतिहास में ईश्वरीय इच्छा की महत्ता

ईसाई इतिहास लेखन की परम्परा में घटनाएं उस रूप में नहीं देखी गईं, जिस रूप में वो घटित हुईं बल्कि उन घटनाओं को एक दैवीय आवरण पहना कर उन्हें ईश्वरीय इच्छा के रूप में प्रस्तुत किया गया। ईसाई धर्मावलम्बी इतिहास चिन्तकों की दृष्टि में ब्रह्माण्ड में होने वाली हर घटना के पीछे ईश्वर की इच्छा होती है। इसमें घटना के अच्छे या उसके बुरे होने का कोई भी अन्तर नहीं पड़ता है। ऐतिहासिक घटनाओं पर नियन्त्रण रख पाने की शक्ति मनुष्य में नहीं है। मनुष्य तो भगवान के हाथ में एक खिलौने की तरह है परन्तु उनसे खेलते समय ईश्वर उनमें से किसी पर भी अपना विशेष अनुराग अथवा कोप प्रदर्शित नहीं करता है। ईसाई इतिहास की परम्परा में इतिहास को एक नाटक माना गया है। ईसाई धर्मावलम्बी इतिहास चिन्तक इतिहास की चक्रीय प्रकृति में विश्वास नहीं रखते हैं। उनका यह विश्वास है कि संसार में घटित सभी घटनाओं की दिशा ईश्वर द्वारा ही निर्धारित की जाती है। ईश्वर को सभी घटनाओं की परिणति का पहले से ही ज्ञान होता है। ईश्वर ऐतिहासिक शक्तियों का दिशा-निर्देशन करता है अतः ऐतिहासिक शक्तियां सार्वभौमिक हैं। ईसाई धर्मावलम्बी इतिहास चिन्तकों के अनुसार केवल उन राष्ट्रों का उत्थान होता है जो दैविक नियमों का पालन करते हैं और जो राष्ट्र उनका पालन नहीं करते उनका पतन अवश्यम्भावी होता है।

1.4.2 ऐतिहासिक बलों की दैविक प्रकृति

ईसाई इतिहास लेखन की परम्परा में प्रकृति का भौतिक विकास महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि इसमें इतिहास को मनुष्य और ईश्वर के बीच सम्बन्धों का एक प्रवाह माना गया है। ईसाई इतिहास लेखन की परम्परा में इतिहास को एक नाटक माना गया है। इस नाटक के प्रथम अंक में आदम का स्वर्ग से पतन, पाप का प्रारम्भ तथा ईश्वर से विच्छेद है। इस नाटक के दूसरे अंक में यीशू मसीह का जन्म, उनके उपदेश, उनका सूली पर चढ़या जाना तथा उनका पुनरुत्थान है। इसके तीसरे अंक में चर्च की स्थापना तथा ईसाई धर्म का प्रचार है। इस नाटक के चतुर्थ एवं अन्तिम भाग में यीशू मसीह का पुनरागमन व ईसाई राज्य की स्थापना का वर्णन है।

ईसाई इतिहास चिन्तक ऐतिहासिक बलों की दैविक प्रकृति में आस्था रखते हैं। जो बल मनुष्य की समझ से परे होते हैं उन्हें दैविक कहा जाता है और उनका संचालन पूरी तरह ईश्वर द्वारा ही किया जाता है। इन दैविक बलों का प्रयोग स्थानीय अथवा क्षेत्रीय स्तर पर नहीं अपितु सार्वभौमिक रूप से किया जाता है।

1.4.3 ईसाई इतिहास लेखन में तिथिक्रम तथा काल-विभाजन

ईसाई इतिहास चिन्तकों ने विविध तिथिपरक घटनाओं के लिए ईसा के जन्म का प्रतिमान प्रस्तुत किया। उन्होंने केवल ईसाई तिथिक्रम को ही अपने समस्त ऐतिहासिक वृतान्तों के लिए पर्याप्त एवं परिपूर्ण माना है। घटनाओं का काल-निर्धाण करने के लिए उनका मापदण्ड केवल 'यीशू मसीह के जन्म से पूर्व' और 'उनके जन्म के पश्चात' का ही है। उनके लिए सभी ऐतिहासिक घटनाओं और सार्वभौमिक इतिहास का केन्द्र बिन्दु यीशू मसीह ही होते हैं। ईसाई धर्म-विज्ञान में यह माना जाता है कि समय एक रेखा के रूप में ईश्वरीय योजना के अनुसार आगे बढ़ता है। चूंकि ईश्वरीय योजना में सभी समाहित होते हैं इसलिए ईसाई इतिहास लेखन का दृष्टिकोण सार्वभौमिक होता है।

ईसाई इतिहासकारों ने समय का मुख्य रूप से दो कालों में विभाजन किया है - एक अंधकार का युग और दूसरा प्रकाश का युग। यीशू मसीह से पहले का काल अन्धकार का युग और उनके जीवनकाल व उनके बाद का काल (दोनों को मिलाकर) प्रकाश का युग माना जाता है। अन्धकार व प्रकाश युगों को विभिन्न उप-कालों में विभाजित किया गया है और फिर उनका, उनकी विशिष्टताओं के अनुरूप वर्णन किया गया है।

1.4.4 ईसाई इतिहास लेखन के आधार-स्रोत के रूप में बाइबिल की महत्ता

ईसाई धर्म में बाइबिल की केन्द्र-बिन्दु के रूप में महत्ता, ईसाई इतिहाकारों के लेखन में भी प्रतिबिम्बित होती है। शास्त्रीय युग के इतिहासकारों के विपरीत ईसाई इतिहाकारों ने अपने लेखन में मौखिक स्रोतों की तुलना में लिखित स्रोतों को अधिक वरीयता प्रदान की। ईसाई इतिहासकारों ने धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण किन्तु राजनीतिक दृष्टि से महत्वहीन व्यक्तियों को अपने लेखन में स्थान दिया। ईसाई इतिहासकारों ने धर्म और समाज के विकास को अपने लेखन में सर्वाधिक महत्व दिया।

1.5 ईसाई इतिहास लेखन के गुण व दोष

1.5.1 ईसाई इतिहास लेखन के दोष

1. **इतिहास को एक दैविक योजना के रूप में देखने की हठवादी प्रवृत्ति**

ईसाई इतिहासकार इतिहास में मनुष्य की स्वतन्त्र भूमिका को सर्वथा नकारते हैं। उनकी दृष्टि में नियति को अपने पौरुष से बदलने का दुःसाहस करने वाला हर व्यक्ति असफल होता है और पतन व विनाश के मार्ग पर अग्रसर होता है।

2. **आलोचनात्मक दृष्टिकोण का अभाव**

ईसाई इतिहास लेखन में आलोचनात्मक दृष्टिकोण का नितान्त अभाव है। वास्तव में परम्परा और तथ्यों की वैधता, विश्वसनीयता एवं तर्कसंगतता का आकलन करने में उनकी कोई अभिरुचि नहीं है और न ही मूल स्रोत सामग्री का पर्याप्त उपयोग करने की उनमें क्षमता है। इन कारणों से उनकी रचनाओं में प्रामाणिकता का अभाव है।

3. **इतिहास लेखन की आदर्श तकनीक की उपेक्षा**

तथ्यों की प्रामाणिकता की जांच और अपने दृष्टिकोण को यथासम्भव तटस्थ बनाए रखने के स्थान पर ईसाई इतिहास लेखन में दुराग्रहता एवं पूर्व निश्चित अवधारणा का दोष दिखाई देता है। ईसाई इतिहास लेखन का मुख्य लक्ष्य चर्च की अन्य धार्मिक संस्थाओं की तुलना में निर्विवाद श्रेष्ठता तथा यीशू मसीह के उपदेशों की कालजयी उपयोगिता सिद्ध करना है। ईसाई इतिहास लेखन अन्य धर्मावलम्बियों के अवश्यम्भावी पतन पर निरन्तर ज़ोर देता है।

4. **सामाजिक एवं आर्थिक कारकों की उपेक्षा**

ऐतिहासिक घटनाओं में सामाजिक एवं आर्थिक कारकों की नितान्त उपेक्षा ईसाई इतिहास लेखन की एक बड़ी कमज़ोरी है। हर घटना के पीछे ईश्वरीय इच्छा का हाथ होने का विश्वास, उन्हें इतिहास निर्माण में सामाजिक एवं आर्थिक घटकों की महत्ता स्वीकार करने से रोकता है।

5. **ऐतिहासिक स्रोतों के वर्गीकरण की दोषपूर्ण प्रणाली**

ईसाई इतिहास लेखन की ऐतिहासिक स्रोतों के वर्गीकरण की प्रणाली दोषपूर्ण है क्योंकि इसमें नयी स्रोत सामग्री एकत्र करने का कोई प्रयास नहीं किया जाता है और पहले से उपलब्ध इतिवृत्त, सुव्यस्थित इतिहास एवं जीवनी को स्रोत सामग्री के रूप में प्रयुक्त करते समय उनमें किसी प्रकार कोई अन्तर नहीं किया जाता है।

1.5.2 ईसाई इतिहास लेखन के गुण

1. **प्राचीन दस्तावेज़ों एवं अभिलेखों का संरक्षण**

ईसाई इतिहासकारों ने प्राचीन दस्तावेज़ों एवं अभिलेखों का संरक्षण करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। परवर्ती काल के इतिहासकारों को मध्यकाल से सम्बन्धित अपने ऐतिहासिक ग्रंथों की रचना में इससे बहुत सहायता मिली। वास्तव में मध्यकालीन इतिहास को जानने के लिए ईसाई इतिहास लेखन का अध्ययन नितान्त आवश्यक है।

2. **ऐतिहासिक क्रमबद्धता**

ईसाई इतिहासकारों ने तिथि-क्रमानुसार घटनाओं का वर्णन करने की एक नयी परम्परा का विकास किया।

3. **धार्मिक, राजनीतिक एवं सामाजिक इतिहास को महत्व**

ईसाई इतिहासकारों ने धार्मिक, राजनीतिक एवं सामाजिक विकास पर उपयोगी सामग्री उपलब्ध कराने में सफलता प्राप्त की है।

4. **इतिहास लेखन की मुस्लिम परम्परा पर ईसाई इतिहास लेखन का प्रभाव**

इतिहास लेखन की मुस्लिम परम्परा पर ईसाई इतिहास लेखन का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। ईसाई अवधारणा के अनुरूप ही इतिहास लेखन की इस्लामी अवधारणा में भी गॉड अर्थात् अल्लाह को ही सृष्टि का नियंता माना गया है। मुस्लिम इतिहास लेखन में भी ईसाई इतिहास लेखन की भांति तिथि-क्रमानुसार घटनाओं का वर्णन किया गया है।

अभ्यास अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. इतिहासकार यूज़िबियस की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. ईसाई इतिहास लेखन में तिथिक्रम तथा काल-विभाजन पर प्रकाश डालिए।

3. सन्त अगस्ताइन के ग्रंथ 'सिटी ऑफ़ गॉड' की समीक्षा कीजिए।

1.6 सारांश

मध्यकाल में ईसाई सन्यासियों एवं पुरोहित वर्ग की इतिहास-लेखन में अत्यधिक अभिरुचि थी। उन्होंने यीशू मसीह, चर्च और उसके संरक्षकों तथा स्थानीय शासकों के राजवंशीय इतिहास के विषय में प्रचुर मात्रा में लिखा। ईसाई इतिहास लेखन की परम्परा में धर्म को सर्वोपरि स्थान दिया गया। मध्यकालीन ईसाई इतिहास लेखन वास्तव में हेलेनिस्टिक व रोमन इतिहास लेखन परम्परा की ही अगली कड़ी है। प्रथम शताब्दी में लिखित 'गॉस्पल ऑफ़ मार्क', 'गॉस्पल ऑफ़ मैथ्यू', 'गॉस्पल ऑफ़ ल्यूक' तथा 'गॉस्पल ऑफ़ जॉन' में यीशू मसीह के उपदेशों को ईश्वरीय वचन के रूप में प्रस्तुत किया गया। जोसेफ़स, टैसिटस, एफ्रीकैनस ('क्रोनोग्राफ़िया' का लेखक) यूज़िबियस ('हिस्टोरिया एक्लेसियास्टिका' तथा स्टडीज़ ऑफ़ दि बाइबिकल टेक्स्ट' का लेखक) तथा सन्त एम्ब्रोज़ प्रारम्भिक ईसाई लेखन का प्रतिनिधित्व करते हैं। मध्ययुगीन ईसाई इतिहास लेखन की परम्परा के प्रमुख प्रतिनिधि संत अगस्ताइन हैं जिन्होंने कि ऐतिहासिक लेखन में दैवीय घटनाओं को प्रमुखता दी है। 'सिटी ऑफ़ गॉड' उनकी प्रमुख रचना है। सन्त अगस्ताइन के परवर्ती ईसाई इतिहासकारों में पॉलस ओरोसियस, सन्त जेरोम, मार्क औरेलियस कैसीडोर, तथा वेनरेबिल बेडे प्रमुख हैं। ईसाई इतिहास लेखन की विशिष्टताओं में इतिहास में ईश्वरीय इच्छा की महत्ता, ऐतिहासिक बलों की दैविक प्रकृति, इतिहास लेखन में तिथिक्रम तथा काल-विभाजन, इतिहास लेखन के आधार-स्रोत के रूप में बाइबिल की महत्ता सम्मिलित हैं। ईसाई इतिहास लेखन में इतिहास को एक दैविक योजना के रूप में देखने की हठवादी प्रवृत्ति, आलोचनात्मक दृष्टिकोण का अभाव, इतिहास लेखन की आदर्श तकनीक की उपेक्षा, सामाजिक एवं आर्थिक कारकों की उपेक्षा तथा ऐतिहासिक स्रोतों के वर्गीकरण की दोषपूर्ण प्रणाली प्रमुख दोष कहे जा सकते हैं।

1.7 पारिभाषिक शब्दावली

ग्रीको-रोमन इतिहास - संयुक्त रूप से यूनान तथा रोम का इतिहास

दैवी विधान - भगवान का कानून

हेलनिस्टिक - यूनानी

एक्लेसियास्टिका - चर्च सम्बन्धी

गॉस्पल - शुभ-सन्देश

पैगन - बहु-देवपूजक

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 1.3.1 प्रारम्भिक ईसाई इतिहास लेखन
2. देखिए 1.4.3 ईसाई इतिहास लेखन में तिथिक्रम तथा काल-विभाजन
3. देखिए 1.3.2 सन्त अगस्ताइन

1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

टॉयनबी, ऑर्नाल्ड, जे0 - ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री, 12 खण्ड, लन्दन, 1946

टॉयनबी, ऑर्नाड, जे0 - क्रिश्चियैनिटी अमॉन्ग दि रिलीजन्स ऑफ़ दि वर्ड, न्यूयॉर्क, 1956

श्रीधरन, ई0 - ए टैक्स्ट बुक ऑफ़ हिस्टोरियोग्राफ़ी, नई दिल्ली, 2013

1.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

कार, ई0 एच0 - व्हाट इज़ हिस्ट्री, लन्दन, 1962

कॉलिंगवुड, आर0 जी0 - दि आइडिया ऑफ़ हिस्ट्री, लन्दन, 1978

टॉम्सन, जे0 डब्लू0 - ए हिस्ट्री ऑफ़ हिस्टॉरिकल राइटिंग्स, न्यूयॉर्क, 1954

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

ईसाई इतिहास लेखन के गुण-दोषों की विवेचना कीजिए।

इकाई दो

रांके के विशेष संदर्भ में इतिहास दर्शन की निश्चयात्मक अभिगम

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 रांके से पूर्व के मध्यकालीन इतिहासकारों की समीक्षा

2.3.1 नेबूर से पूर्व के इतिहास-लेखन के दोष

2.3.2 बार्टहोल्ड नेबूर (1776-1831)

2.4 इतिहासकार लियोपोल्ड वॉन रांके

2.4.1 रांके का प्रारम्भिक जीवन तथा उसकी रचनाएं

2.4.2 रांके का इतिहास-दर्शन

2.4.3 रांके के इतिहास ग्रंथों के गुण एवं दोष

2.4.3.1 प्राथमिक स्रोतों पर आधारित वस्तुनिष्ठ इतिहास

2.4.3.2 राजनीतिक इतिहास को महत्व

2.4.3.3 राजनीतिक अनुदारता

2.4.3.4 इतिहास में धर्म का स्थान

2.4.3.5 इतिहास में व्यक्तित्व की भूमिका

2.4.3.6 सार्वभौमिक इतिहास

2.4.3.7 रांके की इतिहास विषयक अध्ययन-गोष्ठी

2.5 इतिहासकार के रूप में रांके का आकलन

2.6 सारांश

2.7 पारिभाषिक शब्दावली

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

मध्यकाल तक इतिहास को एक स्वतन्त्र विषय के रूप में मान्यता नहीं मिली थी। इतिहास को साहित्य अथवा दर्शन की एक शाखा ही माना जाता था। सत्रहवीं शताब्दी की वैज्ञानिक क्रान्ति ने इतिहास में आलोचनात्मक दृष्टिकोण का समावेश किया गया किन्तु अठारहवीं शताब्दी तक इतिहासकारों को यह समझ नहीं थी कि समय के साथ हर युग की विशिष्टताएं बदल जाती हैं। बार्टहोल्ड नेबूर (1776-1831) ने इतिहास को गौण विषय से एक स्वतन्त्र विषय के रूप में स्थापित करने में सफलता प्राप्त की थी। उसकी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ़ रोम' (1811-12) से आधुनिक ऐतिहासिक प्रणाली का जन्म माना जाता है। प्राचीन रोम के इतिहास के सन्दर्भ में बार्टहोल्ड नेबूर द्वारा ऐतिहासिक अन्वेषण की वैज्ञानिक प्रणाली का विस्तार कर लियोपोल्ड वॉन रांके ने इतिहास दर्शन की निश्चयात्मक अभिगम का विकास किया। नेबूर के बाद रांके को यह श्रेय दिया जाता है कि उसने इतिहास में व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक दृष्टि से आलोचनात्मक दृष्टिकोण को प्रचलित किया।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व के इतिहास लेखन की दुर्बलताओं से अवगत कराया जाएगा और यह बताया जाएगा कि किस प्रकार नेबूर तथा रांके ने इतिहास-दर्शन के निश्चयात्मक अभिगम का विकास कर आधुनिक इतिहास लेखन को एक वैज्ञानिक आधार देकर उसे एक स्वतन्त्र विषय के रूप में स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। इस इकाई में इतिहास के क्षेत्र में रांके के योगदान की विस्तार से चर्चा तथा समीक्षा की जाएगी। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- नेबूर तथा रांके से पूर्व इतिहास लेखन में व्याप्त दोष।

2- रांके के ऐतिहासिक ग्रंथों का विवेचनात्मक अध्ययन।

3- रांके की इतिहास दर्शन की निश्चयात्मक अभिगम तथा उसका परवर्ती इतिहासकारों पर प्रभाव।

2.3 रांके से पूर्व के मध्यकालीन इतिहासकारों की समीक्षा

2.3.1 नेबूर से पूर्व के इतिहास-लेखन के दोष

मध्यकाल तक इतिहास को एक स्वतन्त्र विषय के रूप में मान्यता नहीं मिली थी। इतिहास को साहित्य अथवा दर्शन की एक शाखा ही माना जाता था। सत्रहवीं की वैज्ञानिक

क्रान्ति ने इतिहास में आलोचनात्मक दृष्टिकोण का समावेश किया गया किन्तु इतिहास लेखन में अभी भी मुख्य रूप से तीन दोष विद्यमान थे -

1. **समय के अनुरूप परिवर्तन के प्रति अनभिज्ञता**

अठारहवीं शताब्दी तक इतिहासकारों को यह समझ नहीं थी कि समय के साथ हर युग की विशिष्टताएं बदल जाती हैं। वोल्तेयर तथा गिबन के मध्यकालीन इतिहास विषयक आकलन में इस समझ की कमी स्पष्ट दिखाई देती है।

2. **प्राथमिक स्रोतों की अनुपलब्धता तथा मान्य प्रणालीगत सिद्धान्तों की अनुपस्थिति**

ज्ञानोदय काल के ऐतिहासिक ग्रंथ कम विद्वत्तापूर्ण किन्तु अधिक व्याख्यात्मक थे। अनेक इतिहासकारों को को विस्तृत वर्णन देना पसन्द नहीं था जिस कारण उनके लेखन में असावधानी और तथ्यात्मक त्रुटियां आ जाती थीं। आमतौर पर प्राथमिक स्रोत, शासकों, ड्यूकों और चर्च के आधीन होते थे इस कारण इतिहासकार इतिहास लेखन के लिए प्रायः उपलब्ध सहायक ग्रंथों से ही प्राप्त सामग्री पर निर्भर करते थे। प्राथमिक स्रोतों की उपलब्धता की स्थिति में भी इतिहासकार मान्य प्रणालीगत सिद्धान्तों की अनुपस्थिति के कारण उनका समुचित उपयोग करने में असमर्थ होते थे।

3. **इतिहास के अध्ययन में संगठन एवं वर्गीकरण की कमी**

इतिहास को एक बौद्धिक विषय के रूप में कहीं भी स्वीकृत नहीं किया जाता था। सामान्यतः राजसत्ता के अपनी पसन्द के विद्वानों को ही इतिहास लेखन का दायित्व सौंपा जाता था। प्रमुख शैक्षिक संस्थाओं में इतिहास को एक स्वतन्त्र विषय के रूप में मान्यता नहीं मिली थी।

2.3.2 बार्टहोल्ड नेबूर (1776-1831)

नेबूर ने इतिहास को गौण विषय से एक स्वतन्त्र विषय के रूप में स्थापित करने में सफलता प्राप्त की थी। उसकी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ़ रोम' (1811-12) से आधुनिक ऐतिहासिक प्रणाली का जन्म माना जाता है। बीस भाषाओं तथा भाषा-शास्त्र के जानकार नेबूर ने प्राचीन रोम की राजनीतिक, विधि-सम्मत और आर्थिक संस्थाओं से सम्बद्ध प्राथमिक स्रोतों का गहन अध्ययन किया और फिर उनका आलोचनात्मक परीक्षण करने के बाद ही उसने 'हिस्ट्री ऑफ़ रोम' की रचना की। नेबूर इतिहासकार से

यह अपेक्षा करता है कि वह ईश्वर के समक्ष सर उठाकर यह कह सके कि - 'उसने न तो जानबूझकर असत्य का आश्रय लिया है और न ही तथ्यों की गहन खोज किए बिना उन्हें प्रस्तुत किया है।'

ग्रोटे, वेट्ज़, डिल्थी तथा मोमसेन ने नेबूर को सभी परवर्ती इतिहासकारों का मार्गदर्शक माना है। रांके अपने दृष्टिकोण एवं लेखन-प्रणाली पर नेबूर के ग्रंथ 'रोमन हिस्ट्री' में प्रयुक्त प्रणाली का ऋण स्वीकार करता है।

2.4 इतिहासकार लियोपोल्ड वॉन रांके

2.4.1 रांके का प्रारम्भिक जीवन तथा उसकी रचनाएं

इतिहास में आधुनिक शास्त्रीय अध्ययन और इतिहास लेखन की प्रणाली में पथप्रदर्शक की भूमिका 19 वीं शताब्दी के जर्मन विश्वविद्यालयों, विशेषकर, गॉन्टिनजेन विश्वविद्यालय ने निभाई थी। महानतम जर्मन इतिहासकार, वस्तुनिष्ठ इतिहास लेखन के जनक, मूल्यों से मुक्त वस्तुनिष्ठता के मसीहा तथा आलोचनात्मक इतिहास-विज्ञान के संस्थापक - लियोपोल्ड वॉन रांके ने इस क्षेत्र में सबसे उल्लेखनीय योगदान दिया है। यूनीवर्सिटी ऑफ लीपज़िग में रांके ने धर्म-शास्त्र एवं शास्त्रीय दर्शन की शिक्षा प्राप्त की थी। जिमनेशियम ऑफ़ फ्रैंकफ़र्ट में सात वर्ष अध्यापन कार्य करने के दौरान अचानक ही रांके की अभिरुचि दर्शन के स्थान पर इतिहास में हो गई। प्राचीन रोम के इतिहास के सन्दर्भ में बार्टहोल्ड नेबूर द्वारा ऐतिहासिक अन्वेषण की वैज्ञानिक प्रणाली का विस्तार कर रांके ने इतिहास दर्शन की निश्चयात्मक अभिगम का विकास किया।

बावेरिया के शासक मैक्समिलियन द्वितीय ने रांके से प्रभावित होकर ने बावेरियन एकेडमी ऑफ़ साइंस के अन्तर्गत 1858 में हिस्टोरिकल कमीशन की स्थापना की और रांके को उसका अध्यक्ष नियुक्त किया। अपने ग्रंथ 'दि हिस्ट्री ऑफ़ दि लैटिन एण्ड ट्यूटोनिक पीपुल्स फ्रॉम 1494 टु 1514' से ही रांके ने अपने समकालीन इतिहासकारों की तुलना में विविध ऐतिहासिक स्रोतों का अत्यधिक विस्तृत अध्ययन किया। इनमें संस्मरण, दैनन्दिनी, व्यक्तिगत एवं औपचारिक पत्र,सरकारी दस्तावेज़, कूटनीतिक विज्ञप्ति और प्रत्यक्षदर्शियों का आँखो-देखा वृतान्त सम्मिलित थे। रांके को इस बात का श्रेय दिया जाता है कि उसी के कारण परवर्ती काल की शैक्षिक संस्थाओं में सुव्यवस्थित अभिलेखीय शोध और स्रोत-समीक्षा के सिद्धान्तों को अपनाया जाना एक आम बात हो गई।

रांके इतिहास की महत्ता और उपयोगिता को स्वीकार करता है। 'हिस्ट्री ऑफ़ दि लैटिन एण्ड जर्मेनिक नेशन्स' में वह कहता है -

' आप यह समझते हैं कि इतिहास को भूतकाल का आकलन करने का तथा भविष्य के कल्याण हेतु वर्तमान को निर्दिष्ट करने का दायित्व दिया गया है। परन्तु मेरा ग्रंथ ऐसी कोई आशा नहीं रखता है। यह तो केवल यह प्रस्तुत करने की कोशिश करना चाहता है कि वास्तव में क्या घटित हुआ।'

रांके के पूर्ववर्ती इतिहासकार अपने ग्रंथों की रचना करते समय बिना अभिलेखीय शोध किए हुए पूर्व-रचित ग्रंथों की हू-ब-हू नकल कर लेते थे और स्रोत-विश्लेषण का आलोचनात्मक परीक्षण भी नहीं करते थे। रांके किस प्रकार किसी चयनित विषय पर शोध करता था? अपनी पहली ही रचना से लेकर अपनी अन्तिम रचना तक रांके ने अभिलेखीय शोध हेतु अथक परिश्रम किया था। अपने जीवन में उसने 50,000 दस्तावेज़ों को एकत्र किया था। अपने शोध में उसने गौण स्रोतों को भी महत्व दिया था। उसके निजी पुस्तकालय में 24,000 ग्रंथ थे।

1831 में उसने 'कॉन्सिपिरेसी ऑफ़ वेनिस-1618' की रचना की। इस पुस्तक में रांके ने यूरोपीय इतिहास के एक विशिष्ट क्षण (एक खास घटना) का, तथा उससे सम्बन्धित मूल स्रोतों का विश्लेषण किया है। रांके ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक परिदृष्य को इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान दिलाने में सफलता प्राप्त की। उसका कहना था - 'इतिहास में विशेष तथ्य का उल्लेख होता है किन्तु उसे व्यापक सन्दर्भ ही देखा जाना चाहिए।'

1832-36 में वह 'हिस्टोरिको.पोलिटिकल रिव्यू' का सम्पादक रहा। 1834 से 1836 के मध्य उसने बहु-खण्डी 'हिस्ट्री ऑफ़ दि पोप्स, देयर चर्च एण्ड देयर स्टेट इन दि सिक्सटीन्थ एण्ड सेवेन्टीन्थ सेन्चुरीज़' की रचना की। प्रोटैस्टेन्ट मत के अनुयायी होने के कारण उसे वैटिकन अभिलेखगार जाकर मूल स्रोतों का अध्ध्यन करने की अनुमति प्राप्त नहीं हुई किन्तु उसने इस हेतु रोम तथा वेनिस में उपलब्ध सभी निजी पत्रों का विस्तृत अध्ध्यन कर इस वृहद ग्रंथ की रचना की थी। रांके ने पोप के पद को यूरोपीय सभ्यता को एकीकृत करने का श्रेय दिया है। इस पुस्तक का सार प्रति-धर्मसुधार आन्दोलन था जिसका कि रांके पहला आधिकारिक व्याख्याकार था। जी0 पी0 गूच ने इस ग्रंथ में रोमन कैथोलिकों एवं प्रोटेस्टैन्टों के प्रति पूर्णरूपेण तटस्थ भाव रखने के लिए रांके की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

रांके ने 1839 से 1843 के मध्य 'जर्मन हिस्ट्री ऐट दि टाइम ऑफ़ दि रिफ़ॉर्मेशन' की रचना की। इस पुस्तक का विषय प्रोटेस्टैन्ट मत की उत्पत्ति है किन्तु गूच के अनुसार इसमें रांके ने मार्टिन लूथर की उपलब्धियों को बढ़ा-चढ़ा कर दिखाया है।

1847-48 में रांके ने 'नाइन बुक्स ऑफ़ प्रशियन हिस्ट्री' की रचना की जिसमें कि उसने एक महा-शक्ति के रूप में प्रशा के उत्थान पर प्रकाश डाला है। रांके हिंसक क्रान्ति का पोषक नहीं था क्योंकि वह ईश्वर प्रदत्त विधान में विश्वास रखता था। 1836 में लिखे गए अपने लेख - 'डॉयलॉग ऑन पोलिटिक्स' में उसने यह कहा है कि ईश्वर द्वारा हर देश को एक खास नैतिक चरित्र प्रदान किया गया है। उसने इन देशों के निवासियों से यह अपेक्षा की कि वो अपने-अपने राष्ट्र के विशिष्ट नैतिक चरित्र को उत्कृष्टता तक पहुंचाने के लिए हर सम्भव प्रयास करें। रांके तथ्यों की प्रस्तुति में भले ही तटस्थता का दावा करता हो किन्तु उसके इतिहास लेखन में उसकी अपनी पसन्द और नापसन्द की झलक मिल जाती है। ई0 एच0 कार 'व्हाट इज हिस्ट्री' में कहता है - 'तथ्य वही बोलते हैं जो इतिहासकार उनसे बुलवाता है।'

1859 में रांके ने इतिहास सम्बन्धित पत्रिका 'हिस्टोरिक पोलिट्ज़े ज़ीट्शरिफ़्ट' का प्रकाशन किया जिसका कि उद्देश्य इतिहास लेखन को वैज्ञानिक आधार प्रदान करना और ऐतिहासिक शोध की एक निश्चित एवं यथार्थवादी प्रणाली का प्रतिनिधित्व करना था। अपनी इस पत्रिका में रांके ने उदारतावाद पर प्रहार किए।

रांके ने यूरोप की सभी महा-शक्तियों का पृथक-पृथक इतिहास लिखा। इन इतिहास- ग्रंथों में 'दि ओटोमन एण्ड दि स्पैनिश एम्पायर्स इन दि सिक्सटींथ एण्ड सेविन्टींथ सेन्चुरीज़', 'हिस्ट्री ऑफ़ फ्रांस (1852-61)', 'हिस्ट्री ऑफ़ इंग्लैण्ड (1859-68)' तथा 'दि जर्मन पॉवर्स एण्ड दि प्रिन्सेज़ लीग (1871)' प्रमुख हैं। रांके ने अपने ग्रंथ 'हिस्ट्री ऑफ़ फ्रांस' में स्वयं जर्मन होते हुए भी फ्रान्सीसियों के प्रति किसी भी प्रकार की दुर्भावना नहीं रखी है। इस पुस्तक में उसने एकछत्र राजतन्त्र के अन्तर्गत हेनरी चतुर्थ के चरित्र और उसकी नीतियों, सली के आर्थिक सुधारों, रिशलू की महानता व निष्ठुरता, मैज़ेरिन का मिथ्याभिमान और उसका लालच तथा लुई चौदहवें के शासन की विस्तार से चर्चा की गई है। रांके ने लुई चौइहवें की विदेश नीति की भर्त्सना की है किन्तु कला, साहित्य और विज्ञान के विकास में उसके योगदान की सराहना की है। अपने जीवन के अन्तिम चरण में रांके ने सार्वभौमिक इतिहास 'यूनीवर्सल हिस्ट्रीः दि ओल्डेस्ट हिस्टोरिकल ग्रुप ऑफ़ नेशन्स एण्ड दि ग्रीक' की रचना की। रांके की एक अन्य महत्वपूर्ण रचना के अंग्रेज़ी अनुवाद का शीर्षक - 'दि सीक्रेट ऑफ़ वर्ड हिस्ट्रीः सेलेक्टेड राइटिंग्स ऑन दि आर्ट एण्ड साइंस ऑफ़ हिस्ट्री' है।

2.4.2 रांके का इतिहास-दर्शन

यूनानी इतिहासकार थ्यूसीडाइडीस (456-396 ईसा पूर्व) घटनाओं की तह तक जाकर तथ्यों को एकत्र करता था और वह तथ्यों को इतिहास की रीढ़ की हड्डी मानता था। यूनानी इतिहासकार पोलिबियस ने सत्य को इतिहास की आँख माना था, वह कहता था कि यदि इतिहास में से सत्य निकाल लिया जाए तो वह अंधा हो जाएगा। चीनी इतिहास लेखन में भी तथ्यों की यथार्थता पर विशेष बल दिया गया है। उन्नीसवीं शताब्दी में इतिहास लेखन के लिए प्रामाणिक तथ्यों की आवश्यकता पर ग्रैण्ड ग्राउण्ड ने लिखा था - 'मुझे तथ्य चाहिए और जीवन में हमको केवल तथ्यों की आवश्यकता है।'

रांके ने स्रोतों की विश्वसनीयता अर्थात् उनकी निश्चयात्मकता नितान्त आवश्यक माना है। उसकी दृष्टि में अनुमान का इतिहास लेखन में कोई स्थान नहीं है और अनुमान व निष्कर्ष का अधिकार केवल पाठक का है। उसका मानना है कि इतिहासकारों को सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने की प्रवृत्ति से बचकर रहना चाहिए। रांके इतिहास और दर्शन शास्त्र की घनिष्टता के भी विरुद्ध है। रांके तथ्यों को बुद्धि की कसौटी पर परख कर ही उनको इतिहास लेखन के लिए उपयुक्त मानता है। रांके की दृष्टि में इतिहासकार का यह धर्म है कि वह तथ्यों को उसी रूप में प्रस्तुत करे जैसे कि वो वास्तव में थे। इतिहास दर्शन की निश्चयात्मक अभिगम का जनक रांके प्राथमिक स्रोतों की प्रामाणिकता के बिना उन्हें स्वीकार नहीं करता है। विवेचनात्मक ऐतिहासिक विज्ञान का पथप्रदर्शक रांके कहता है - 'मैं उस समय की आहट सुन रहा हूँ जब हम आधुनिक इतिहास को विवरणों (भले वो समकालीन भी क्यों न हों) पर आधारित करने के स्थान पर प्रत्यक्ष-दर्शियों के बयानों और प्रामाणिक व मौलिक दस्तावेज़ों के आधार पर लिखेंगे।'

इतिहास के तकनीकी दृष्टिकोण के अनुसार प्रत्येक काल अपने परवर्ती काल की तुलना में पिछड़ा हुआ होता है। सत्रहवीं शताब्दी में इतिहासकारों का यह विश्वास था कि यह पाश्चात्य सभ्यता की नियति थी कि वह कपोल-कल्पनाओं का विनाश करे, सांस्कृतिक स्मरणों को मिटा दे और इतिहास को अप्रसांगिक बना दे। परन्तु रांके इसे स्वीकार नहीं करता है। रांके का यह मत है कि -'हम सावधानी व साहस के साथ विशिष्ट से सामान्य की ओर बढ़ सकते हैं किन्तु ऐसा कोई मार्ग नहीं है जिससे कि हम सामान्य से विशिष्ट की ओर बढ़ सकें।' बावेरिया के भावी शासक मैक्समिलियन द्वितीय के समक्ष अपनी भाषण श्रृंखला में रांके ने कहा था - 'प्रत्येक युग ईश्वर के निकट है।' इस कथन से उसका तात्पर्य यह था कि इतिहास का प्रत्येक युग विशिष्ट है और उसको उसी के परिप्रेक्ष्य में समझना चाहिए और केवल उन सामान्य विचारों की खोज का प्रयास करना चाहिए जिन्होनें कि उस काल को जीवन्त बनाया था। रांके ने किसी भी राजनीतिक व्यवस्था को उसी के ऐतिहासिक सन्दर्भ के अन्तर्गत ही समझने का प्रयास किया। ऐतिहासिक तथ्यों (जैसे संस्था, विचार आदि) की प्रकृति को समझने के लिए उनके ऐतिहासिक विकास और कालान्तर में उनमें आए हुए परिवर्तनों को समझना आवश्यक था। रांके का यह मानना है कि ऐतिहासिक युगों को पूर्व-निर्धारित आधुनिक मूल्यों एवं आदर्शों की कसौटी पर नहीं परखा जाना चाहिए बल्कि आनुभविक साक्ष्यों पर आधारित इतिहास (जैसा कि वास्तव में हुआ था) के परिप्रेक्ष्य में उनका आकलन किया जाना चाहिए।

नीरस और उबाऊ इतिहास लेखन के लिए आलोचना का पात्र होने के बावजूद रांके ने पवित्र रोमन साम्राज्य के उदाहरण के अनुरूप एक संगठित यूरोप की कल्पना की थी। उसके सभी ग्रंथों में यह कल्पना प्रतिबिम्बित होती है। अपने समकालीन इतिहासकारों की तुलना में रांके का ऐतिहासिक दृष्टिकोण बहुत हटकर है। वह न तो रोमानी आन्दोलन का अनुकरण करता है, न दैवकृत इतिहास की रचना करता है और न ही सामाजिक डार्विनवाद से सहमत होता है। वह वह बुद्धिवाद व यथार्थवाद की महाद्वीपीय परम्परा का अनुगमन करता है। इतिहासकार के रूप में रांके ने पूर्व-स्थापित सिद्धान्तों और धारणाओं को नकार कर मूल स्रोतों के श्रम-साध्य उपयोग द्वारा तथ्यों का बिना लिपा-पुता मौलिक स्वरूप प्रस्तुत करता है।

रांके हीगेल द्वारा प्रतिपादित इतिहास दर्शन की कटु आलोचना करता है। उसका कहना है कि हीगेल ने इतिहास में मानव-क्रिया की भूमिका की उपेक्षा की है। जब कि मानव-क्रिया की उपेक्षा कर केवल विचार और अवधारणा के आधार पर हम प्रामाणिक इतिहास की रचना नहीं कर सकते।

2.4.3 रांके के इतिहास ग्रंथों के गुण एवं दोष

2.4.3.1 प्राथमिक स्रोतों पर आधारित वस्तुनिष्ठ इतिहास

नेबूर और रांके का यह विश्वास था कि उन्होंने वैज्ञानिक एवं वस्तुनिष्ठ इतिहास की रचना की है। उनका मत है कि इतिहासकार का यह दायित्व है कि वह प्राथमिक स्रोतों के आधार पर ऐतिहासिक तथ्यों की सत्यता का परीक्षण कर उन्हें ज्यों का त्यों प्रस्तुत करे। तथ्यों का वस्तुनिष्ठ पुनर्सर्जन रांके मत के इतिहास लेखन की विशिष्टता है और इसमें इतिहासकार से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने काल के मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में भूतकाल की घटनाओं का आकलन नहीं करे।

2.4.3.2 राजनीतिक इतिहास को महत्व

चूंकि रांके राजनीतिक शक्ति को इतिहास का प्रमुख प्रतिनिधि मानता है, इसलिए उसने अपने इतिहास ग्रंथों में सामाजिक एवं आर्थिक बलों की उपेक्षा कर राजाओं और अन्य राजनीतिक नेताओं के कार्यों को, अर्थात् राजनीतिक इतिहास को सर्वाधिक महत्व दिया है। रांके पर बीसवीं शताब्दी के इतिहासकारों द्वारा यह आरोप लगाया जाता है कि उसने राजनीतिक इतिहास, विशेषकर महा-शक्तियों के राजनीतिक इतिहास को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया है परन्तु अपने लेखन में उसने सांस्कृतिक इतिहास को भी महत्व दिया है। 'हिस्ट्री ऑफ़ इंग्लैण्ड' में उसने महारानी एलिज़ाबेथ प्रथम के शासन काल के साहित्य पर एक सम्पूर्ण अध्याय लिखा है।

2.4.3.3 राजनीतिक अनुदारता

अपने ग्रंथ - 'दि ओरिजिन्स ऑफ़ दि वार ऑफ़ दि रिवोल्यूशन' में रांके ने फ्रांसीसी क्रान्ति की भर्त्सना की है और उसको प्रशा के सन्दर्भ में उपयुक्त नहीं माना है। प्रशा के लिए वह सुदृढ़ राजतन्त्र को ही उपयुक्त मानता था और प्रशा की प्रजा से वह यह अपेक्षा करता था कि वह प्रशियन राज्य के प्रति स्वामिभक्त रहे। रांके की यह मान्यता है कि शासन के सार्वभौमिक सिद्धान्त निरर्थक ही नहीं अपितु खतरनाक भी हैं। प्रशा के सन्दर्भ में वह सक्षम तथा ईमानदार निरंकुश राजतन्त्र का पक्षधर है।

2.4.3.4 इतिहास में धर्म का स्थान

रांके इतिहास को धर्म मानता है अथवा धर्म और इतिहास के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध देखता है। वह इतिहास को ईश्वरीय लीला के रूप में देखता है।

2.4.3.5 इतिहास में व्यक्तित्व की भूमिका

रांके इतिहास में महान विभूतियों की भूमिका को महत्वपूर्ण एवं निर्णायक मानता है।

2.4.3.6 सार्वभौमिक इतिहास

रांके इतिहास लेखन में व्यष्टि से समष्टि की ओर बढ़ता है। वह विभिन्न देशों के इतिहास की विशिष्टताओं को सार्वभौमिक इतिहास की आवश्यक कड़ियां मानकर सार्वभौमिक इतिहास की ओर बढ़ता है।

2.4.3.7 रांके की इतिहास विषयक अध्ययन-गोष्ठी

रांके की अध्ययन गोष्ठी की तकनीक ने इतिहास के उन्नत विद्यार्थियों को ऐतिहासिक स्रोतों के आलोचनात्मक अध्ययन की प्रणाली में एक क्रान्ति का सूत्रपात किया।

2.5 इतिहासकार के रूप में रांके का आकलन

अधिकांश आधुनिक इतिहासकारों पर रांके की तकनीक का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। रांके तथा उसके अनुयायियों - थियोडोर मॉमसे, जॉन गुस्टाव ड्रॉयसेय, फ्रेडरिक विल्हेम शिरमाकर और हेनरिक वॉन ट्रीट्स्के ने समीक्षा एवं ऐतिहासिक प्रणाली के नियम स्थापित किए। जर्मन विचारधारा ने इतिहास लेखन को एक व्यवसाय के रूप में प्रतिष्ठित किया और उसने इतिहास के औपचारिक शास्त्रीय अध्ययन की स्थापना की। कैरोलिन होफ़री ने रांके को इसका श्रेय दिया है कि उसने 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यूरोप और अमेरिका में इतिहास को एक स्वतन्त्र एवं प्रतिष्ठित विषय के रूप में मान्यता दिलाई। उसने अपनी कक्षाओं में अध्ययन गोष्ठी की प्रणाली प्रारम्भ की और अभिलेखीय शोध एवं ऐतिहासिक दस्तावेज़ों के विश्लेषण पर अपनी दृष्टि केन्द्रित की। इतिहास लेखन में पूर्ण तटस्थता का अनुचित दावा करने के बावजूद रांके आधुनिक युग के महानतम इतिहासकारों में प्रतिष्ठित होने का अधिकारी है। जी0 पी0 गूच के अनुसार समकालीन प्रामाणिक स्रोतों को ऐतिहासिक पुनर्सर्जन के लिए सर्वथा आवश्यक सिद्ध करना, इतिहास लेखन के क्षेत्र में रांके की सबसे बड़ी उपलब्धि थी। रांके प्रथम इतिहाकार था जिसने ऐतिहासिक नायकों के निजी पत्रों को ऐतिहासिक दस्तावेज़ के रूप में प्रयुक्त किया। रांके ने इतिहास में वैयक्तिकता और विकास दोनों पर ही महत्व दिया। हर ऐतिहासिक तथ्य, काल और घटना की अपनी वैयक्तिकता होती है और यह इतिहासकारों का काम है कि वह इनके सार को स्थापित करे। इस गुरुतर कार्य के लिए इतिहासकारों को उस विशिष्ट युग में स्वयं को उतारना होगा और उसी समय के मूल्यों के अनुरूप उसका आकलन करना होगा। रांके शब्दों में - 'इसके लिए इतिहासकारों को अपने निजी व्यक्तित्व की आहुति देनी होगी।' रांके इतिहास के विज्ञान का सूत्रधार है। रांके ने किसी समकालीन ग्रंथ का परीक्षण करते समय उसके लेखक के पद, उसके द्वारा अपने ग्रंथ की रचना हेतु स्रोत सामग्री एकत्र करने की उसकी सामर्थ्य, उसकी मानसिकता तथा उसकी निष्ठा का भी आलोचनात्मक परीक्षण किया और साथ ही साथ उसके द्वारा उपलब्ध जानकारी का अन्य समकालीन ग्रंथों में उपलब्ध जानकारी के साथ तुलनात्मक अध्ययन भी किया। रांके ने स्वयं ईसाई होते हुए भी अन्य धर्मावलम्बियों की उपलब्धियों की कभी भी उपेक्षा नहीं की। उसका कहना था - 'मैं पहले इतिहासकार हूँ और बाद में ईसाई हूँ।' रांके को इसका श्रेय जाता है कि उसने इतिहास लेखन में आत्मपरकता के स्थान पर वस्तुनिष्ठता को महत्व दिया। उसके लेखन में जातीय अथवा धार्मिक पूर्वाग्रहों का कोई स्थान नहीं है। पूर्ण तटस्थता अपनाते हुए और पूर्वाग्रहों को नकारते हुए उसने तथ्यों को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने की एक ईमानदार कोशिश की है।

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. नेबूर तथा रांके से पूर्व इतिहास लेखन में मुख्य कमियां।
2. रांके के महत्वपूर्ण इतिहास-ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय।
3. रांके के इतिहास ग्रंथों के प्रमुख दोष

2.6 सारांश

मध्यकाल तक इतिहास को साहित्य अथवा दर्शन की एक शाखा ही माना जाता था। बार्टहोल्ड नेबूर ने इतिहास को गौण विषय से एक स्वतन्त्र विषय के रूप में स्थापित करने में सफलता प्राप्त की थी। नेबूर के बाद रांके को यह श्रेय दिया जाता है कि उसने इतिहास में व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक दृष्टि से आलोचनात्मक दृष्टिकोण को प्रचलित किया। लियोपोल्ड वॉन रांके ने अपने समकालीन इतिहासकारों की तुलना में विविध ऐतिहासिक स्रोतों का अत्यधिक विस्तृत अध्ययन किया। इनमें संस्मरण, दैनन्दिनी, व्यक्तिगत एवं औपचारिक पत्र, सरकारी दस्तावेज़, कूटनीतिक विज्ञप्ति और प्रत्यक्षदर्शियों का आँखो-देखा वृतान्त सम्मिलित थे। रांके की रचनाओं में 'कॉन्सिपिरेसी ऑफ़ वेनिस-1618', 'हिस्ट्री ऑफ़ दि पोप्स, देयर चर्च एण्ड देयर स्टेट इन दि सिक्सटीन्थ एण्ड सेवेन्टीन्थ सेन्चुरीज़','जर्मन हिस्ट्री ऐट दि टाइम ऑफ़ दि रिफ़ॉर्मेशन','दि ओटोमन एण्ड दि स्पैनिश एम्पायर्स इन दि सिक्सटींथ एण्ड सेविन्टींथ सेन्चुरीज़', 'हिस्ट्री ऑफ़ फ्रांस', 'हिस्ट्री ऑफ़ इंग्लैण्ड तथा 'दि जर्मन पॉवर्स एण्ड दि प्रिन्सेज़ लीग' तथा 'यूनीवर्सल हिस्ट्रीः दि ओल्डेस्ट हिस्टोरिकल ग्रुप ऑफ़ नेशन्स एण्ड दि ग्रीक' प्रमुख हैं।

रांके ने स्रोतों की विश्वसनीयता अर्थात् उनकी निश्चयात्मकता नितान्त आवश्यक माना है। उसकी दृष्टि में अनुमान का इतिहास लेखन में कोई स्थान नहीं है और अनुमान व निष्कर्ष का अधिकार केवल पाठक का है। रांके का यह मानना है कि ऐतिहासिक युगों को पूर्व-निर्धारित आधुनिक मूल्यों एवं आदर्शों की कसौटी पर नहीं परखा जाना चाहिए बल्कि आनुभविक साक्ष्यों पर आधारित इतिहास के परिप्रेक्ष्य में उनका आकलन किया जाना चाहिए।

रांके न तो रोमानी आन्दोलन का अनुकरण करता है, न दैवकृत इतिहास की रचना करता है और न ही सामाजिक डार्विनवाद से सहमत होता है। वह वह बुद्धिवाद व यथार्थवाद की महाद्वीपीय परम्परा का अनुगमन करता है। रांके हीगेल द्वारा प्रतिपादित इतिहास दर्शन की कटु आलोचना करता है। उसका कहना है कि हीगेल ने इतिहास में मानव-क्रिया की भूमिका की उपेक्षा की है। जब कि मानव-क्रिया की उपेक्षा कर केवल विचार और अवधारणा के आधार पर हम प्रामाणिक इतिहास की रचना नहीं कर सकते।

नेबूर और रांके का यह मत है कि इतिहासकार का यह दायित्व है कि वह प्राथमिक स्रोतों के आधार पर ऐतिहासिक तथ्यों की सत्यता का परीक्षण कर उन्हें ज्यों का त्यों प्रस्तुत करे। चूंकि रांके राजनीतिक शक्ति को इतिहास का प्रमुख प्रतिनिधि मानता है, इसलिए उसने अपने इतिहास ग्रंथों में सामाजिक एवं आर्थिक बलों की उपेक्षा कर राजाओं और अन्य राजनीतिक नेताओं के कार्यों को, अर्थात् राजनीतिक इतिहास को सर्वाधिक महत्व दिया है। अपने ग्रंथ - 'दि ओरिजिन्स ऑफ़ दि वार ऑफ़ दि रिवोल्यूशन' में रांके ने फ्रांसीसी क्रान्ति की भर्त्सना की है और उसको प्रशा के सन्दर्भ में उपयुक्त नहीं माना है। प्रशा के सन्दर्भ में वह सक्षम तथा ईमानदार निरंकुश राजतन्त्र का पक्षधर है।

रांके इतिहास को ईश्वरीय लीला के रूप में देखता है। रांके इतिहास में महान विभूतियों की भूमिका को महत्वपूर्ण एवं निर्णायक मानता है। रांके विभिन्न देशों के इतिहास की विशिष्टताओं को सार्वभौमिक इतिहास की आवश्यक कड़ियां मानकर सार्वभौमिक इतिहास की ओर बढ़ता है। रांके की अध्ययन गोष्ठी की तकनीक ने इतिहास के उन्नत विद्यार्थियों को ऐतिहासिक स्रोतों के आलोचनात्मक अध्ययन की प्रणाली में एक क्रान्ति का सूत्रपात किया।

अधिकांश आधुनिक इतिहासकारों पर रांके की तकनीक का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। जर्मन विचारधारा ने इतिहास लेखन को एक व्यवसाय के रूप में प्रतिष्ठित किया और उसने इतिहास के औपचारिक शास्त्रीय अध्ययन की स्थापना की। इतिहास लेखन में पूर्ण तटस्थता का अनुचित दावा करने के बावजूद रांके आधुनिक युग के महानतम इतिहासकारों में प्रतिष्ठित होने का अधिकारी है। रांके ने इतिहास लेखन में आत्मपरकता के स्थान पर वस्तुनिष्ठता को महत्व दिया। उसके लेखन में जातीय अथवा धार्मिक पूर्वाग्रहों का कोई स्थान नहीं है। पूर्ण तटस्थता अपनाते हुए और पूर्वाग्रहों को नकारते हुए उसने तथ्यों को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने की एक ईमानदार कोशिश की है।

2.7 पारिभाषिक शब्दावली

कॉन्सपिरेसी - षडयन्त्र

रिफ़ॉर्मेशन - धर्म सुधार

रोमानी आन्दोलन - 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक विश्व-व्यापी आन्दोलन जिसमें कि भावना, आत्माभिव्यक्ति एवं व्यक्तिगत विशिष्टता को प्रमुखता दी गई थी।

व्यष्टि से समष्टि - व्यक्तिगतता से विश्व-व्यापकता

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 2.3.1 नेबूर से पूर्व के इतिहास-लेखन के दोष
2. देखिए 2.4.1 रांके का प्रारम्भिक जीवन तथा उसकी रचनाएं
3. देखिए 2.4.3 रांके के इतिहास ग्रंथों के गुण एवं दोष

2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

कॉलिंगवुड, आर0 जी0 - दि आइडिया ऑफ़ हिस्ट्री, लन्दन, 1978

गूच, जी0 पी0 - दि हिस्ट्री एण्ड दि हिस्टोरियन्स ऑफ़ दि नाइन्टीन्थ सेन्चुरी, लन्दन, 1913

इगर्स, जॉर्ज, जी0, जेम्स, एम0 पॉवेल - लियोपोल्ड रांके एण्ड दि शेपिंग ऑफ़ दि हिस्टॉरिकल डिसिप्लिन, न्यूयॉर्क, 1990

श्रीधरन, ई0 - ए टैक्स्ट बुक ऑफ़ हिस्टोरियोग्राफ़ी, नई दिल्ली, 2013

2.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

लियोपोल्ड वॉन रांके (सम्पादनः रॉजर वाइन्स) - 'दि सीक्रेट ऑफ़ वर्ड हिस्ट्रीः सेलेक्टेड राइटिंग्स ऑन दि आर्ट एण्ड साइंस ऑफ़ हिस्ट्री', न्यूयॉर्क, 2010

लियोपोल्ड वॉन रांके (सम्पादनः इगर्स, जॉर्ज, जी0) - 'दि थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस ऑफ़ हिस्ट्री', न्यूयॉर्क, 2011

कार, ई0 एच0 (अनुवादकः चक्रधर, अशोक) - 'इतिहास क्या है', नई दिल्ली, 1993
थापर, रोमिला (सम्पादक) - 'इतिहास की पुनर्व्याख्या' नई दिल्ली, 1991
बुद्धप्रकाश - 'इतिहास दर्शन' इलाहाबाद, 1962
वर्मा, लालबहादुर - 'इतिहास के बारे में', इलाहाबाद, 2000
शर्मा, रामविलास - 'इतिहास दर्शन', नई दिल्ली, 1995

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

रांके के इतिहास-दर्शन की समीक्षा कीजिए।

इकाई तीन

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या (मार्क्सवादी सिद्धान्त)

3..1. प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3. कार्ल मार्क्स से पूर्व के इतिहास लेखन में व्याप्त प्रमुख दोष

3.3.1 इतिहास में ईश्वरीय इच्छा की महत्ता

3.3.2 धार्मिक एवं राजनीतिक गतिविधियों को अनावश्यक महत्व

3.4 कार्ल मार्क्स की विचारधारा पर पूर्ववर्ती विचारकों का प्रभाव

3.4.1 कार्ल मार्क्स से पूर्व निजी सम्पत्ति के अधिकार के उन्मूलन विषयक विचार

3.4.2 मार्क्स से पूर्व के विचारकों की समाजवादी भावना

3.4.3 समाजवादी आन्दोलन का प्रारम्भिक चरण

3.5 कार्ल मार्क्स के समाजवाद विषयक विचार और समाजवादी आन्दोलन में उसकी सक्रिय भूमिका

3.5.1 कार्ल मार्क्स के समाजवाद विषयक विचार

3.5.2 प्रथम इण्टरनेशनल

3.5.3 कार्ल मार्क्स की रचनाएं

3.6 वर्ग-संघर्ष और इतिहास की भौतिकतावादी व्याख्या

3.6.1 वर्ग-संघर्ष

3.6.2 ऐतिहासिक भौतिकतावाद

3.6.3 मार्क्सवादी इतिहासकार

3.7 सारांश

3.8 पारिभाषिक शब्दावली

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

3.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

3..1. प्रस्तावना

कार्ल हेनरिख मार्क्स (1818-83) एक जर्मन दार्शनिक, अर्थ-शास्त्री, समाज-शास्त्री, इतिहासकार, पत्रकार तथा क्रान्तिकारी समाजवादी था। मार्क्सवाद ने इतिहास लेखन में एक युगान्तकारी मोड़ ला दिया। भौतिक कारक को इतिहास में निर्धारक कारक के रूप में प्रतिष्ठित करना उसके इतिहास लेखन की वह विशेषता है जो उससे पूर्व के इतिहास लेखन में सर्वथा अनुपस्थित थी। मार्क्स द्वारा इतिहास की दिशा निर्धारित करने में भौतिकवादी कारक की निर्णायक भूमिका के सिद्धान्त का विकास किए जाने तक दैवी कारक को यह स्थान प्राप्त था। जब कि मार्क्स की दृष्टि में - 'भगवान की अवधारणा मनुष्य की निरी कल्पना थी और इससे भी अधिक वह शोषण व दोहन का एक उपकरण थी जिसको कि शासक वर्ग ने श्रमिक वर्ग को नियन्त्रित करने के एक कुचक्र के अन्तर्गत विकसित किया था।' मार्क्स की दृष्टि में 'पहला ऐतिहासिक कृत्य है - स्वयं भौतिक जीवन का उत्पादन।'

आधुनिक इतिहास लेखन पर इस विचार के क्रान्तिकारी प्रभाव का हम आज सर्वत्र अनुभव कर सकते हैं। आधुनिक युग में मार्क्स की अर्थशास्त्र विषयक रचनाओं ने श्रमिक और पूंजी के पारस्परिक सम्बन्धों की समझ को एक आधार प्रदान किया है और परवर्ती अर्थशास्त्रियों के आर्थिक चिन्तन को अत्यधिक प्रभावित किया है। मार्क्स की कृति 'दास कैपिटल' में इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या की गई है। मार्क्स के समाज, अर्थशास्त्र तथा राजनीति विषयक सिद्धान्तों के कुल जोड़ को हम 'मार्क्सवाद' के रूप में जानते हैं। मार्क्स ने समाजवाद के सिद्धान्तों और उसके उद्देश्यों, उनकी उत्पत्ति की ऐतिहासिक अनिवार्यता एवं प्राप्ति के तरीकों तथा नए समाजवादी समाज की रूपरेखा प्रस्तुत की। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर उसने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि पूंजीवादी समाज का विनाश तथा निकट भविष्य में समाजवादी क्रान्ति की सफलता अवश्यम्भावी है। मार्क्स की कृति 'दास कैपिटल' में इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या की गई है। मार्क्सवाद में विश्लेषण एवं विवेचना का प्रमुख आधार इतिहास है और उसके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का मूल आधार भी इतिहास ही है। इतिहास को मार्क्स ने एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा था किन्तु उसकी इतिहास की अवधारणा का मुख्य आधार आर्थिक जीवन है। आर्थर मार्विक ने मार्क्सवादी इतिहासकारों को इस बात का श्रेय दिया है कि उन्होंने प्रत्येक उपलब्ध स्रोत का सदुपयोग कर एक नयी प्रणाली के अन्तर्गत आम आदमी की इतिहास में फिर से वापसी की है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको कार्ल मार्क्स से पूर्व इतिहास लेखन के दोषों से परिचित कराना तथा समाजवादी विचारधारा के प्रारम्भिक विकास से अवगत कराना है और फिर कार्ल मार्क्स के लेखन तथा परवर्ती मार्क्सवादी इतिहास-चिन्तकों तथा इतिहासकारों के लेखन के माध्यम से इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या की, तथा मार्क्सवादी इतिहास लेखन के विभिन्न सोपानों की आपको जानकारी देना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

- कार्लमार्क्स से पूर्व इतिहास लेखन के दोष।
- कार्ल मार्क्स की विचारधारा पर पूर्ववर्ती विचारकों का प्रभाव।

- समाजवादी आन्दोलन की पृष्ठभूमि।
- कार्ल मार्क्स की समाजवादी विचारधारा एवं ऐतिहासिक भौतिकवाद की अवधारणा
- मार्क्सवादी इतिहासकारों का इतिहास लेखन में योगदान

3.3. कार्ल मार्क्स से पूर्व के इतिहास लेखन में व्याप्त प्रमुख दोष

3.3.1 इतिहास में ईश्वरीय इच्छा की महत्ता

प्राचीन एवं मध्यकालीन इतिहास लेखन में ऐतिहासिक घटनाओं को उनके अन्तिम परिणाम तक पहंुचाने में ईश्वरीय इच्छा को अत्यधिक महत्व दिया गया है। प्राचीन भारतीय इतिहासकारों, ईसाई इतिहासकारों तथा मध्यकालीन मुस्लिम इतिहासकारों ने 'ईश्वरीय इच्छा', 'दि विल ऑफ़ गॉड' अथवा 'खुदा की मर्ज़ी' को इतिहास में निर्णायक माना है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक यह विचारधारा क्षीण नहीं हुई थी। इतिहासकारों द्वारा स्पेन के पतन, अमेरिका की स्वतन्त्रता, फ़्रांसीसी क्रान्ति तथा नैपोलियन के पतन में भी ईश्वरीय इच्छा को आरोपित करने का प्रयास किया गया था। इस विचारधारा ने इतिहास लेखन में विभिन्न प्रकार के तथ्यों को एक ही रंग में रंगने के प्रयास को प्रोत्साहित किया।

3.3.2 धार्मिक एवं राजनीतिक गतिविधियों को अनावश्यक महत्व

कार्ल मार्क्स से पूर्व इतिहासकारों ने पोप, चर्च, धर्म-ग्रंथों, धर्म-विजयों, मठों, दरगाहों, मठाधीशों, सम्राटों, बादशाहों, सुल्तानों, शासक वर्ग से जुड़े हुए व्यक्तियों, युद्धों, सन्धियों, षडयन्त्रों, दरबारों और शासक वर्ग से जुड़े साहित्य व कलाओं को अपनी रचनाओं में महत्व दिया था। आम आदमी - किसानों, मज़दूरों, गुलामों आदि का उल्लेख करना उनके लिए अनावश्यक था। यद्यपि सांस्कृतिक इतिहास के किंचित पहलुओं पर इन इतिहासकारों की दृष्टि गई थी किन्तु उनके लिए सामान्यतः सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास का नाम मात्र का महत्व था।

3.4 कार्ल मार्क्स की विचारधारा पर पूर्ववर्ती विचारकों का प्रभाव

3.4.1 कार्ल मार्क्स से पूर्व निजी सम्पत्ति के अधिकार के उन्मूलन विषयक विचार

पुनर्जागरण काल के ब्रिटिश विचारक टॉमस मूर ने अपने ग्रंथ - 'यूटोपिया' (1516) में सामूहिक स्वामित्व पर आधारित समाज की परिकल्पना की है। 17 वीं शताब्दी के इंग्लैण्ड में 'डिगर्स' नामक शुद्धाचारवादी धार्मिक दल ने भूमि विषयक निजी सम्पत्ति के अधिकार को समाप्त किए जाने की मांग की थी। 18 वीं शताब्दी के प्रबोधन युग में भी फ़्रांसीसी विचारक जीन जैकस रूसो ने निजी सम्पत्ति के विचार की आलोचना की थी। टॉमस पेन की 1791 में प्रकाशित पुस्तक - 'राइट्स ऑफ़ मैन' में भूमि के समाजीकरण, जागीरदारों की मृत्यु पर भारी मृत्यु-कर की व्यवस्था की वकालत की गई। स्पैंस तथा ओगिल्वी ने भी भूमि पर समाज के अधिकार की हिमायत की। विलियम गोडविन ने निजी सम्पत्ति को समाप्त किए जाने की संस्तुति की। समाजवादी विचारधारा के जनक, अठारहवीं शताब्दी के फ़्रासीसी विचारक बैब्यूफ़ ने सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण, सामाजिक समानता एवं सम्पत्ति के अधिकार के उन्मूलन का प्रबल समर्थन किया था।

3.4.2 मार्क्स से पूर्व के विचारकों की समाजवादी भावना

सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप विकसित नई आर्थिक व्यवस्था और उससे उत्पन्न सामाजिक शोषण की आलोचना का प्रारम्भ हुआ। टॉमस पेन की 1791 में प्रकाशित पुस्तक - 'राइट्स ऑफ़ मैन' में श्रमिकों को पेंशन व महिला-श्रमिकों को प्रसव-काल अवकाश दिए जाने की वकालत की। स्विस इतिहासकार सिसमोंडी ने 1818 में एडम स्मिथ की मुक्त-व्यापार की नीति और उसके द्वारा आर्थिक क्षेत्र में राज्य द्वारा अहस्तक्षेप की नीति अपनाए जाने की वकालत करने पर भर्त्सना की। उसने पूंजीपतियों द्वारा श्रमिकों के निर्बाध शोषण की भी निन्दा की और उनकी मज़दूरी बढ़ाए जाने की ज़ोरदार हिमायत की। मैनचेस्टर के उद्योगपति रॉबर्ट ओवन ने अपने निजी कारखाने में वेतन में वृद्धि कर, उनके काम के घण्टों में कमी कर तथा उनके लिए साफ़-सुथरे मकान व आमोद-प्रमोद के साधन उपलब्ध कर मज़दूरों की दशा सुधारने के प्रयास किए। अपनी पुस्तकों - 'दि न्यू व्यू ऑफ़ सोसायटी' तथा 'दि बुक ऑफ़ न्यू मॉरल वर्ड' में रॉबर्ट ओवन ने मज़दूरों की सहकारी समितियों के गठन तथा कारखानों में मज़दूरों को हिस्सेदारी दिए जाने की संस्तुति की तथा पहली बार 'समाजवाद' शब्द का प्रयोग किया। रॉबर्ट ओवन के प्रयासों के साथ-साथ ब्रिटिश व्यापार एवं उद्योग में अभूपूर्व विकास के कारण इंग्लैण्ड में 1819 में मज़दूरों के कल्याण हेतु 'फ़ैक्ट्री एक्ट' पारित किया गया। फ्रांस के मानवतावादी एवं आशावादी विचारक सेन्ट साइमन ने अपने ग्रंथ - 'दि न्यू क्रिश्चियैनिटी'(1825) में श्रमिकों के कल्याण तथा निजी सम्पत्ति विषयक कानूनों में सुधार की मांग रखी। फ्रांस के ही एक अन्य विचारक चार्ल्स फूरिए ने पूंजीवादी समाज की शोषक प्रवृत्तियों को उजागर कियाऔर श्रमिकों की दशा सुधारने के लिए सहकारी समुदायों को संगठित करने की योजना प्रस्तुत की। फ्रांस के लुई ब्लां को राज्य-समाजवाद के उदय का श्रेय दिया जाता है। उसने आर्थिक क्षेत्र में वैयक्तिक स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का विरोध किया और राज्य में श्रमिक के 'काम के अधिकार' और उस अधिकार की प्राप्ति के लिए 'राष्ट्रीय कारखानों' अथवा सामाजिक कार्यशालाओं की स्थापना करके स्वार्थी प्रतियोगी पूंजीवाद की बुराइयों को समाप्त करने की एक ईमानदार कोशिश की। उसके ग्रंथ - 'ऑर्गेनाइज़ेशन ऑफ़ लेबर' (1839) में तत्कालीन फ्रांस का समाजवादी आन्दोलन प्रतिबिम्बित होता है।

3.4.3 समाजवादी आन्दोलन का प्रारम्भिक चरण

जर्मनी में 1830 की क्रान्ति के बाद ब्यूख्नर ने 'मनुष्य का अधिकार' नामक एक गुप्त समिति का गठन किया था। इस समिति का यह विश्वास था कि राजनीतिक क्रान्ति के साथ सामाजिक क्रान्ति का होना भी आवश्यक है। इस समिति के घोषणापत्र का एक वाक्य उसके लक्ष्य को व्यक्त करता है - 'झोंपड़ियों में सुख-शान्ति हो और राजप्रसादों का नाश हो।' जर्मनी में समाजवादी आन्दोलन का सूत्रपात फ़र्डिनैन्ड लसैल ने किया था। उसने लिप्ज़िंग में 1863 में 'जनरल एसोसियेशन ऑफ़ वर्कर्स' की स्थापना की। लसैल का यह मत था कि - 'राज्य का यह प्रमुख कर्तव्य है कि वह अपने नागरिकों का अधिकतम कल्याण व हित करे। लसैल ने समाजवादी आन्दोलन को सफल बनाने में मध्यवर्गीय उदारवादी दलों के योगदान की तुलना में स्वयं श्रमिकों की भूमिका को अधिक महत्व दिया था। पेरिस में कार्यरत जर्मन मज़दूरों ने 1836 में 'लीग ऑफ़ दि जस्ट' की स्थापना की और बाद में इसकी शाखाएं जर्मनी, इंग्लैण्ड और बेलजियम में भी स्थापित हुई। कार्ल मार्क्स तथा फ्रेडरिक एन्गेल्स इसके सदस्य थे। 1847 में इसका नाम बदलकर 'कम्युनिस्ट लीग' रख दिया गया। 'कम्युनिस्ट लीग' के घोषणापत्र के प्रमुख उद्देश्य थे -

'पूंजीवर्ग का जड़ से विनाश, मज़दूर वर्ग का शासन, वर्गभेद पर आधारित मध्य-वर्गीय पुरातन समाज का उन्मूलन और ऐसे एक नए समाज की स्थापना जिसमें न कोई वर्ग हो और न ही निजी सम्पत्ति विषयक अधिकार।'

इंग्लैण्ड में 1846 में स्थापित संस्था 'सोसायटी ऑफ़ फ़ेटर्नल डेमोक्रेट्स' के एक सदस्य ने शोषितों की अन्तर्राष्ट्रीय एकजुटता की आवश्यकता पर बल देते हुए उनसे यह अपील की थी -मैं हर देश के उत्पीड़ित वर्गों से यह अपील करता हूँ कि वे समान उद्देश्य के लिए एकजुट हो जाएं।'

1848-49 में यूरोपीय क्रान्तियों की असफलता, क्रीमिया के युद्ध (1854-56) में रूस की पराजय, पीडमॉन्ट राज्य के नेतृत्व में द्वितीय इटालियन स्वतन्त्रता संग्राम (1859-60) में राष्ट्रवादियों की सफलता, 1861 में जार एलेक्ज़ेण्डर द्वितीय द्वारा रूस में कृषि दासों की विमुक्ति और 1863 में पोलैण्ड में हुए विद्रोह जैसी घटनाओं ने समाजवादियों को पुन- सक्रिय होने की प्रेरणा दी।

समाजवादी आन्दोलन का ध्येय पूंजीवाद को समाप्त करना था और श्रम-आन्दोलन का लक्ष्य पूंजीपतियों के साथ संघर्ष करना या ऐसा सौदा करना था जिससे कि श्रमिक वर्ग की जीवन-पद्धति और कार्य-स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन हो सके। श्रमिकों की शोचनीय दशा से आहत होकर और मानवतावादी भावना से प्रेरित होकर अनेक बुद्धिजीवियों ने शोषित एवं दलित वर्ग की स्थिति में सुधार लाने के सार्थक प्रयास किए। इसके अतिरिक्त पीड़ित श्रमिक वर्ग ने स्वयं भी अपनी समस्याओं का निराकरण करने के लिए श्रमिक संगठनों का गठन प्रारम्भ कर दिया था। उन्होंने समाज के बहु-संख्यक सर्वहारा वर्ग के हित में आय के समान वितरण की व्यवस्था का समर्थन किया। समाजवादियों ने फ़्रासीसी क्रान्ति से अर्जित नागरिक एवं कानूनी समानता से आगे बढ़कर सामाजिक एवं आर्थिक समानता की स्थापना की आवश्यकता पर बल दिया।

3.5 कार्ल मार्क्स के समाजवाद विषयक विचार और समाजवादी आन्दोलन में उसकी सक्रिय भूमिका

3.5.1 कार्ल मार्क्स के समाजवाद विषयक विचार

कार्ल मार्क्स की विचारधारा पर फ़्रांसीसी समाजवादी विचारकों – सेंट साइमन, चार्ल्स फ़ूरिए, लुई ब्लां तथा ब्रिटिश समाजवादी विचारक राबर्ट ओवेन के चिन्तन का भी प्रभाव पड़ा था। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में हुई औद्योगिक क्रान्ति ने समस्त विश्व के और विशेषकर पाश्चात्य समाज और अर्थ-व्यवस्था के स्वरूप में आमूल परिवर्तन कर दिया था। औद्योगिक क्रान्ति ने समाज में पूंजीपति एवं मज़दूर वर्ग को जन्म दिया। आर्थिक विषमता बढ़ने के साथ-साथ पूंजीपति वर्ग द्वारा मज़दूर वर्ग का अनवरत शोषण होने लगा। मार्क्स की विचारधारा पर इस बदली हुई सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का भी गहन प्रभाव पड़ा था। मार्क्स अपने पूर्ववर्ती जर्मन दार्शनिक हीगेल के द्वन्द्वात्मक आदर्शवाद से प्रभावित था जिसने कि यह प्रतिपादित किया था कि समाज का विकास संघर्ष के माध्यम से ही होता है।

3.5.2 प्रथम इण्टरनेशनल

समाजवादी आन्दोलन के इतिहास की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना ब्रिटिश, फ्रांसीसी, बेलजियन तथा स्विस मज़दूर संगठनों को एकजुट करके 1864 में स्थापित 'प्रथम इण्टरनेशनल' की स्थापना थी जो कि कार्ल मार्क्स की देन थी। 'प्रथम इण्टरनेशनल' में मार्क्स ने मज़दूरों की ओर से दिए गए अपने भाषण में इस समिति के सिद्धान्तों और लक्ष्यों की

रूपरेखा प्रस्तुत की। मार्क्स ने मज़दूर वर्गों का आवाहन किया कि वो अपनी मुक्ति की लड़ाई स्वयं लड़ें। मज़दूर वर्ग के संघर्ष में विश्व-व्यापी चरित्र पर बल दिया गया। इस इण्टरनेशनल का लक्ष्य - 'शासक वर्ग का सम्पूर्ण उन्मूलन' घोषित किया गया। प्रथम इण्टरनेशनल को उसकी स्थापना के समय से ही तत्कालीन सरकारों ने अपने लिए एक खतरा माना और उसके दमन के अनेक प्रयास किए गए। अनेक देशों में उसे अवैध घोषित कर दिया गया। इसने अपने अल्पकालीन जीवन (1864 से 1875) के दौरान यूरोप और उत्तरी अमेरिका के मज़दूर आन्दोलनों पर गहरा प्रभाव डाला।

कार्ल मार्क्स की मृत्यु 1883 में हो गई थी किन्तु 1889 में आयोजित 'द्वितीय इण्टरनेशनल' उसी के प्रयासों की अगली कड़ी थी। विभिन्न देशों के समाजवादी दलों को एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के तहत सूत्रबद्ध करने के लिए 1789 की फ़्रांसीसी क्रान्ति की शताब्दी के दिन 14 जुलाई, 1889 को पेरिस में 20 देशों के 400 प्रतिनिधियों द्वारा 'द्वितीय इण्टरनेशनल' की स्थापना की गई जिसमें सैन्यवाद और युद्ध को पूंजीवाद की उपज माना गया पर साथ ही साथ पूंजीवाद का विनाश कर समाजवाद की स्थापना के लिए सशस्त्र क्रान्ति को अपरिहार्य माना गया।

3.5.3 कार्ल मार्क्स की रचनाएं

कार्ल मार्क्स की अनेक रचनाओं में हम 'कम्युनिस्ट मैनिफ़ैस्टो (सह-लेखक-फ्रेडरिक एन्गेल्स), 'दास कैपिटल' तथा 'दि जर्मन आइडियोलोजी' को उसकी प्रमुख रचनाएं कह सकते हैं। 'दास कैपिटल' के प्रथम खण्ड का सर्वप्रथम प्रकाशन 1867 में हुआ। मार्क्स की मृत्यु के उपरान्त उसके द्वारा छोड़ी गई पाण्डुलिपियों के आधार पर एन्गेल्स ने उसके शेष दो खण्डों का प्रकाशन करवाया। इनके अतिरिक्त उसने 'ऐन इन्ट्रोडक्शन टु ए क्रिटीक ऑफ़ हीगेलियन फ़िलॉसॅफ़ी ऑफ़ राइट्स' (1843) 'पॉवर्टी ऑफ़ फ़िलॉसॅफ़ी- ए क्रिटीक ऑफ़ प्राउडहॉन'(1847),'डिस्कोर्स अपॉन दि क्वेश्चन ऑफ़ फ्री एक्सचेन्ज' (1848) 'क्लास स्ट्रगल इन फ़्रांस-1848-50 (1850), 'होली फ़ैमिली', 'ऐन इन्ट्रोडक्शन टु क्रिटीक ऑफ़ पॉलिटिकल इकॉनॅमी' (1859), 'वैल्यू, प्राइस एण्ड प्रॉफ़िट', 'होली फ़ैमिली' आदि की भी रचना की है। एक पत्रकार के रूप में मार्क्स ने 'न्यूयॉर्क डेली ट्रिब्यून', 'दि स्पेक्टेटर' में विचारोत्तेजक लेख लिखे तथा 'एनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना' में भी उसके अनेक लेख सम्मिलित किए गए हैं।

3.6 वर्ग-संघर्ष और इतिहास की भौतिकतावादी व्याख्या

3.6.1 वर्ग-संघर्ष

प्रसिद्ध ब्रिटिश विचारक बर्टेण्ड रसेल अपनी पुस्तक 'प्रपोज़्ड रोड ट् फ्रीडम' में लिखता है - 'समाजवाद उन्नीसवीं शताब्दी के दर्शन का एक प्रेरक बल था जिसने कि मानव जाति को एक श्रेष्ठतर व्यवस्था देने के लिए कल्पनाशीलता के साथ ठोस रूप से व्यावहारिक प्रयास किया था।'

मार्क्स ने समाजवाद के सिद्धान्तों और उसके उद्देश्यों, उनकी उत्पत्ति की ऐतिहासिक अनिवार्यता एवं प्राप्ति के तरीकों तथा नए समाजवादी समाज की रूपरेखा प्रस्तुत की। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर उसने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि पूंजीवादी समाज का विनाश तथा निकट भविष्य में समाजवादी क्रान्ति की सफलता अवश्यम्भावी है। मार्क्स इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या करते हुए यह स्पष्ट करता है कि ऐतिहासिक प्रक्रिया में प्राचीन समाज का आधार 'दासता', सामन्तवादी समाज का आधार 'भूमि' तथा मध्यवर्गीय समाज का आधार 'पूंजी' है। संक्षेप में हम कह

सकते हैं कि मार्क्स ने हमको बताया है कि - समाज का इतिहास आर्थिक कारकों से निर्धारित होता है और यह कि - इतिहास वर्ग-संघर्ष का अभिलेख है। इस प्रकार मार्क्स की समाजशास्त्रीय प्रणाली के दो आधार स्तम्भ हैं - इतिहास का भौतिकवादी विचार और वर्ग-संघर्ष।

समाजवादी विचारधारा को हम असह्य एवं दमनकारी शोषण के खिलाफ़ उठा हुआ विद्रोह का स्वर कह सकते हैं। समाजवाद के अन्तर्गत उत्पादन जनता के हाथ में होता है और मनुष्य का मनुष्य के द्वारा शोषण, सामाजिक उत्पीड़न, विशेषाधिकार प्राप्त अल्पसंख्यकों की सत्ता, गरीबी और लाखों-करोड़ों लोगों की निरक्षरता का हमेशा-हमेशा के लिए उन्मूलन कर दिया जाता है। समाजवाद में वैज्ञानिक व तकनीकी प्रगति बेरोज़गारी बढ़ाने के स्थान पर जन-जन की खुशहाली और समृद्धि में वृद्धि लाती है।

मार्क्स अपने सृजनात्मक मानववाद की स्थापना में यह स्पष्ट करता है कि इतिहास मनुष्य की एक कृति है और इतिहास का लक्ष्य भी मनुष्य ही है। वह कहता है - 'इतिहास वर्ग संघर्ष का अभिलेख है।' 'कम्युनिस्ट मैनिफ़ैस्टो' में बताया गया है कि विश्व के समस्त मज़दूरों का लक्ष्य पूंजीवाद को उखाड़ फेंकना और समाजवाद की स्थापना करना है। इस घोषणापत्र का यह आह्वान अमर है - 'संसार के मज़दूरो एक हो जाओ। तुम्हें खोना कुछ नहीं है, सिवाय अपनी गुलामी की ज़न्जीरों के, और प्राप्त करने के लिए तुम्हारे सामने संसार पड़ा है।'

3.6.2 ऐतिहासिक भौतिकतावाद

मार्क्सवादी अथवा ऐतिहासिक भौतिकतावादी लेखन, इतिहास लेखन की वह शाखा है जो मार्क्सवाद के मुख्य सिद्धान्त -'ऐतिहासिक परिणामों को निर्धारित करने में सामाजिक वर्ग व आर्थिक दबावों की निर्णायक भूमिका' में विश्वास रखती है। मार्क्सवादी इतिहास लेखन ने श्रमिक वर्ग को हर स्थान पर केन्द्र-बिन्दु बनाने की प्रवृत्ति, दमित राष्ट्रीयताओं की महत्ता और आम आदमी के इतिहास (हिस्ट्री फ्रॉम बिलो) के अध्ययन के प्रणालीतन्त्र के सिद्धान्तों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। मार्क्सवादी इतिहास लेखन की प्रमुख समस्या इतिहास की प्रकृति को लेकर बहस पर है और वह बहस यह है कि - 'क्या इतिहास नियतिवाद से संचालित होता है अथवा उसकी प्रकृति द्वन्द्वात्मक है।' मार्क्सवादी इतिहास सामान्यतः नियतिवादी है क्योंकि यह प्रदर्शित करता है कि इतिहास एक निश्चित अन्त की ओर बढ़ता है और वह अन्त है - 'एक वर्गहीन मानव-समाज' की स्थापना।

मार्क्सवादी इतिहास लेखन का मुख्य उद्देश्य ऐतिहासिक दृष्टान्तों के माध्यम से दलित एवं शोषित वर्ग में आत्म-चेतना का संचार कर उन्हें अपने अधिकारों के लिए स्वयं संघर्ष करने के लिए प्रेरित करना है।

कार्ल मार्क्स के पूर्ववर्ती इतिहासकारों ने शासकों एवं राष्ट्रों के उत्थान एवं पतन की चक्रीय घटनाओं पर अपना ध्यान केन्द्रित किया था। फ्रेडरिक एन्गेल्स ने अपने ग्रंथ -'दि पीज़ेन्ट वार इन जर्मनी' में प्रारम्भिक प्रोटैस्टैन्ट जर्मनी में उभरते हुए पूंजीवादी वर्ग के सन्दर्भ में सामाजिक संघर्ष का विश्लेषण किया था। इसने 'हिस्ट्री फ्रॉम बिलो' (आम आदमी का इतिहास) की अवधारणा, वर्ग-विश्लेषण तथा द्वन्द्वात्मक विश्लेषण में इतिहासकार की अभिरुचि की ओर संकेत किया। मार्क्स ने इतिहास की सोद्देश्यवादी व्याख्या करते हुए कहा है कि - 'हर वस्तु एक निश्चित अन्त की ओर गतिमान होती है और वह अन्त है एक वर्गहीन मानव-समाज।'

मार्क्स की अवधारणा है कि आर्थिक परिस्थितियों तथा उत्पादन की विधियों ने अपने-अपने समय की सामाजिक संरचना को निर्धारित किया है। उसकी दृष्टि में पाश्चात्य यूरोप में एक-एक करके पाँच अवस्थाएं आईं जिनमें कि उसकी भौतिक परिस्थितियों का विकास हुआ है।

इनमें पहली अवस्था थी - आदिम साम्यवाद, जहां कि सम्पत्ति का सभी के मध्य बटवारा किया जाता था और तब नेता की अवधारणा अस्तित्व में ही नहीं थी।

दूसरी अवस्था में पहली अवस्था का विकास दास तथा दास-स्वामी समाज में हुआ जहां कि वर्ग का विचार तथा राज्य की अवधारणा का विकास हुआ।

तीसरी अवस्था सामन्तवाद के उदय की है जिसमें कि आभिजात्य वर्ग ने धर्मतन्त्र के साथ मिलकर निम्न वर्ग का दोहन किया। यह युग भू-स्वामियों तथा कृषि-दासों का था और इसी काल में राष्ट्रीय राज्यों का उदय हुआ।

चौथी अवस्था में मध्यवर्गीय क्रान्ति के बाद पूंजीवादी युग के पदार्पण की है जब कि पूंजीपतियों ने (अथवा उनके पूर्ववर्ती व्यापारियों ने) सामन्ती व्यवस्था को उखाड़ फेंका और निजी सम्पत्ति व संसदीय लोकतन्त्र के साथ-साथ एक बाज़ारी-अर्थव्यवस्था की स्थापना की। यह युग स्वामी और श्रमिक का है।

मार्क्स आने वाले समय में अन्तिम पाँचवी अवस्था के विषय में भविष्यवाणी करता है कि इसमें सर्वहारा वर्ग द्वारा क्रान्ति का सूत्रपात होगा जिसका परिणाम समाजवाद की प्राप्ति और अन्ततः साम्यवाद की स्थापना होगा। इस अवस्था में किसी भी प्रकार की सम्पत्ति पर किसी एक का नहीं अपितु समुदाय का स्वामित्व होगा।

मार्क्सवाद में विश्लेषण एवं विवेचना का प्रमुख आधार इतिहास है और उसके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों मूल आधार भी इतिहास ही है। इतिहास को मार्क्स ने एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा था किन्तु उसकी इतिहास की अवधारणा का मुख्य आधार आर्थिक जीवन है।

ऐतिहासिक (द्वन्द्वात्मक) भौतिकवाद वह प्रणालीतन्त्रीय दृष्टिकोण है जो कि समाज, अर्थशास्त्र तथा इतिहास का अध्ययन करने के लिए सर्वप्रथम कार्ल मार्क्स ने इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा के रूप में प्रस्तुत किया था। यह सामाजिक-आर्थिक विकास का वह सिद्धान्त है जिसके अनुसार भौतिक परिस्थितियों में परिवर्तन (तकनीक तथा उत्पादक क्षमता में) का समाज व अर्थ-व्यवस्था को सुव्यवस्थित करने पर निर्णायक प्रभाव पड़ता है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद मानव'समाज में विकास और परिवर्तन के कारणों का अध्ययन करता है। यह विकास और परिवर्तन जीवन की आवश्यक वस्तुओं के सामूहिक उत्पादन, सामाजिक वर्गों तथा उनके बीच सम्बन्धों, राजनीतिक संरचनाओं तथा समाज में चिन्तन-प्रणालियों के माध्यम से देखा जा सकता है।

1948 में 'लाइफ़ मैगज़ीन' में ह्यूबर्ट के ने मानव-इतिहास की मार्क्सवादी व्याख्या का सार इन शब्दों में दिया है - 'मानव इतिहास एक नदी के समान है। यदि हम इसे ऊपर से देखें तो हमको हर दिन यह एक जैसी दिखाई देगी परन्तु वास्तव में यह तटों को तोड़ती हुई, जल-मार्ग को चौड़ा और गहरा करती हुई निरन्तर बहती रहती है और परिवर्तित होती रहती है। इसमें किसी एक दिन जो पानी दिखाई देता है वह दूसरे दिन ठीक वैसा कभी भी नहीं होता। इसमें से कुछ जल भाप बनकर निरन्तर उडता रहता है और फिर वही बारिश के रूप में वापस लौटता है। अगर हम साल दर साल

देखें तो इस नदी में होने वाले परिवर्तन हमको शायद ही दिखाई पड़ेंगे किन्तु एक दिन जब इसके तट बिल्कुल कमज़ोर पड़ जाएंगे और दीर्घ काल तक तेज़ बारिश होगी तो इसमें बाढ़ आएगी, यह अपने तटों को तोड़ देगी और सम्भवतः यह एक नया मार्ग चुन लेगी। नदी का यह जीवन मार्क्स के प्रसिद्ध द्वन्द्वात्मक (ऐतिहासिक) भौतिकवाद का प्रतिनिधित्व करता है।'

3.6.3 मार्क्सवादी इतिहासकार

कार्ल मार्क्स के समकालीन हेनरी मार्गन ने 'एंशियेन्ट सोसायटी' में आदिम समाज की भौतिकवादी व्याख्या प्रस्तुत कर, मार्क्सवादी इतिहास लेखन का प्रारम्भ कर दिया था।

व्लादीमिर लेनिन की पुस्तक 'व्हाट इज़ टु बी डन' (1902) ने पूंजीवाद को उखाड़ फेंकने के लिए एक आमूल क्रान्ति की आवश्यकता पर बल दिया गया था। लेनिन ने 'एप्रिल थीसिस' में बोल्शेविक दल की योजना प्रस्तुत की थी। इसमें लेनिन ने यह विचार प्रस्तुत किया था कि समाजवादी क्रान्ति को हम सोवियतों (पंचायतों)द्वारा अनन्तिम संसदीय सरकार से सत्ता छीन कर समस्त देश में ऊपर से नीचे तक - 'श्रमिकों, खेतिहर मज़दूरों और किसानों के प्रतिनिधियों से बने गणतन्त्र की स्थापना करके हासिल कर सकते हैं।'

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ब्रिटिश इतिहाकार आर0 एच0 टानी की रचनाओं - 'दि एग्रेरियन प्रॉबलम इन दि सिक्सटींथ सेन्चुरी (1912) तथा 'रिलीजन एण्ड दि राइज़ ऑफ़ कैपिटलिज़्म' (1926) में आर्थिक इतिहास में उसकी नीतिपरक अभिरुचि एवं तल्लीनता प्रतिबिम्बित होती है।

क्रिस्टोफ़र हिल की रचनाओं - 'इकॉनॅमिक प्रॉबलम्स ऑफ़ दि चर्च' (1956), 'प्योरिटैनिज़्म एण्ड रिवोल्यूशन' (1958), 'इन्टैलैक्चुअल ओरिजिन्स ऑफ़ दि इंग्लिश रिवोल्यूशन' (1965) तथा 'दि वर्ड टर्न्ड अपसाइड डाउन' (1972) में इतिहास के विकास में आर्थिक कारकों की महत्ता दर्शाई गई है।

ई0 एच0 हॉब्सबॉम की पुस्तक 'लेबरिंग मैन' (1964), श्रमिक वर्ग का विश्लेषणात्मक इतिहास है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के ब्रिटिश इतिहासकार ई0 पी0 टॉमसन ने 'दि मेकिंग ऑफ़ दि इंग्लिश वर्किंगं क्लास' (1963) में आम आदमी का इतिहास लिखकर अनेक परवर्ती इतिहासकारों के लिए पथप्रदर्शक की भूमिका निभाई है। वर्ग-चेतना, वर्ग-संघर्ष और वर्ग-निर्माण पर टॉमसन का लेखन विचारोत्तेजक एक चुनौती भरा है। टॉमसन ने क्रिस्टोफ़र हिल, एरिक हॉब्सबॉम, रॉडनी हिल्टन आदि के साथ मिलकर 'मार्क्सिस्ट हिस्टोरिकल ग्रुप' की स्थापना की जिसने आगे चलकर 'पास्ट एण्ड प्रज़ेण्ट' जैसी पत्रिका का प्रकाशन किया।

प्रसिद्ध मार्क्सवादी इतिहासकार ई0 एच0 कार ने 'व्हाट इज़ हिस्ट्री' (1961) में यह दर्शाया है हर इतिहासकार तथ्यों का आकलन और उनकी व्याख्या अपने-अपने समय और परिस्थितियों के अनुरूप ही करता है। कार की दृष्टि में वस्तुनिष्ठ इतिहास की रचना असम्भव है क्योंकि इतिहासकार इतिहास को वैसा ही रूप देता है जैसा कि वह चाहता है।

भारत में मार्क्सवादी इतिहास लेखन की परम्परा के प्रारम्भिक प्रयासों में बी0 एन0 दत्त की दो पुस्तकों - 'डायलेक्टिक्स ऑफ़ लैण्ड ओनरशिप इन इण्डिया' तथा 'कास्ट एण्ड क्लास इन एंशियेन्ट इण्डिया' का उल्ल्ेख किया जा सकता है। डी0 डी0 कोसाम्बी ने पुरातत्वशास्त्र, भौतिक वस्तुओं, प्राचीन व्यापार मार्गों के क्षेत्रीय सर्वेक्षणों, मानव जाति के

वर्णन तथा गणित की सहायता से भारतीय इतिहास के अध्ययन में मार्क्सवादी प्रणाली का उपयोग किया। उनकी पुस्तकों में - 'एन इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' (1956) तथा 'कल्चर एण्ड सिविलाइज़ेशन ऑफ़ एंशियेन्ट इण्डिया' (1964) सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। प्राचीन भारत के इतिहास को मार्क्सवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने में आर0 एस0 शर्मा का विशेष योगदान है। शर्मा की पुस्तकों में 'इण्डियन फ्यूडलिज़्म' (1965), 'लाइट ऑन अर्ली इण्डियन सोसायटी एण्ड इकॉनॅमी' (1966), तथा 'शूद्राज़ इन एंशियेन्ट इण्डिया' (1980) उल्लेखनीय हैं। रोमिला थापर की 'अशोक एण्ड दि डिक्लाइन ऑफ़ दि मौर्याज़' (1963), 'एंशियेन्ट इण्डियन सोशल हिस्ट्री' (1978) आदि प्राचीन भारतीय इतिहास की प्रमुख मार्क्सवादी पुस्तकें हैं।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में इरफ़ान हबीब की पुस्तक 'एग्रेरियन सिस्टम ऑफ़ मुगल इण्डिया' ने व्यक्तित्व प्रधान इतिहास की परम्परा को तोड़कर आम आदमी की आर्थिक समस्याओं और गतिविधियों को महत्व दिया है। अपने ग्रंथ 'इण्टरप्रेटिंग इण्डियन हिस्ट्री' में वह इतिहास लेखन में घटनाओं के वृतान्त से अधिक उनकी व्याख्या की महत्ता पर प्रकाश डालता है। इरफ़ान हबीब की रचनाओं में आम आदमी को, विशेषकर किसान को और उसके गाँव को, उसके राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक में परिवेश में समझने का प्रयास किया गया है। नूरुल हसन, हरबंस मुखिया, बी0 एल0 ग्रोवर आदि ने मध्यकालीन भारतीय इतिहास के विभिन्न पहलुओं पर मार्क्सवादी दृष्टिकोण से प्रकाश डाला है।

आधुनिक भारत के इतिहास का मार्क्सवादी दृष्टिकोण हमको रजनी पाम दत्त की 'इण्डिया टु डे', एम0 एन0 राय की 'पॉवर्टी ऑर प्लेन्टी' तथा 'गांधिज़्म, नेशनलिज़्म, सोशलिज़्म' , ए0 आर0 देसाई की - 'सोशल बैकग्राण्ड ऑफ़ इण्डियन नेशनलिज़्म' तथा 'पीज़ेन्ट स्ट्रगल्स इन इण्डिया', बिपन चन्द्रा की 'राइज़ एण्ड ग्रोथ ऑफ़ इकॉनॅमिक नेशनलिज़्म इन इण्डिया', तथा सुमीत सरकार की 'स्वदेशी मूवमेन्ट इन बैंगाल', के0 एम0 पनिकर की - 'अगेन्स्ट लॉर्ड एण्ड स्टेट' (1989) तथा 'कोलोनियलिज़्म, कल्चर एण्ड रेज़िस्टेन्स' आदि रचनाओं में मिलता है।

ग्रैम्सकी, ई0 पी0 टॉमसन तथा एरिक हॉब्सबाम जैसे ब्रिटिश सामाजिक इतिहासकारों से प्रभावित होकर रंजीत गुहा और उनके साथियों ने इतिहास तथा मानव-विज्ञान का संयोजन कर उत्तर-औपनिवेशिककालीन भारत के इतिहास लेखन को एक नयी दिशा प्रदान की। इस विचारधारा के इतिहासकारों ने आम आदमी (विशेषकर, नीचे के तबके के लोग, जैसे आदिवासी, पर्वत-वासी, औद्योगिक मज़दूर, खेतिहर मज़दूर आदि) की भूमिका के दृष्टिकोण से भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का विवेचनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया है। आधुनिक इतिहास लेखन पर कार्ल मार्क्स द्वारा इतिहास की भौतिकतावादी व्याख्या के क्रान्तिकारी प्रभाव का हम आज सर्वत्र अनुभव कर सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. कार्ल मार्क्स से पूर्व निजी सम्पत्ति के अधिकार के उन्मूलन विषयक विचार।
2. कार्ल मार्क्स की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय।
3. प्रथम इण्टर नेशनल।

3.7 सारांश

कार्ल मार्क्स एक जर्मन दार्शनिक, अर्थ-शास्त्री, समाज-शास्त्री, इतिहासकार, पत्रकार तथा क्रान्तिकारी समाजवादी था। भौतिक कारक को इतिहास में निर्धारक कारक के रूप में प्रतिष्ठित करना उसके इतिहास लेखन की वह विशेषता है जो उससे पूर्व के इतिहास लेखन में सर्वथा अनुपस्थित थी। आधुनिक युग में मार्क्स की अर्थशास्त्र विषयक रचनाओं ने श्रमिक और पूंजी के पारस्परिक सम्बन्धों की समझ को एक आधार प्रदान किया है और परवर्ती अर्थशास्त्रियों के आर्थिक चिन्तन को अत्यधिक प्रभावित किया है। मार्क्स की कृति 'दास कैपिटल' में इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या की गई है। 'कम्युनिस्ट मैनिफ़ैस्टो (सह-लेखक-फ्रेडरिक एन्गेल्स), तथा 'दि जर्मन आइडियोलोजी' उसकी अन्य प्रमुख रचनाएं हैं। मार्क्स के समाज, अर्थशास्त्र तथा राजनीति विषयक सिद्धान्तों के कुल जोड़ को हम 'मार्क्सवाद' के रूप में जानते हैं। मार्क्स ने समाजवाद के सिद्धान्तों और उसके उद्देश्यों, उनकी उत्पत्ति की ऐतिहासिक अनिवार्यता एवं प्राप्ति के तरीकों तथा नए समाजवादी समाज की रूपरेखा प्रस्तुत की। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर उसने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि पूंजीवादी समाज का विनाश तथा निकट भविष्य में समाजवादी क्रान्ति की सफलता अवश्यम्भावी है। मार्क्सवाद में विश्लेषण एवं विवेचना का प्रमुख आधार इतिहास है और उसके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों मूल आधार भी इतिहास ही है। इतिहास को मार्क्स ने एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा था किन्तु उसकी इतिहास की अवधारणा का मुख्य आधार आर्थिक जीवन है।

टॉमस मूर,'डिगर्स' नामक शुद्धाचारवादी धार्मिक दल, जीन जैकस रूसो, टॉमस पेन विलियम गोडविन, बैब्यूफ़, सिसमोंडी, रॉबर्ट ओवन, सेन्ट साइमन, चार्ल्स फूरिए तथा लुई ब्लां आदि की समाजवादी विचारधारा ने मार्क्स को प्रभावित किया था।

जर्मनी में फ़र्डिनैन्ड लसैल ने 1863 में 'जनरल एसोसियेशन ऑफ़ वर्कर्स' की स्थापना की। पेरिस में कार्यरत जर्मन मज़दूरों ने 1836 में 'लीग ऑफ़ दि जस्ट' की स्थापना की। 1864 में स्थापित 'प्रथम इण्टरनेशनल' कार्ल मार्क्स की देन थी। मार्क्स ने मज़दूर वर्गों का आवाहन किया कि वो अपनी मुक्ति की लड़ाई स्वयं लड़ें। कार्ल मार्क्स की मृत्यु 1883 में हो गई थी किन्तु 1889 में आयोजित 'द्वितीय इण्टरनेशनल' उसी के प्रयासों का सुपरिणाम था।

मार्क्सवादी अथवा ऐतिहासिक भौतिकतावादी लेखन, इतिहास लेखन की वह शाखा है जो मार्क्सवाद के मुख्य सिद्धान्त -'ऐतिहासिक परिणामों को निर्धारित करने में सामाजिक वर्ग व आर्थिक दबावों की निर्णायक भूमिका' में विश्वास रखती है। मार्क्सवादी इतिहास सामान्यतः नियतिवादी है क्योंकि यह प्रदर्शित करता है कि इतिहास एक निश्चित अन्त की ओर बढ़ता है और वह अन्त है - 'एक वर्गहीन मानव-समाज' की स्थापना।

हेनरी मार्गन, व्लादीमिर लेनिन, आर0 एच0 टानी, क्रिस्टोफ़र हिल, ई0 एच0 हॉब्सबॉम, ई0 पी0 टॉमसन, ई0 एच0 कार, बी0 एन0 दत्त, डी0 डी0 कोसाम्बी, आर0 एस0 शर्मा, रोमिला थापर, इरफ़ान हबीब, एम0 एन0 राय,ए0 आर0 देसाई, बिपन चन्द्रा, के0 एम0 पनिकर, रंजीत गुहा आदि इतिहासकारों ने मार्क्स की परम्परा को आगे बढ़ाया है।

3.8 पारिभाषिक शब्दावली

उटोपिया - कल्पना लोक

'प्रथम इण्टरनेशल' - 'अन्तर्राष्ट्रीय कामगार समिति'

आइडियोलोजी - सिद्धान्तवाद

क्लास स्ट्रगल - वर्ग-संघर्ष

मैनिफ़ैस्टो - घोषणापत्र

फ़्यूडलिज़्म - सामन्तवाद

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 3.4.1 कार्ल मार्क्स से पूर्व निजी सम्पत्ति के अधिकार के उन्मूलन विषयक विचार
2. देखिए 3.5.3 कार्ल मार्क्स की रचनाएं
3. देखिए 3.5.2 प्रथम इण्टरनेशनल

3.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

कॉलिंगवुड, आर0 जी0 - दि आइडिया ऑफ़ हिस्ट्री, लन्दन, 1978

गूच, जी0 पी0 - दि हिस्ट्री एण्ड दि हिस्टोरियन्स ऑफ़ दि नाइन्टीन्थ सेन्चुरी, लन्दन, 1913

श्रीधरन, ई0 - ए टैक्स्ट बुक ऑफ़ हिस्टोरियोग्राफ़ी, नई दिल्ली, 2013

कार, ई0 एच0 (अनुवादकः चक्रधर, अशोक) - 'इतिहास क्या है', नई दिल्ली, 1993

थापर, रोमिला (सम्पादक) - 'इतिहास की पुनर्व्याख्या' नई दिल्ली, 1991

पामदत्त, रजनी - ' आज का भारत', दिल्ली, 2001

लेनिन - 'मार्क्स, एंगेल्स-मार्क्सवाद', मॉस्को, 1971

3.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

वर्मा, लालबहादुर - 'इतिहास के बारे में', इलाहाबाद, 2000

शर्मा, रामविलास - 'इतिहास दर्शन', नई दिल्ली, 1995

शर्मा, आर0 एस0 - 'शूद्रों का प्राचीन इतिहास', नई दिल्ली, 1998

सरकार, सुमीत - 'सामाजिक इतिहास लेखन की चुनौती', दिल्ली, 2001

हबीब, इरफ़ान - 'भारतीय इतिहास की प्रमुख व्याख्याएं', नई दिल्ली, 1999

गुहा, रंजीत, गायत्री चक्रबर्ती (सम्पादक) - 'सेलेक्टेड सॅबॅल्टर्न स्टडीज़', दिल्ली, 1988

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

इकाई चार

बीसवीं शताब्दी का इतिहास लेखन: स्पैंग्लर और टायनबी के संदर्भ में

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 प्राचीन काल से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक युगों के चक्रीय सिद्धान्त

- **4.3.1** प्राचीन भारतीय तथा ग्रीक युग-चक्रवादी सिद्धान्त
- **4.3.2** ईसाई तथा मुस्लिम युग-चक्रवादी सिद्धान्त
- **4.3.3** ज़ियाम्बत्तिस्ता विको तथा हर्डर के युग-चक्रवादी सिद्धान्त

4.4. ओस्वॉल्ड ऑर्नाल्ड स्पेंगलर का युग चक्रवादी सिद्धान्त

- **4.4.1** स्पेंगलर का संस्कृतियों के उत्थान-पतन विषयक विचार
- **4.4.2** स्पेंगलर का विश्व-इतिहास विषयक विचार
- **4.4.3** स्पेंगलर की दृष्टि में प्रत्येक संस्कृति की अपनी-अपनी विशिष्टताएं
- **4.4.4** 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट'
- **4.4.5** स्पेंगलर की अन्य रचनाएं
- **4.4.6** एक इतिहाकार के रूप में स्पेंगलर का आकलन

4.5 टायनबी का युग चक्रवादी सिद्धान्त

- **4.5.1** टायनबी द्वारा सभ्यताओं के उत्थान एवं पतन की व्याख्या
- **4.5.2** चुनौती एवं प्रतिक्रिया
- **4.5.3** सभ्यता के विघटन के कारण
- **4.5.4** सभ्यता का पतन
- **4.5.5** टायनबी की रचनाएं
- **4.5.6** एक इतिहास-दार्शनिक के रूप में टायनबी का आंकलन

4.6 सारांश

4.7 पारिभाषिक शब्दावली

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक इतिहास एक स्वतन्त्र वैज्ञानिक विषय के रूप में स्थापित हो चुका था और इसकी प्रणाली व तकनीक पर सी0 वी0 लैंग्लोइस, चार्ल्स सीग्नोबोस, तथा लॉर्ड एक्टन द्वारा इतिहास के सिद्धान्त के पुनर्परीक्षण के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य हुआ। डर्खेम, वेबर और फ्रॉयड ने ऐतिहासिक विश्लेषण की परम्परागत प्रणाली को एक नया आयाम दिया। स्पेंगलर ने प्रथम विश्व युद्ध के बाद और टायनबी ने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विशेषज्ञता के इस युग में इतिहास में संश्लेषण और उद्देश्य की आवश्यकता पर बल दिया। ओस्वॉल्ड स्पेंगलर तथा ऑर्नाल्ड जे0 टायनबी की रचनाएं प्राथमिक स्रोतों पर आधारित इतिहास तथा सार्वभौमिक इतिहास के समाकलन के दो उदाहरण हैं। स्पेंगलर की रचनाओं में सामान्यीकरण की अधिकता है जब कि टायनबी स्रोत पर आधारित इतिहास लेखन तथा सार्वभौमिक इतिहास लेखन के समाकलन के साथ मानव सभ्यताओं के अध्ययन की ओर अग्रसर होता है। दोनों ही इतिहासकारों ने इतिहास के प्रस्तुतीकरण में सोद्देश्यवादी सिद्धान्तों को समाहित करने का प्रयास किया है। स्पेंगलर और टायनबी वास्तव में विश्व युद्ध प्रारम्भ होने से ठीक पहले के समय के उत्तर-आधुनिक शैली के अनुदारवादी विचारक हैं। इस युद्ध की भयावह विनाश लीला ने बीसवीं शताब्दी के विचारकों को दार्शनिक स्तब्धता और निराशा की स्थिति में डाल दिया था। स्पेंगलर की रचना 'दि डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' में भी विचारकों की ऐसी ही मनःस्थिति का प्रतिबिम्बन है। 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' में इस धारणा को प्रस्तुत किया गया है कि संस्कृतियों के इतिहास को जन्म, विकास और पतन के निश्चित नियम संचालित करते हैं और इन नियमों का गहन अध्ययन व विश्लेषण कर हम इतिहास के विषय में सटीक भविष्यवाणी कर सकते हैं। स्पेंगलर द्वारा सार्वाभौमिक इतिहास की व्यवस्थित व्याख्या का प्रयास सराहनीय है।

टायनबी ने 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' में स्पेंगलर के ग्रंथ 'दि डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' में प्रतिपादित चक्रीय सिद्धान्त का अनुकरण किया था किन्तु उसे उसका प्राचीन यान्त्रिक नियतिवाद का आदर्श स्वीकार्य नहीं था। टायनबी ने अनुभवाश्रित एवं प्रेरक आदर्श का चयन किया। इस कार्य-प्रणाली में 26 सभ्यताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है क्योंकि टायनबी यह मानता है कि ऐतिहासिक अध्ययन की सुबोधगम्य इकाइयां राष्ट्र अथवा काल नहीं बल्कि समाज अथवा सभ्यताएं हैं। टायनबी की इतिहास रूपी पहेली की प्रमुख कुंजी अपने द्वारा प्रतिपादित 'चुनौती और प्रतिक्रिया' की परिकल्पना है। टायनबी ने चुनौती और प्रतिक्रिया की परिकल्पना द्वारा विभिन्न सभ्यताओं के जन्म, विकास, विघटन और पतन के चक्र को समझने का प्रयास किया है। टायनबी का यह मानना है कि किसी सभ्यता का विकास तब होता है जबकि उसके समक्ष आई हुई चुनौती का उसके द्वारा दिया गया जवाब न केवल सफल हो अपितु आगे अधिक कठिन चुनौती का मुकाबला करने के लिए उसके नागरिक तत्पर हों। टायनबी सभ्यताओं के विकास और उनके पतन को एक आध्यात्मिक प्रक्रिया के रूप में देखता है। आज हम इतिहास को कला और विज्ञान दोनों के सम्मिलन के रूप में जानते हैं और इस निष्कर्ष तक पहुंचने में टायनबी के दृष्टिकोण ने हमारी सहायता की है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको प्राचीन काल व मध्यकाल में युगों के विभिन्न चक्रीय सिद्धान्तों की संक्षिप्त चर्चा करते हुए आधुनिक काल के, विशेषकर स्पेंगलर तथा टायनबी के युगों के चक्रीय सिद्धान्तों से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

- प्राचीन काल से लेकर बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक युगों के चक्रीय सिद्धान्तों के विषय में।
- आदि काल से लेकर 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' की रचना से पूर्व तक की मानव सभ्यताओं के जन्म, विकास, पतन व अन्त के विषय में।
- स्पेंगलर द्वारा आठ संस्कृतियों के विवरण, विशेषकर पाश्चात्य संस्कृति-सभ्यता के पतन के विषय में।
- टायनबी द्वारा 26 सभ्यताओं के उत्थान एवं पतन के विश्लेषणात्मक अध्ययन के विषय में।

4.3 प्राचीन काल से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक युगों के चक्रीय सिद्धान्त

4.3.1 प्राचीन भारतीय तथा ग्रीक युग-चक्रवादी सिद्धान्त

प्राचीन भारतीय परम्परा में इतिहास को एक निरन्तर गतिशील चक्र के रूप में माना गया है। भारतीय युग चक्रीय सिद्धान्त प्राचीन वैदिक, जैन एवं बौद्ध दर्शन में दृष्टव्य है। भारतीय संस्कृति में चार युगों की कल्पना की गई है -

कृत युग - कृत युग को मानव इतिहास का स्वर्ण युग माना गया है।

त्रेता युग - युगचक्र के इस द्वितीय चरण में मानवीय गुणों तथा सामाजिक सुखों की अवनति परिलक्षित होने लगी।

द्वापर युग - युगचक्र के इस तृतीय चरण में मानवीय कष्टों, संघर्षों का दौर प्रारम्भ हुआ और मानव-जीवन को सन्मार्ग पर चलाने हेतु संस्कारों का सृजन तथा नियमों की व्यवस्था की गई।

कलियुग - युगचक्र के इस अन्तिम चरण में मानवता अपने पतन की पराकाष्ठा पर पहंुच जाती है, धर्म की अवनति होने लगती है और सामाजिक वैमनस्य बढ़ने लगता है।

भारतीय युगचक्रवादी सिद्धान्त से अवतारवाद की अवधारणा घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है। किसी भी युग में जब अधर्म और अनाचार अपनी पराकाष्ठा पर पहंुच जाते हैं तो भगवान साधुजनों की रक्षार्थ व दुष्टों के विनाशार्थ अवतार लेते हैं।

यूनानी इतिहासकारों - हेसिओड, थ्यूसीडाइडीस तथा तथा पोलिबियस ने युग- चक्रवादी सिद्धान्त में अपनी आस्था व्यक्त की है। भारतीयों की भांति ही यूनानी विचारकों ने भी इतिहास को चार युगों में विभाजित किया है। इन चार युगों के नाम हैं - स्वर्ण युग, रजत युग, कांस्य युग एवं लौह युग।

4.3.2 ईसाई तथा मुस्लिम युग-चक्रवादी सिद्धान्त

मध्य काल में ईसाई परम्परा के इतिहासकार सन्त अगस्ताइन ने देव नगर और पाप नगर के विरोधाभास का प्रतिपादन करते हुए इतिहास में सात अवस्थाओं का उल्लेख किया है।

अरबी इतिहासकार इब्न खलदून यह मानता है कि सभ्यताएं शरीर की भांति विकसित, प्रौढ़ एवं क्षीण होकर अपनी निश्चित जीवन-अवधि व्यतीत करती हैं और अन्ततः नष्ट हो जाती हैं।

4.3.3 ज़ियाम्बत्तिस्ता विको तथा हर्डर के युग-चक्रवादी सिद्धान्त

युगों के चक्रात्मक क्रम के सिद्धान्त का प्रमुख आशय यह है कि जिस प्रकार दिन के बाद रात और रात के बाद दिन आते हैं, दुख के बाद सुख और सुख के बाद दुख आते हैं और एक ऋतु एक बाद दूसरी तथा दूसरी के बाद तीसरी ऋतु आती है, ठीक उसी तरह विभिन्न युग एक के बाद एक आते हैं और इतिहास की गति को नियमित करते हैं। इतिहास-दर्शन के संस्थापक और महान इतिहासकार, इटली निवासी ज़ियाम्बत्तिस्ता विको (1608-1644) के अनुसार देश को और मानव-सभ्यता को विकास के निश्चित चरणों से होकर गुज़रना पड़ता है। ये चरण हैं - जन्म, परिपक्वता, पराभव और पतन। विको ने आधुनिक काल में इतिहास के चक्रीय सिद्धान्त को पुनर्जीवित किया था। विको इतिहास को तीन युगों - 'हीरोइक युग', 'क्लासिक युग' और 'पतन का युग' में विभाजित करता है। मानव सभ्यता के विकास के प्रत्येक चरण के आचार-व्यवहार, कानून, अर्थ-व्यवस्था, साहित्य व कला सम्बन्धी अपनी-अपनी विशेषताएं होती हैं। उसने सांस्कृतिक दृष्टि से हर युग और हर देश में अन्तर देखा। इसका तात्पर्य यह है कि देश और काल के अनुसार ही किसी प्रकार का ऐतिहासिक आकलन किया जाना उचित है।

अठारहवीं शताब्दी में प्रशा के दार्शनिक एवं ब्रह्मविज्ञानी हर्डर ने प्रत्येक राष्ट्रीय संस्कृति को - अपने अन्तर्निहित लक्षण 'राष्ट्रीय चरित्र' के साथ एक जैविक इकाई माना जिसकी कि अभिव्यक्ति भाषा, साहित्य, कला और नैतिक-संहिता में होती है। हर्डर जातीय श्रेष्ठता के सिद्धान्त में विश्वास नहीं करता है। हर्डर के अनुसार किसी भी देश का राष्ट्रीय चरित्र उसके इतिहास को अत्यधिक प्रभावित करता है। हर्डर इतिहासकारों को निर्देश देते हुए कहता है -'किसी देश के बारे में लिखने से पहले तुम उस देश के साथ सहानुभूति रखो, उसके युग में जाओ, उसके भूगोल में जाओ, उसके सम्पूर्ण इतिहास में जाओ, यह अनुभव करो कि तुम वहीं हो।'

4.4. ओस्वॉल्ड ऑर्नाल्ड स्पेंगलर का युग चक्रवादी सिद्धान्त

4.4.1 स्पेंगलर का संस्कृतियों के उत्थान-पतन विषयक विचार

ओस्वॉल्ड ऑर्नाल्ड स्पेंगलर (1880-1936) एक जर्मन इतिहासकार और इतिहास-दार्शनिक था। उसकी प्रसिद्धि का मुख्य आधार 1918 तथा 1922 में प्रकाशित प्रारब्ध पर लिखी उसकी युद्ध विरोधी पुस्तक 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' है। इस पुस्तक में स्पेंगलर ने सम्पूर्ण विश्व के इतिहास का अध्ययन किया है। अपने इस ग्रंथ में उसने एक नए सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। वह सिद्धान्त है - 'प्रत्येक मानव-सभ्यता की एक सीमित जीवन-अवधि होती है और अन्ततः प्रत्येक सभ्यता का पतन होता है।' स्पेंगलर इतिहास को शाश्वत मानता है जिसमें विभिन्न संस्कृतियों का उत्थान और पतन होता रहता है। स्पेंगलर विश्व इतिहास को रेखीय आकार (जिसके अनुसार इतिहास को विभिन्न कालों - प्राचीन, मध्य और आधुनिक में विभाजित किया जाता है।) में कल्पित नहीं करता है। स्पेंगलर विश्व इतिहास को महान संस्कृतियों का एक नाटक मानता है। इस नाटक में प्रत्येक संस्कृत स्वयमेव पल्लवित होती है। प्रत्येक संस्कृति एक जैव इकाई के समान है जिसके कि विभिन्न जीवन-चक्र होते हैं। प्रत्येक संस्कृति का अपना बचपन, जवानी और बुढ़ापा

होता है और एक समय ऐसा भी आता है जब कि उस संस्कृति की मृत्यु हो जाती है, अर्थात् वह पूरी तरह नष्ट हो जाती है। प्रत्येक संस्कृति आरम्भ में बर्बरता के दौर से गुज़रती है और कालान्तर में विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं, कला, विज्ञान आदि का विकास होता है। अपने अंतिम दौर में संस्कृति विकृत होकर अपनी सृजनशीलता को खोकर पतन की ओर अग्रसर होती है जिसमें सर्वत्र विकृतियां दिखाई देने लगती हैं और संस्कृति की सृजनशीलता समाप्त हो जाती है। अन्ततः संस्कृति नष्ट हो जाती है। स्पेंगलर, जातियों, भाषाओं, भू-प्रदेशों आदि को वृक्ष-रूपी संस्कृतियों की फूल-पत्तियां मानता है। वह संस्कृतियों को जैविक मानते हुए विश्व इतिहास को उनकी सामूहिक जीवनियां मानता है। संस्कृतियों के जीवन में वसन्त, ग्रीष्म, पतझड़ और शीत ऋतु आते हैं।

4.4.2 स्पेंगलर का विश्व-इतिहास विषयक विचार

स्पेंगलर आठ प्रमुख संस्कृतियों का उल्लेख करता है। ये आठ संस्कृतियां हैं - मिस्र की, बेबीलोनियन, भारतीय, चीनी, ग्रीको-रोमन (क्लासिकल), अरबी, मैक्सिकन और पाश्चात्य (यूरोपियन-अमेरिकन)। इनमें से प्रत्येक संस्कृति अपने-अपने प्रमुख परिसर अथवा मूल प्रतीक पर आधारित है और यही उसके विज्ञान, दर्शन, कला, आस्था, जीवन-पद्धति, विचार और कार्यों को निर्दिष्ट करते हैं। स्पेंगलर इन सभी संस्कृतियों के युगों के चक्र को निश्चित मानता है। प्रत्येक संस्कृति का जीवन औसतन 1000 वर्ष का होता है। स्पेंगलर का यह विचार है कि जब किसी संस्कृति की आत्मा का विकास रुक जाता है तो वह अपने अन्तिम रूप में सभ्यता में प्रविष्ट होती है। स्पेंगलर पाश्चात्य सभ्यता को ही एकमात्र सभ्यता मानने वालों से सहमत नहीं है। स्पेंगलर मिस्र, बेबीलोनिया तथा मिनोन सभ्यताओं को मृत सभ्यताएं, पोलीनीसियन, एस्किमो, नामाड, स्पार्तन तथा ओसमानली सभ्यताओं को अवरुद्ध (जिनका विकास रुक गया हो) सभ्यताएं तथा आधुनिक पाश्चात्य ईसाई समाज, कट्टरपंथी ईसाई समाज, मुस्लिम, हिन्दू तथा सुदूर पूर्व की सभ्यताओं को वर्तमान काल में भी जीवित सभ्यताएं मानता है। जब संस्कृति सभ्यता के स्तर पर आ जाती है तो उसमें रहने वालों के मन-मस्तिष्क में धर्म का स्थान धर्महीन विज्ञान, समष्टि के स्थान पर व्यष्टि, वास्तविक शाश्वत मूल्यों के स्थान पर धन-सम्पदा सम्बन्धी मूल्य और मातृत्व जैसी पवित्र व निश्छल भावना के स्थान पर काम-भावना विकसित हो जाती है। जैसे दिया बुझने पहले एक बार फिर तेज़ हो जाता है उसी प्रकार सभ्यता अपने पतन से पूर्व एक बार फिर धर्म की ओर उन्मुख होती है जिसके कारण धर्म सुधार आन्दोलन का विकास होता है और रहस्यवादी प्रवृत्तियां भी प्रबल हो जाती हैं किन्तु यह प्रवृत्ति एक संस्कृति के पतन और दूसरी संस्कृति के जन्म की सूचक है।

स्पेंगलर ने जिन 8 संस्कृतियों का उल्लेख किया है, उनमें से उसने मुख्यतः चार संस्कृतियों की विस्तृत चर्चा की है। इनमें प्रथम भारतीय संस्कृति है, द्वितीय संस्कृति - पुरातन यूरोपीय संस्कृति (ग्रीको-रोमन) है, तृतीय मध्यकालीन संस्कृति है (इसमें ईसाई और मुस्लिम संस्कृतियां सम्मिलित हैं)और चौथी संस्कृति पाश्चात्य संस्कृति है। स्पेंगलर के अनुसार बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक अपने जन्म से 1000 वर्ष पूरा करने के बाद पाश्चात्य संस्कृति शीत ऋतु के पड़ाव तक अर्थात् अपने पतन के चरण तक पहुंच गई है। स्पेंगलर के अनुसार आधुनिक पाश्चात्य देश वासी फ़ॉस्टियन (अपनी आत्मा बेचकर भौतिक सुख खरीदने वाले) हैं। अपनी भौतिक प्रगति पर गर्व करने वाले इन पाश्चात्य

देशवासियों की दुखद स्थिति पर स्पेंगलर शोक व्यक्त करता है क्योंकि वो स्वयं अपने भीतर-भीतर जानते हैं कि वो जिस लक्ष्य तक पहुँचने का अनवरत एवं अनथक प्रयास कर रहे हैं, उस तक वो कभी पहुचुंगे नहीं।

4.4.3 स्पेंगलर की दृष्टि में प्रत्येक संस्कृति की अपनी-अपनी विशिष्टताएं

स्पेंगलर का यह मानना है कि किसी एक संस्कृति की भावना किसी दूसरी संस्कृति को हस्तान्तरित नहीं हो सकती। हर संस्कृति का मूल प्रतीक विशिष्ट और अन्य सभी सभ्यताओं सें अलग होता है। मिस्र की संस्कृति का मूल प्रतीक - पाषाण है, ग्रीक संस्कृति का मूल प्रतीक - सौन्दर्य का आदर्श है, भारतीय संस्कृति का मूल प्रतीक - आत्मा की मुक्ति है और पाश्चात्य संस्कृति का मूल प्रतीक - कंदरा अथवा गुंबद है।

4.4.4 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट'

'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' में इस धारणा को प्रस्तुत किया गया है कि संस्कृतियों के इतिहास को जन्म, विकास और पतन के निश्चित नियम संचालित करते हैं और इन नियमों का गहन अध्ययन व विश्लेषण कर हम इतिहास के विषय में सटीक भविष्यवाणी कर सकते हैं। स्पेंगलर के अनुसार 'उत्थान के बाद पतन होता है' का सिद्धान्त संस्कृतियों-सभ्यताओं के इतिहास पर भी लागू होता है। गर्वोन्मत्त मिस्र, सुन्दर ग्रीस और महान रोम की सभ्यताएं , सभी एक दिन काल के गर्त में समा गईं। जूडिया, फ़ोनेसिया, कार्थेज, बेबीलोनिया, असीरिया और पर्शिया की सभ्यताएं भी विनष्ट हो गईं। स्पेंगलर यह प्रश्न उठाता है - 'क्या उत्थान और पतन का यह नियम आधुनिक इटली, स्पेन, फ़्रांस, इंग्लैण्ड और जर्मनी जैसे देशों वाले यूरोप पर लागू नहीं होगा?'

'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट', ऑटो सीक की रचना 'दि डिक्लाइन ऑफ़ दि एन्टीक्विटी' से प्रभावित थी। इसमें समकालीन विश्व-व्यापी युद्ध-विरोधी मानसिकता का प्रतिबिम्बन है। 'इस पुस्तक के दूसरे खण्ड में स्पेंगलर ने एक ऐसा वैश्विक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जिसमें प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात जर्मनी और ऑस्ट्रिया के निवासियों की भावनाओं की प्रतिध्वनि है। स्पेंगलर ने मित्र राष्ट्रों की विजय के खोखलेपन को भी दर्शाया है। इस पुस्तक में लोकतन्त्र को पतनशील सभ्यता का द्योतक माना गया है। जर्मनी में लोकतन्त्र की असफलता के पश्चात बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक के प्रारम्भ में स्पेंगलर ने तानाशाही अथवा अधिनायक तन्त्र के उत्थान का समर्थन किया है।

4.4.5 स्पेंगलर की अन्य रचनाएं

1920 में स्पेंगलर ने 'प्रशियनडम एण्ड सोशलिज़्म' की रचना की जिसमें कि उसने समाजवाद और सत्तावाद के एक सुगठित राष्ट्रवादी रूप के पक्ष में तर्क प्रस्तुत किए हैं। अपनी पुस्तक 'मैन एण्ड दि टैक्नीक' (1931) में स्पेंगलर ने संस्कृति पर तकनीकी विकास और औद्योगिकीकरण के हानिकारक प्रभाव को दर्शाया है। स्पेंगलर की दर्शन सम्बन्धी एक पुस्तक - 'दि मैटाफ़िज़िकल आइडिया ऑफ़ हेराक्लिटिस फ़िलोसॅफ़ी' है।

अपने निजी पत्रों में स्पेंगलर ने यहूदी-विरोधी विचारधारा की खुलकर भर्त्सना की है। स्पेंगलर ने आने वाले समय में एक ऐसा विश्व युद्ध होने की चेतावनी दी थी जिसमें कि पाश्चात्य सभ्यता के विनष्ट होने का संकट था।

4.4.6 एक इतिहाकार के रूप में स्पेंगलर का आकलन

गोबिल जैसे नाज़ी, स्पेंगलर को अपना बौद्धिक अग्रदूत मानते थे किन्तु 1933 में उसे जर्मनी तथा समस्त यूरोप के भविष्य के विषय में निराशावादी दृष्टिकोण रखने, जातीय श्रेष्ठता की नाज़ी विचारधारा का समर्थन न करने, और अपनी विवादास्पद आलोचनात्मक रचना - 'दि आवर ऑफ़ डिसीज़न' के लेखन के आरोप में जर्मनी से निर्वासित कर दिया गया। हिटलर के राजनीतिक उत्थान के बावजूद वह अपने दृष्टिकोण पर निरन्तर कायम रहा।

स्पेंगलर द्वारा सार्वाभौमिक इतिहास की व्यवस्थित व्याख्या का प्रयास सराहनीय है। स्पेंगलर द्वारा सन्निकट निष्ठुर तानाशाही की भविष्यवाणी हिटलर के उत्थान और उसके सत्ताग्रहण से सत्य सिद्ध हुई। परन्तु अब स्पेंगलर की पुस्तक अधिकांशतया एक कपोल-कल्पना जैसी प्रतीत होती है, विशेषकर उसके द्वारा की गई पाश्चात्य सभ्यता के सन्निकट अनिष्टसूचक विनाश की निराशाजनक भविष्यवाणी। इतिहास विशेषज्ञों ने स्पेंगलर की अप्रामाणिक तरीकों की आलोचना की है क्योंकि वह तथ्यों को गलत प्रकार से प्रस्तुत करने की कोई चिन्ता नहीं करता है। मानव-समाज को एक जैविक इकाई के रूप में प्रस्तुत करने की स्पेंगलर की असफल कोशिश के कारण सामाजिक सिद्धान्त के क्षेत्र में 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' के महत्वपूर्ण योगदान पर भी शंकाएं उठी हैं। समीक्षकों ने स्पेंगलर के अवश्यम्भावी पतन के नियतिवादी सिद्धान्त की आलोचना की है और साथ ही साथ उसके द्वारा ज्ञानोदय, प्रगति के सिद्धान्त तथा सैकड़ों वर्षों के संघर्ष के बाद हासिल की गई लोकतान्त्रिक स्वतन्त्रता के परित्याग को भी दोषपूर्ण माना है।

स्पेंगलर की फ़ॉस्टियन (अपनी आत्मा बेचकर दुनियावी समृद्धि प्राप्त करने का सौदा), चक्रीय, तथा पाश्चात्य सभ्यता के अवश्यम्भावी विनाश की अवधारणाओं ने आने वाली पीढ़ी के दार्शनिकों, इतिहासकारों, साहित्यकारों, चित्रकारों, फ़िल्मकारों और समीक्षकों को अत्यधिक प्रभावित किया है। उसकी विचारधारा से प्रभावित दार्शनिकों में मार्टिन हीडेगर, लुडविग विट्जेन्सटीन तथा फ्रांसिस पार्कर यॉकी के नाम प्रमुख हैं। उससे प्रभावित लेखकों तथा कवियों में अर्नेस्ट हेमिंग्वे, विला कार्थर, हेनरी मिलर, एच0 जी0 वेल्स तथा मैल्कम लोली, हैरमन कान ('दि ईयर 2000' मे फ़ास्टियन अवधारणां), जॉन डॉस पैसोस, एफ़0 स्कॉट फ़िट्ज़ेराल्ड, विलियम एस0 बरो, जैक कैरोक, कवि विलियम बटलर यीट्स आदि प्रमुख हैं। चित्रकार कोकोशका तथा फ़िल्मकार फ़्रिट्ज़ लैग पर भी स्पेंगलर की विचारधारा का प्रभाव पड़ा है।

4.5 टायनबी का युग चक्रवादी सिद्धान्त

4.5.1 टायनबी द्वारा सभ्यताओं के उत्थान एवं पतन की व्याख्या

ऑर्नाल्ड, जे0 टायनबी (1889-1968) एक ब्रिटिश इतिहाकार तथा इतिहास-दार्शनिक था। वह लन्दन स्कूल ऑफ़ इकॉनॉमिक्स तथा यूनीवर्सिटी ऑफ़ लन्दन में अन्तर्राष्ट्रीय इतिहास का प्रोफ़सर रहा था। टायनबी ने ग्रीक एवं लैटिन साहित्य का गहन अध्ययन कर और अनेक बार विश्व-भ्रमण कर इतिहास के प्रति अपने दृष्टिकोण को परिपक्व एवं व्यापक बनाया था। टायनबी ने 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' में स्पेंगलर के ग्रंथ 'दि डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' में प्रतिपादित चक्रीय सिद्धान्त का अनुकरण किया है किन्तु उसे उसका प्राचीन यान्त्रिक नियतिवाद का आदर्श स्वीकार्य नहीं है। टायनबी ने ब्रिटिश परम्परा के अनुभवाश्रित एवं प्रेरक आदर्श का चयन किया है। इस कार्य-प्रणाली में 26 सभ्यताओं

का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है क्योंकि टायनबी यह मानता है कि ऐतिहासिक अध्ययन की सुबोधगम्य इकाइयां राष्ट्र अथवा काल नहीं बल्कि समाज अथवा सभ्यताएं हैं।

टायनबी मानव-इतिहास और मानव-अस्तित्व के सन्दर्भ में सभ्यताओं को अपेक्षाकृत हाल ही में हुई घटना मानता है। टायनबी पाश्चात्य सभ्यता को ही एकमात्र सभ्यता मानने वालों से सहमत नहीं है। टायनबी मिस्र, बेबीलोनिया तथा मिनोन सभ्यताओं को मृत सभ्यताएं, पोलीनीसियन, एस्किमो, नामाड, स्पार्तन तथा ओसमानली सभ्यताओं को अवरुद्ध (जिनका विकास रुक गया हो) सभ्यताएं तथा आधुनिक पाश्चात्य ईसाई समाज, कट्टरपंथी ईसाई समाज (इसमें रूस तथा दक्षिण-पूर्वी यूरोप के देश सम्मिलित हैं), मुस्लिम, हिन्दू तथा सुदूर पूर्व (इसमें जापान, कोरिया व चीन सम्मिलित हैं) की सभ्यताओं को वर्तमान काल में भी जीवित सभ्यताएं मानता है।

4.5.2 चुनौती एवं प्रतिक्रिया

टायनबी की इतिहास रूपी पहेली की प्रमुख कुंजी अपने द्वारा प्रतिपादित 'चुनौती और प्रतिक्रिया' की परिकल्पना है। उसने चुनौती और प्रतिक्रिया की परिकल्पना द्वारा विभिन्न सभ्यताओं के जन्म, विकास, विघटन और पतन के चक्र को समझने का प्रयास किया है। सभ्यता की, एक इकाई के रूप में पहचान कर, वह प्रत्येक सभ्यता के इतिहास को चुनौती और प्रतिक्रिया के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करता है। सभ्यताओं का तब उत्थान होता है जब सृजनशील अल्पसंख्यक कठिन से कठिन चुनौती का सामना करने के लिए ऐसे समाधानों की खोज कर लेते हैं जिनसे कि सम्पूर्ण समाज में नव-चेतना का संचार हो जाता है। अपने इस विचार की पुष्टि के लिए टायनबी भौतिक चुनौती के रूप में सुमेरियन सभ्यता का दृष्टान्त देता है। सुमेरिया के निवासियों के समक्ष दक्षिण ईराक का दुर्दमनीय दलदल उनके अस्तित्व के लिए सबसे बड़ा खतरा था। सुमेरिया के नव-प्रस्तरयुगीन सृजनशील अल्पसंख्यकों ने वहां के निवासियों को संगठित कर विशाल सिंचाई योजनाओं को साकार किया और दलदल की समस्या का स्थायी समाधान किया। सामाजिक चुनौती के रूप में टायनबी रोमन साम्राज्य के विघटन के कारण उत्पन्न अराजकता के संकट का निवारण करने के लिए कैथोलिक चर्च के योगदान का उल्लेख करता है जिसने कि जर्मन-जातीय राज्यों को धार्मिक समुदाय की एक इकाई के रूप में संगठित किया।

टायनबी का यह मानना है कि किसी सभ्यता का विकास तब होता है जबकि उसके समक्ष आई हुई चुनौती (यह चुनौती भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, नैतिक अथवा किसी अन्य प्रकार की भी हो सकती है) का उसके द्वारा दिया गया जवाब न केवल सफल हो अपितु आगे अधिक कठिन चुनौती का मुकाबला करने के लिए उसके नागरिक तत्पर हों। जब एक सभ्यता के नेता चुनौतियों का सृजनात्मक रूप से जवाब देने में असफल रहे तो राष्ट्रवाद, सैनिकवाद के उदय अथवा अल्पसंख्यक स्वेच्छाचारियों के अत्याचार के कारण उसका पतन हुआ। टायनबी सभ्यताओं के विकास और उनके पतन को एक आध्यात्मिक प्रक्रिया के रूप में देखता है।

टायनबी की शोध प्रविधि अनुभववादी है। वह प्राचीन से प्राचीन युग के साथ स्वयं को सम्बद्ध करके उनमें हुई घटनाओं का प्रत्यक्ष अनुभव करता है। टायनबी का यह दावा है कि हम अतीत के अनुभव के आधार पर भविष्य के विषय में अनुमान लगा सकते हैं।

4.5.3 सभ्यता के विघटन के कारण

टायनबी का यह मानना है कि कोई भी सभ्यता अपनी उन्नति के उच्चतम शिखर पर पहंुचने के बाद विघटन की ओर अग्रसर होती है। यह विघटन की स्थिति तब आती है जब चुनौतियों का सफलतापूर्वक प्रत्युत्तर देने में सभ्यता असफल हो जाती है। इस असफलता के मुख्यतः तीन कारण हैं -

1. सृजनशील अल्प-संख्यकों रचनात्मकता का अभाव।
2. सर्वहारा बहु-संख्यकों द्वारा सृजनात्मक अल्प-संख्यकों का अनुकरण न करना।
3. सामाजिक एकता में कमी आने के कारण एकजुट होकर चुनौतियों का सामना करने की शक्ति का लुप्त हो जाना।

4.5.4 सभ्यता का पतन

टायनबी का विश्वास है कि समाजों का विनाश प्राकृतिक कारणों से नहीं अपितु हत्या अथवा आत्मघात के कारण होता है और इसमें भी ज़्यादातर आत्मघात ही इसका कारण होता है।

4.5.5 टायनबी की रचनाएं

टायनबी की रचनाएं हैं - 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री', 'सिविलाइज़शन ऑन ट्रायल', 'दि वर्ड एण्ड दि वैस्ट', क्रिश्चियैनिटी अमॉन्ग दि रिलीजन्स ऑफ़ दि वर्ड'',नैशनैलिटी एण्ड वार', 'ए हिस्टोरियन्स व्यू ऑफ़ रिलीजन', 'ग्रीक हिस्टोरिकल थॉट', 'ईस्ट टु वैस्टः ए जर्नी राउण्ड दि वर्ड', 'हेलेनिज़्म', 'ए हिस्ट्री ऑफ़ सिविलाइज़ेशन', 'ऑटोबायग्राफ़ी', 'सर्वे ऑफ़ इण्टर-नेशनल अफ़ेयर्स'(वार्षिक पत्रिका जिसकी कि अन्तिम कड़ी 'मैनकाइन्ड एण्ड दि मदर अर्थ' है।) आदि। 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' में इतिहास की प्रकृति, इतिहास के अर्थ तथा ऐतिहासिक परिवर्तन के कारण व उसकी महत्ता का अध्ययन किया गया है। '1914 (प्रथम विश्व युद्ध के प्रारम्भ होने का वर्ष) के बाद सभ्यता पर संकट छा गया है', टायनबी की इस अनुभूति ने उसे सभ्यता के उद्गम और विकास की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया। क्यों किंचित सभ्यताएं विकसित होती हैं जब कि वैसी ही लाभदायी परिस्थितियों के बावजूद अन्य किंचित सभ्यताओं का पतन हो जाता है? टायनबी के ग्रंथ का विशिष्ट विषय संस्कृतियों के उद्गम, विकास और विघटन का दार्शनिक अन्वेषण है। इस अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रंथ ने चक्रीय विकास एवं सभ्यताओं के पतन के विश्लेषण पर आधारित इतिहास-दर्शन प्रस्तुत किया। इस ग्रंथ ने ओसवाल्ड स्पेंगलर के पृथक एवं स्वतन्त्र सभ्यताओं के दृष्टिकोण के विरुद्ध सांस्कृतिक विलयनीकरण पर अत्यधिक महत्व दिया है और इसने ऐतिहासिक सिद्धान्त को अत्यधिक प्रभावित किया है।

4.5.6 एक इतिहास-दार्शनिक के रूप में टायनबी का आंकलन

अनेक विद्वानों द्वारा 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' को इतिहास के विश्वकोश और बीसवीं शताब्दी के महानतम ऐतिहासिक ग्रंथ के रूप में मान्यता दी गई है। 1947 में 'टायनबी पर 'टाइम्स मैगज़ीन' में प्रकाशित एक लेख में 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' को इंग्लैण्ड में कार्ल मार्क्स की पुस्तक 'कैपिटल' के बाद ऐतिहासिक सिद्धान्त पर रचित सबसे उत्तेजनात्मक ग्रंथ बताया गया था। बीसवीं शताब्दी के पाँचवें तथा छठे दशक में टायनबी सम्भवतः सबसे अधिक पढ़ा जाने वाला तथा सबसे चर्चित विद्वान रहा है।

टायनबी के लेखन में धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण की परम-व्याप्ति के कारण 1960 के बाद उसकी लोकप्रियता में अप्रत्याशित कमी आई और आज उसकी रचनाएं विवादास्पद मानी जाती हैं। उसके आलोचकों ने उसके अनुभववादी सिद्धान्त की विश्वसनीयता पर सन्देह व्यक्त किया है। टायनबी ने विभिन्न सभ्यताओं के आध्यात्मिक पक्ष पर विशेष बल दिया है और राष्ट्र, उद्योग, भौतिक उन्नति तथा मनुष्य की बौद्धिक शक्ति के विकास की उपेक्षा की है।एच0 ई0 बार्न्स ने टायनबी के ग्रंथ को ऐतिहासिक ग्रंथ के स्थान पर ईश-स्तुति का ग्रंथ माना है। टायनबी का कटु आलोचक पीटर गेल उसे धर्मदूत कहकर उसका उपहास उड़ाता है। गेल का मानना है कि इतिहास में अनन्त जटिलताएं हैं और ऐतिहासिक घटनाएं इतनी जल्दी-जल्दी बदलती हैं कि सार्वभौमिक इतिहास को किसी निश्चित प्रणाली के अन्तर्गत बांधने से निराशा ही हमारे हाथ लगती है इसलिए वह टायनबी द्वारा अपने सभी तर्कों तक केवल अनुभवात्मक पद्धति द्वारा पहुँचने के दावे को खोखला बताता है। टेलर ने टायनबी की नियतिवाद में आस्था की आलोचना की है। सभ्यताओं विकास में मनुष्य की अपनी स्वतन्त्र एवं महत्वपूर्ण भूमिका होती है किन्तु टायनबी इस सत्य को सर्वथा नकार देता है। टायनबी ने 26 सभ्यताओं का चयन किसी वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर नहीं किया है अपितु अपनी सुविधानुसार किया है। टायनबी ने मुख्यतः यूनानी सभ्यता का गहन करके अपना अनुभववादी सिद्धान्त विकसित किया है और फिर इस सिद्धान्त को उसने अन्य सभ्यताओं पर लागू किया है। सभ्यता के जन्म, उत्थान, विकास और विनाश विषयक टायनबी की अवधारणा की प्रामाणिकता पर प्रश्न उठाए जाने स्वाभाविक हैं। किसी भी सभ्यता में यदि परिवर्तन आते हैं तो टायनबी उसे मृत मान लेता है और एक नई सभ्यता के जन्म की घोषणा कर देता है। वास्तव में सभ्यताएं कभी पूरी तरह से विनष्ट नहीं होतीं और वो आगामी समय की सभ्यताओं के लिए विरासत में बहुत कुछ छोड़ जाती हैं।

टायनबी ने यूरोप-केन्द्रित इतिहास लेखन की परम्परा पर सबसे गहरी चोट की थी। संकीर्ण पश्चिम-मुखी इतिहास के स्थान पर वास्तव में सार्वभौमिक इतिहास की रचना द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात अविकसित क्षेत्र के देशों के उत्थान के सन्दर्भ में और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। उसने विभिन्न समाजों के उद्गम, विकास और पतन का अध्ययन वैज्ञानिक पद्धति से किया है। आज हम इतिहास को कला और विज्ञान दोनों के सम्मिलन के रूप में जानते हैं और इस निष्कर्ष तक पहुंचने में टायनबी के दृष्टिकोण ने हमारी सहायता की है। टायनबी ने इतिहास को एक नई दृष्टि दी है। 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' आधुनिक ऐतिहासिक शोध की अति विशिष्टता की प्रवृत्ति को सन्तुलित करने में सफल सिद्ध हुई है। टायनबी द्वारा सभ्यताओं के तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से हम अपनी संकुचित एवं संकीर्ण मानसिकता का परित्याग कर अपनी सभ्यता के अतिरिक्त दूसरी सभ्यताओं के इतिहास के प्रति अभिरुचि और सम्मान की भावना जागृत कर सकते हैं और सम्पूर्ण मानव-जाति के विकास की गाथा समझने की क्षमता का विकास कर सकते हैं। अमेरिकी राजनीतिक विचारक हैन्स मॉर्जेन्थ्यू ने टायनबी को महान दार्शनिक मानते हुए उसकी उपलब्धियों को कालजयी बताया है।

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. भारतीय युग चक्रवादी सिद्धान्त।
2. स्पेंगलर का संस्कृतियों के उत्थान-पतन विषयक विचार।
3. टायनबी की रचनाएं।

4.6 सारांश

स्पेंगलर तथा टायनबी की रचनाएं प्राथमिक स्रोतों पर आधारित इतिहास तथा सार्वभौमिक इतिहास के समाकलन के दो उदाहरण हैं। स्पेंगलर की रचनाओं में सामान्यीकरण की अधिकता है जब कि टायनबी स्रोत पर आधारित इतिहास लेखन तथा सार्वभौमिक इतिहास लेखन के समाकलन के साथ मानव सभ्यताओं के अध्ययन की ओर अग्रसर होता है। दोनों ही इतिहासकारों ने इतिहास के प्रस्तुतीकरण में सोद्देश्यवादी सिद्धान्तों को समाहित करने का प्रयास किया है।

विश्व युद्ध की भयावह विनाश लीला ने बीसवीं शताब्दी के विचारकों को दार्शनिक स्तब्धता और निराशा की स्थिति में डाल दिया था। स्पेंगलर की रचना 'दि डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' में भी विचारकों की ऐसी ही मनःस्थिति का प्रतिबिम्बन है। इसमें स्पेंगलर ने एक नए सिद्धान्त - 'प्रत्येक मानव-सभ्यता की एक सीमित जीवन-अवधि होती है।' का प्रतिपादन किया है। स्पेंगलर इतिहास को शाश्वत मानता है जिसमें विभिन्न संस्कृतियों का उत्थान और पतन होता रहता है। प्रत्येक संस्कृति का अपना बचपन, जवानी और बुढ़ापा होता है और एक समय ऐसा भी आता है जब कि उस संस्कृति की मृत्यु हो जाती है। स्पेंगलर आठ प्रमुख संस्कृतियों का वह उल्लेख करता है। ये आठ संस्कृतियां हैं - मिस्र की, बेबीलोनियन, भारतीय, चीनी, ग्रीको-रोमन, अरबी, मैक्सिकन और पाश्चात्य।

स्पेंगलर का यह विचार है कि जब किसी संस्कृति की आत्मा का विकास रुक जाता है तो वह अपने अन्तिम रूप में सभ्यता में प्रविष्ट होती है। स्पेंगलर पाश्चात्य सभ्यता को ही एकमात्र सभ्यता मानने वालों से सहमत नहीं है। स्पेंगलर के अनुसार बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक पाश्चात्य संस्कृति शीत ऋतु के पड़ाव तक अर्थात् अपने पतन के चरण तक पहुंच गई है।

समीक्षकों ने स्पेंगलर के अवश्यम्भावी पतन के नियतिवादी सिद्धान्त की आलोचना की है। स्पेंगलर की फ़ॉस्टियन, चक्रीय, तथा पाश्चात्य सभ्यता के अवश्यम्भावी विनाश की अवधारणाओं ने आने वाली पीढ़ी के दार्शनिकों, इतिहासकारों, साहित्यकारों, चित्रकारों, फ़िल्मकारों और समीक्षकों को अत्यधिक प्रभावित किया है।

टायनबी ने 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' में स्पेंगलर के ग्रंथ 'दि डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' में प्रतिपादित चक्रीय सिद्धान्त का अनुकरण किया है किन्तु उसे उसका प्राचीन यान्त्रिक नियतिवाद का आदर्श स्वीकार्य नहीं है। टायनबी ने 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' में अनुभवाश्रित एवं प्रेरक आदर्श का चयन किया है। इस कार्य-प्रणाली में 26 सभ्यताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है क्योंकि टायनबी यह मानता है कि ऐतिहासिक अध्ययन की सुबोधगम्य इकाइयां राष्ट्र अथवा काल नहीं बल्कि समाज अथवा सभ्यताएं हैं। टायनबी ने चुनौती और प्रतिक्रिया की परिकल्पना द्वारा विभिन्न सभ्यताओं के जन्म, विकास, विघटन और पतन के चक्र को समझने का प्रयास किया है। टायनबी का यह मानना है कि किसी सभ्यता का विकास तब होता है जबकि उसके समक्ष आई हुई चुनौती का उसके द्वारा दिया गया जवाब न केवल सफल हो अपितु आगे अधिक कठिन चुनौती का मुकाबला करने के लिए उसके नागरिक तत्पर हों। टायनबी

सभ्यताओं के विकास और उनके पतन को एक आध्यात्मिक प्रक्रिया के रूप में देखता है। टायनबी पाश्चात्य सभ्यता को ही एकमात्र सभ्यता मानने वालों से सहमत नहीं है।

टायनबी की शोध प्रविधि अनुभववादी है। टायनबी का यह दावा है कि हम अतीत के अनुभव के आधार पर भविष्य के विषय में अनुमान लगा सकते हैं।

टायनबी ने विभिन्न सभ्यताओं के आध्यात्मिक पक्ष पर विशेष बल दिया है और राष्ट्र, उद्योग, भौतिक उन्नति तथा मनुष्य की बौद्धिक शक्ति के विकास की उपेक्षा की है। एच0 ई0 बार्न्स तथा पीटर गेल, टायनबी के विचारों में एक धर्मदूत की मानसिकता के दर्शन करते हैं। टेलर ने टायनबी की नियतिवाद में आस्था की आलोचना की है। टायनबी ने 26 सभ्यताओं का चयन किसी वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर नहीं किया है अपितु अपनी सुविधानुसार किया है। टायनबी ने मुख्यतः यूनानी सभ्यता का गहन करके अपना अनुभववादी सिद्धान्त विकसित किया है और फिर इस सिद्धान्त को उसने अन्य सभ्यताओं पर लागू किया है।

अनेक विद्वानों द्वारा 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' को इतिहास के विश्वकोश और बीसवीं शताब्दी के महानतम ऐतिहासिक ग्रंथ के रूप में मान्यता दी गई है। टायनबी को यह श्रेय दिया जाता है कि उसने यूरोप-केन्द्रित इतिहास लेखन की परम्परा पर सबसे गहरी चोट की थी। टायनबी द्वारा सभ्यताओं के तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से हम अपनी संकुचित एवं संकीर्ण मानसिकता का परित्याग कर अपनी सभ्यता के अतिरिक्त दूसरी सभ्यताओं के इतिहास के प्रति अभिरुचि और सम्मान की भावना जागृत कर सकते हैं और सम्पूर्ण मानव-जाति के विकास की गाथा समझने की क्षमता का विकास कर सकते हैं।

4.7 पारिभाषिक शब्दावली

पुनर्परीक्षण - फिर से जांच करना।

'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' - पश्चिम (पाश्चात्य सभ्यता) का पतन।

नियतिवाद - भाग्यवाद

'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' - इतिहास का अध्ययन

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 4.3.1 प्राचीन भारतीय युग चक्रवादी सिद्धान्त
2. देखिए 4.4.1 स्पेंगलर का संस्कृतियों के उत्थान-पतन विषयक विचार
3. देखिए 4.5.5 टायनबी की रचनाए

4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

टॉयनबी, ऑर्नाल्ड, जे0 - ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री, 12 खण्ड, लन्दन, 1946

टॉयनबी, ऑर्नाड, जे0 - क्रिश्चियैनिटी अमॉन्ग दि रिलीजन्स ऑफ़ दि वर्ड, न्यूयॉर्क, 1956

श्रीधरन, ई0 - ए टैक्स्ट बुक ऑफ़ हिस्टोरियोग्राफ़ी, नई दिल्ली, 2013

कार, ई0 एच0 - व्हाट इज़ हिस्ट्री, लन्दन, 1962

कॉलिंगवुड, आर0 जी0 - दि आइडिया ऑफ़ हिस्ट्री, लन्दन, 1978

टॉम्सन, जे0 डब्लू0 - ए हिस्ट्री ऑफ़ हिस्टॉरिकल राइटिंग्स, न्यूयॉर्क, 1954

4.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

वर्मा, लालबहादुर - 'इतिहास के बारे में', इलाहाबाद, 2000

शर्मा, रामविलास - 'इतिहास दर्शन', नई दिल्ली, 1995

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' के सन्दर्भ में स्पेंगलर के संस्कृतियों के उत्थान एवं पतन विषयक विचारों की समीक्षा कीजिए।

2. एक इतिहास-दार्शनिक के रूप में टायनबी का आकलन कीजिए।

इकाई पाँच

सांमतवाद: विविध आयाम एवं सामंतवाद का पतन

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य:

5.3 सामन्तवाद की परिभाषा और संरचना

5.3.1 परंपरागत परिभाषाएँ: कानूनी और सैन्य संबंध

5.3.2 मार्क्सवादी दृष्टिकोण: सामन्तवाद एक उत्पादन प्रणाली

5.3.3 व्यापक दृष्टिकोण: सामाजिक संरचना और संस्कृति

5.3.4 संशोधनवादी आलोचना और आधुनिक दृष्टिकोण

5.4 सामन्तवाद की उत्पत्ति और विकास

5.4.1 रोमन और जर्मनिक परंपराओं का समावेश

5.2.2 भूमि का निजीकरण और सुरक्षा की अनिवार्यता

5.2.3 उत्पत्ति को लेकर विद्वानों के मत

5.2.4 सामन्तवाद का विकास: क्षेत्रीय भिन्नताएँ

5.5 सामन्तवाद के आर्थिक आयाम

5.6 सामन्तवाद के सामाजिक आयाम

5.7 सामन्तवाद के राजनीतिक आयाम

5.8 सांमतवाद का पतन

5.9 सामंतवाद के पतन के कारण

5.9.1 सांमतों के मध्य अविराम युद्धों की श्रंृख्ला

5.9.2 नये हथियारों का अविष्कार

5.9.3 किसान विद्रोह

5.9.4 व्यापार की भूमिका

5.9.5 मुद्रा-व्यवस्था का उदय

5.9.6. प्रौद्योगिकी और भूमि तथा श्रम की उत्पादकता

5.9.7. जनसंख्या में वृद्धि

5.9.8. पुनर्जागरण और धर्मसुधार

5.10 सारांश

5.11 शब्दावली

5.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

5.13 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

'फ्युडल' (सामंती) शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द फियाडेलिस से हुई है परंतु मध्ययुगीन यूरोप में इस शब्द का प्रयोग कानूनी अर्थ में किया जाता था। 'सामंतवाद' शब्द का प्रचार मुख्यतया 18वीं शताब्दी के फ्रांसीसी दार्शनिक बूलैंवीयै और मौन्टेसक्यू के द्वारा किया गया। इस शब्द का प्रयोग मध्ययुग के दौरान छोटे-छोटे राजकुमारों और अधिपतियों की संप्रभुता में साझेदारी को व्याख्यायित करने के लिए कर रहे थे। कुल मिलाकर सामंतवाद एक राजनीतिक ढॉचा या सामाजिक स्वरूप है जो 9वीं शताब्दी और 13वीं शताब्दी के बीच पश्चिमी और मध्य यूरोप में एक महत्त्वपूर्ण प्रणाली के रूप में मौजूद थी।

जिस प्रकार से सामंतवाद के विकास का एक लंबा एवं जटिल इतिहास रहा है उसी प्रकार इसका पतन भी एक लंबी प्रक्रिया के तहत हुआ। सांमतवाद का पतन इतिहासकारों के बीच एक विवाद का प्रश्न रहा है। विद्वानों का मानना है कि 14वीं शताब्दी में सामंतवाद का धीरे-धीरे पतन होने लगा और कुछ समय बाद यूरोप से यह व्यवस्था समाप्त हो गई। कुछ विद्वानों का मानना है कि व्यापार के फिर से उभरने और विकसित होने तथा फलस्वरूप नगरों का विकास सामंतवाद के पतन का मुख्य कारण था। अन्य विद्वानों का प्रौधोगिकी का स्तर, कृषि में उत्पादकता, जनसंख्या संबधी बदलाव और ग्रामीण परिदृश्य में परिवर्तन जैसे अन्य मुद्दे सामंतवाद के पतन के लिए जिम्मेदार थे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- परंपरागत परिभाषाएँ: कानूनी और सैन्य संबंध को जान सकेंगे।
- मार्क्सवादी दृष्टिकोण: सामन्तवाद एक उत्पादन प्रणाली को जान सकेंगे।
- व्यापक दृष्टिकोण: सामाजिक संरचना और संस्कृति को जान सकेंगे।
- संशोधनवादी आलोचना और आधुनिक दृष्टिकोण को जान सकेंगे।
- सामन्तवाद की उत्पत्ति और विकास को जान सकेंगे।
- सामन्तवाद के आर्थिक आयाम को जान सकेंगे।
- सामन्तवाद के राजनीतिक आयाम को जान सकेंगे।
- सामन्तवाद के सामाजिक आयाम को जान सकेंगे।
- यूरोप में सांमतवाद के पतन की प्रक्रिया को जान सकेंगे।
- इसमें व्यापार की भूमिका को समझ सकेगें।
- पुनर्जागरण एवं पूंजीवाद का उत्थान कैसे सांमती ढॉचा को नष्ट किया।

5.3 सामन्तवाद की परिभाषा और संरचना

यूरोपीय सामन्तवाद की परिभाषा और इसकी संरचना पर विद्वानों में लंबे समय से मतभेद रहे हैं। सामन्तवाद को समझने के लिए जरूरी है कि हम इसे केवल एक सैन्य या भूमि पर आधारित संस्थान मानें, बल्कि उसे एक सम्पूर्ण सामाजिक संरचना के रूप में देखें, जिसमें शक्ति, उत्पादन, सामाजिक संबंध, और सांस्कृतिक व्यवहार एक-दूसरे में गुँथे हुए हैं।

5.3.1 परंपरागत परिभाषाएँ: सैन्य और कानूनी संबंध

20वीं शताब्दी के मध्य में फ्रांस्वा-लुई गैंसहॉफ (François-Louis Ganshof) द्वारा दी गई परिभाषा सबसे प्रभावशाली रही। उन्होंने सामन्तवाद को एक संकीर्ण दृष्टिकोण से देखा, जिसमें यह केवल उन संबंधों को संदर्भित करता है जो प्रभु (lord) और अधीनस्थ (vassal) के बीच होते थे। इस व्यवस्था में निम्नलिखित प्रमुख तत्व शामिल थे:

- फ़ीफ़: फीफ़ वह भूमि या संसाधन था जिसे किसी प्रभु (lord) द्वारा उसके अधीनस्थ (vassal) को सेवा के बदले दिया जाता था। यह 'अनुदान' केवल भूमि तक सीमित नहीं था, बल्कि इसमें जागीर, राजस्व के अधिकार, विशेषाधिकार, न्यायिक अधिकार, या फिर किसी इलाके का नियंत्रण भी शामिल हो सकता था। अधीनस्थ को भूमि पर कब्ज़ा और उपयोग का अधिकार मिलता था, लेकिन वास्तविक स्वामित्व प्रभु के पास ही रहता।धीरे-धीरे फीफ़ अनुवांशिक होने लगे; वेसल की मृत्यु पर उसका पुत्र उसी भूमि पर अधिकार पा सकता था। फीफ़ किसी न किसी सेवा के बदले दिया जाता था — प्रायः सैन्य सेवा, सलाह देना, या न्यायिक सहायता।

  "फीफ़ केवल ज़मीन का टुकड़ा भर नहीं था; यह एक आर्थिक इकाई थी, जिसके साथ सेवा और निष्ठा की जिम्मेदारी जुड़ी होती थी।"— Ganshof (1944)

  उदाहरण: किसी बैरन को राजा द्वारा एक क्षेत्र का फीफ़ दिया जा सकता था, और बदले में वह राजा के लिए घुड़सवार सैनिकों की टुकड़ी तैयार रखता।

- वैसलेज (Vassalage): वैसलेज वह संबंध था जो प्रभु और अधीनस्थ के बीच स्थापित होता था। यह संबंध आपसी समझौते और व्यक्तिगत निष्ठा पर आधारित होता था, जिसमें अधीनस्थ, प्रभु को अपनी सेवा देने का वचन देता और बदले में सुरक्षा और भूमि प्राप्त करता। यह कोई कानूनी करार न होकर व्यक्तिगत, सामाजिक और नैतिक अनुबंध था। इसमें सैन्यसेवा, राजनीतिक समर्थन, और कभी-कभी मालिकाना हितों की रक्षा की अपेक्षा होती थी। वेसल को अपनी वफादारी और सेवाएं एकाधिक प्रभुओं को देना वर्जित माना जाता था — तथाकथित "liege lord" (लीगलॉर्ड) की अवधारणा इसी से जुड़ी थी।"प्रधानस्वामी" या "मुख्यप्रभु", जिसे वेसल (vassal) सर्वोच्च निष्ठा प्रदान करता था। मध्यकालीन यूरोपीय सामन्तवादी व्यवस्था में एक वेसल कई प्रभुओं से भूमि या विशेषाधिकार प्राप्त कर सकता था, लेकिन प्रधान स्वामी वह होता था जिसे वह सर्वोच्च निष्ठा (primary loyalty) देता था — विशेषकर तब जब दो प्रभुओं के आदेश या हितों में टकराव

हो। उदाहरण: यदि किसी वेसल के दो प्रभु युद्ध में एक-दूसरे के विरुद्ध हों, तो वह केवल अपने प्रधानस्वामीकी ओर से युद्ध करेगा। वैसलेज केवल औपचारिक सेवा नहीं, बल्कि "वफ़ादारी आधारित सम्बंध" था। वफादारी और साहस इसके नैतिक मूल्य थे। यह संबंध सामाजिक संरचना का एक अंग था, जहाँ प्रत्येक स्तर पर अधीनस्थ और प्रभु का संबंध मौजूद था — राजा से लेकर ग्राम स्तर के नाइट तक।

- होमेज़ (Homage) औरफ़ियलटी (Fealty): वफादारी की औपचारिक प्रक्रिया, जिसमें अधीनस्थ प्रभु के प्रति निष्ठा की शपथ लेता था।ये दोनों वैसलेज संबंधों की औपचारिक और प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियाँ थीं। इसके माध्यम से प्रभु और वेसल के बीच का संबंध सार्वजनिक रूप से स्थापित और स्वीकृत किया जाता था।होमेज़ वह औपचारिक अनुष्ठान था जिसमें वेसल अपने घुटनों के बल प्रभु के सामने बैठता था और स्वयं को उसके "man"/आदमी (homme) के रूप में प्रस्तुत करता था। यह आत्मसमर्पण और निष्ठा की प्रतीकात्मक प्रक्रिया थी, जिसे चर्च और समाज दोनों मान्यता देते थे। फ़ियलटी; होमेज़ के बाद वेसल एक धार्मिकशपथ लेता था जिसे फ़ियलटी कहा जाता था। यह शपथ आम तौर पर बाइबिल या किसी संत के अवशेष पर ली जाती थी, जिससे इसकी धार्मिक वैधता और गंभीरता सुनिश्चित होती थी। यह वेसल की "true faith and loyalty" का वचन होता था।

  "होमेज़ और फ़ियलटी के कार्य केवल अनुष्ठानिक नहीं थे, बल्कि वे कानूनी और आध्यात्मिक रूप से बाध्यकारी थे, जो सम्पूर्ण सामन्तीय संरचना को नैतिक दायित्वों में जकड़ते थे।"— Marc Bloch, Feudal Society (1939)

  गैंसहॉफ के अनुसार, यह एक ऐसी व्यवस्था थी जिसमें सार्वजनिक शक्तियाँ निजी हाथों में चली गईं और राजा की सत्ता केवल प्रतीकात्मक रह गई। "सामन्तवाद उन कानूनी और सैन्य दायित्वों के समूह को संदर्भित करता है, जो योद्धा अभिजात वर्ग के बीच प्रभु, अधीनस्थ (वेसल) और फीफ़ — इन तीन मूल अवधारणाओं के इर्द-गिर्द केंद्रित होते हैं।" — F. L. Ganshof, Feudalism (1944)

5.3.2 मार्क्सवादी दृष्टिकोण: सामन्तवाद एक उत्पादन प्रणाली

मार्क्सवादी इतिहासलेखन में सामन्तवाद को केवल एक राजनीतिक या कानूनी ढाँचे के रूप में नहीं देखा गया, बल्कि उसे एक विशिष्ट उत्पादन प्रणाली (mode of production) के रूप में समझा गया है। इस दृष्टिकोण के तहत सामन्तवाद का मूल आधार वर्गीय सम्बन्धों में निहित था, जहाँ एक प्रभु वर्ग (feudal lords) भूमि और शक्ति के बल पर अधिशेष उत्पादन (surplus) की जबरन वसूली करता था, जबकि कृषक वर्ग (peasants या serfs) उस अधिशेष का वास्तविक उत्पादक होता था।सामन्तवाद में उत्पादन के साधनों (मुख्यतः भूमि) पर प्रभु वर्ग का स्वामित्व होता था, जबकि कृषक उन्हें जोतते थे और अपनी उपज का एक बड़ा हिस्सा कर, सेवा, या उपहार के रूप में सौंपते थे।यह अधिशेष अनिवार्य रूप से राजनीतिक और सामाजिक दबाव के तहत वसूला जाता था — जैसे कि सैनिक दबाव, न्यायिक नियंत्रण, और धार्मिक वैधता।

मॉरिस डॉब ने अपनी प्रसिद्ध कृति Studies in the Development of Capitalism (1946) में सामन्तवाद को पूँजीवाद की पूर्ववर्ती अवस्था माना। उनके अनुसार सामन्तवाद की आंतरिक आर्थिक सीमाएँ (जैसे कि अधिशेष वसूली की अक्षम पद्धतियाँ, तकनीकी जड़ता, और व्यापारिक विस्तार की सीमाएँ) इस व्यवस्था को संकट में डालती हैं, और अंततः पूँजीवादी संबंधों को जन्म देती हैं। रॉडनी हिल्टन ने अपनी पुस्तक Bond Men Made Free (1973) में तर्क दिया कि सामन्तवाद का अंत केवल आर्थिक दबावों या संस्थागत विघटन से नहीं हुआ, बल्कि कृषक वर्ग के प्रतिरोध और विद्रोह उसकी समाप्ति में केंद्रीय भूमिका निभाते हैं।

5.3.3 व्यापक दृष्टिकोण: सामाजिक संरचना और संस्कृति

मार्क ब्लॉख (Marc Bloch) ने गैंसहॉफ की परिभाषा को अत्यधिक संकीर्ण माना और सामन्तवाद को एक व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना के रूप में देखा। उनकी पुस्तक Feudal Society (1939) में सामन्तवाद की अग्रलिखित विशेषताओं को रेखांकित किया गया: यह केवल कानून या युद्ध प्रणाली नहीं, बल्कि जीवन की एक पूर्ण प्रणाली थी। समाज में प्रभु और कृषक के संबंध केवल आर्थिक नहीं थे, बल्कि धार्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक अनुबंधों पर भी आधारित थे। स्थानीयता और आत्मनिर्भरता सामन्तवादी व्यवस्था की पहचान थी—प्रत्येक बस्ती, जागीर या मनोर स्वयं में एक छोटा संसार था। ब्लॉख के अनुसार सामन्तवाद का विकास केवल राज्य के विघटन से नहीं, बल्कि समाज में गहराते आपसी संबंधों, रीतियों और परंपराओं से हुआ।"सामन्तवाद एक सम्पूर्ण सभ्यता थी — समाज को संगठित करने का एक ऐसा ढांचा, जहाँ सत्ता की परिभाषा राज्य की संरचनाओं से नहीं, बल्कि परस्पर निर्भरता के संबंधों से तय होती थी।"— Marc Bloch, Feudal Society (1939)

जब हम सामन्तवाद की परंपरागत व्याख्याओं से आगे बढ़ते हैं — जो इसे केवल भूमि और सेवा आधारित एक सैन्य-कानूनी व्यवस्था के रूप में देखती हैं — तब हमें एक अधिक समग्र दृष्टिकोण मिलता है, इसके अनुसार यह केवल प्रभु-वेसल संबंध नहीं था, बल्कि: एक स्थानीयतावादी समाज था, जहाँ हर जागीर (manor) स्वयं में आत्मनिर्भर इकाई होती थी। सामाजिक गतिशीलता सीमित थी और व्यक्ति की पहचान उसके जन्म, कुल और अधीनता के संबंधों से तय होती थी। जीवन के लगभग सभी पक्ष — उत्पादन, विश्वास, सुरक्षा, न्याय — स्थानीय प्रभुओं की देखरेख में चलते थे, न कि किसी केंद्रीकृत राज्य सत्ता के अंतर्गत। "सामन्तवाद केवल एक कानूनी संबंध नहीं था; यह मूल्यों की एक व्यवस्था और संसार को समझने का एक तरीका था।"— Marc Bloch

ब्लॉख के अनुसार भी सामन्तवाद की संरचना में प्रभुता (lordship) और अधीनता (dependence) के बीच के संबंध सबसे महत्त्वपूर्ण थे। लेकिन ये संबंध केवल कानूनी बाध्यताओं पर नहीं, बल्कि नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित थे।चर्च, धर्म और परंपराएँ इन संबंधों को वैधता देती थीं। वेसल, केवल एक सैनिक सेवक नहीं, बल्कि प्रभु के "जन समुदाय" का हिस्सा होता था।उदाहरण के लिए, अगर कोई प्रभु अपने

अधीनस्थ की रक्षा करने में असमर्थ होता था, तो यह केवल राजनीतिक विफलता नहीं, नैतिक दोष भी माना जाता था।

ब्लॉख सामन्तीय संबंधों में धर्म की केंद्रीय भूमिका पर भी बल देते हैं:फ़ियलटी (fealty) की शपथ अक्सर बाइबिल या धार्मिक अवशेषों पर ली जाती थी। प्रभुओं को "ईश्वर द्वारा नियुक्त" माना जाता था, और अधीनता को एक धार्मिक कर्तव्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता था।चर्च स्वयं एक बड़ा जागीरदार था, जिसके पास न केवल ज़मीन होती थी, बल्कि वेसल्स भी होते थे।धर्म और सामाजिक नियंत्रण की यह निकटता सामन्तीय व्यवस्था की स्थिरता बनाए रखने में सहायक थी।

ब्लॉख यह भी तर्क देते हैं कि सामन्तीय समाज में स्थानीय आर्थिक इकाइयाँ (manors) ही उत्पादन और जीवन का केंद्र थीं: खेती, कारीगरी, और श्रम सब कुछ स्थानीय स्तर पर होता था। बाज़ार और मुद्रा की भूमिका सीमित थी; वस्तु विनिमय प्रणाली (barter economy) अधिक प्रचलित थी।प्रभु और वेसल के संबंध के साथ-साथ प्रभु और कृषकों (serfs) के संबंध भी सामन्तीय संरचना का मूल आधार थे।

मार्क ब्लॉख ने इस बात को भी रेखांकित किया कि सामन्तवाद केवल सामाजिक या राजनीतिक व्यवस्था नहीं, बल्कि एक मानसिक दृष्टिकोण (mentalité) था: लोगों ने अपने जीवन को प्रभु और अधीनस्थ के रिश्तों के संदर्भ में समझा। स्वतंत्रता की धारणा व्यक्तिगत नहीं, बल्कि समूहगत और पदानुक्रमिक थी। समाज में सुरक्षा, न्याय, स्वामित्व — ये सभी चीजें व्यक्तिगत अधिकार नहीं, आपसी संबंधों के माध्यम से परिभाषित होती थीं।

मार्क ब्लॉख की व्यापक व्याख्या सामन्तवाद को केवल कानूनी-सैन्य ढाँचे से बाहर निकालकर एक सामाजिक-सांस्कृतिक परिपाटी के रूप में प्रस्तुत करती है। उनके अनुसार सामन्तवाद एक जीवंत सभ्यता थी — जिसमें सत्ता, विश्वास, सुरक्षा, और नैतिकता के ताने-बाने ने मिलकर एक ऐसा समाज निर्मित किया जो केंद्रीकृत राज्य की अनुपस्थिति में भी कार्यशील था। इस दृष्टिकोण से सामन्तवाद को समझना आज भी उपयोगी है, क्योंकि यह हमें मध्यकालीन यूरोप की जटिलता, सामाजिक संबंधों की गहराई, और धार्मिक-सांस्कृतिक कारकों की भूमिका को समग्र रूप में देखने की दृष्टि देता है।

5.3.4 संशोधनवादी दृष्टिकोण: अवधारणा पर प्रश्नचिह्न

सुसन रेनॉल्ड्स (Susan Reynolds) और अन्य आधुनिक इतिहासकारों ने सामन्तवाद की पारंपरिक परिभाषा पर गंभीर प्रश्न उठाए। उन्होंने यह तर्क दिया कि"सामन्तवाद"एक आधुनिक अवधारणा है, जिसे 17वीं–19वीं शताब्दी के कानूनविदों और इतिहासकारों ने अतीत पर आरोपित किया। रेनॉल्ड्स के अनुसार: सामन्तवाद जैसी कोई एक समान संस्था वास्तव में अस्तित्व में नहीं थी। अलग-अलग क्षेत्रों और समय में प्रभुता, भूमि और सेवा के संबंध अलग रूपों में पाए जाते थे। 'Feudal pyramid' जैसी संरचना ऐतिहासिक सच्चाई नहीं, बल्कि काल्पनिक मॉडल है। जो चीज़ें हम आज "सामन्तवाद" के अंतर्गत गिनते हैं, वे वास्तव

में अनेक अलग-अलग प्रकार की स्थानीय प्रथाएँ, रिवाज़ और संबंध थीं, जिन्हें इतिहासकारों ने बाद में एक समरूप ढांचे में ढालने का प्रयास किया।

“एक सुसंगत सामन्तीय (फ़्यूडल) प्रणाली की धारणा स्वयं में ही भ्रामक है; यह मध्यकालीन सामाजिक और राजनीतिक संबंधों की विविधता को अत्यधिक सरलीकृत और विकृत कर देती है।”— Susan Reynolds, Fiefs and Vassals (1994) रेनॉल्ड्स और अन्य संशोधनवादी इतिहासकारों ने मध्यकालीन दस्तावेज़ों — जैसे चार्टर, भूमि अनुदान, न्यायिक रिकॉर्ड आदि — का पुनर्पाठ (re-reading) करते हुए यह दिखाया कि: कई शब्द जैसे beneficium, honor, fief आदि समय और स्थान के अनुसार अपने अर्थ बदलते रहे। ‘होमेज़ ’और ‘फ़ियलटी ’की रस्में हर जगह एक सी नहीं थीं और इनका कानूनी प्रभाव भी स्थायी नहीं था। अक्सर, वेसल प्रभु से स्वतंत्र रूप से व्यवहार करते थे; ‘निष्ठा ’की अवधारणा व्यवहार में उतनी कठोर नहीं थी जितनी वह सिद्धांत में प्रतीत होती है।

कुछ समकालीन इतिहासकारों ने यह भी तर्क दिया है कि सामन्तवाद की यूरोपीय अवधारणा को अन्य क्षेत्रों (जैसे भारत, चीन, जापान) पर थोपना एक तरह का बौद्धिक उपनिवेशवाद है। सुसन रेनॉल्ड्स के काम ने इस दृष्टिकोण को भी बल प्रदान किया कि: सामन्तवाद का प्रयोग एक "ideal type" के रूप में किया गया, जो ऐतिहासिक विविधताओं को मिटाकर उन्हें एक स्थिर श्रेणी में बदल देता है।इससे न केवल यूरोपीय इतिहास की बहुलता दब जाती है, बल्कि अन्य सभ्यताओं को भी उसी कसौटी पर तौलने की प्रवृत्ति जन्म लेती है। संशोधनवादी दृष्टिकोण ने इस बिंदु को भी स्पष्ट किया कि ‘सामन्तवाद ’कोई वस्तुनिष्ठ (objective) ऐतिहासिक श्रेणी नहीं, बल्कि एक विश्लेषणात्मक अवधारणा है जिसे आधुनिक विद्वानों ने गढ़ा है। यह अवधारणा अपने आप में ऐतिहासिक नहीं है, बल्कि इतिहास की वर्णनात्मक सुविधा है।

क्रिस विकहम, जो सामंतवाद पर सबसे गहन समकालीन लेखकों में से एक हैं, इस बात से सहमत हैं कि मध्यकालीन यूरोप में एकीकृत सामन्तीय ढाँचा नहीं था, लेकिन वे यह भी मानते हैं कि—“किसी प्रकार की प्रभुता-आधारित, भूमि-संबंधित और सैन्य बल द्वारा लागू की गई सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था निश्चित रूप से विकसित हुई थी — और यद्यपि ‘फ़्यूडलिज़्म ’एक परिपूर्ण शब्द नहीं है, फिर भी यह हमें उस ऐतिहासिक यथार्थ की ओर संकेत करता है।”— Wickham, The Inheritance of Rome, 2009

सामन्तवाद शब्द भले ही बाद में गढ़ा गया हो, लेकिन 9वीं से 13वीं सदी के यूरोप में प्रभुत्व, अधीनता, और भूमि पर आधारित संबंधों की प्रवृत्तियाँ वास्तव में मौजूद थीं। सामन्तवाद को एक कठोर ढाँचा नहीं, बल्कि एक ऐतिहासिक प्रवृत्ति (historical tendency) के रूप में देखा जाना चाहिए। पीटर हेथर (Peter Heather): हेथर ने रोमन साम्राज्य से मध्यकाल की संक्रमणकालीन संरचनाओं पर शोध किया है, वे मानते हैं कि—सामन्तवाद जैसे शब्द हमारे लिए राजनीतिक शक्ति की ‘विकेन्द्रित ’प्रकृति को समझने के उपयोगी औज़ार हैं। अगर हम इन्हें लचीले विश्लेषणात्मक उपकरण के रूप में देखें, न कि कठोर मॉडल के रूप में, तो

यह दृष्टिकोण अभी भी उपयोगी है।"Feudalism, like empire or state, is a heuristic — not a total explanation." — Heather, Empires and Barbarians, 2010

संशोधनवादी इतिहास लेखन ने सामन्तवाद की धारणा को अधिक सुस्पष्ट और आलोचनात्मक दृष्टि से देखने का रास्ता खोला है। सुसन रेनॉल्ड्स जैसे इतिहासकारों ने यह दिखाया कि मध्यकालीन यूरोप की विविध और जटिल परंपराओं को 'सामन्तवाद 'जैसी एकरूप अवधारणा में समेटना ऐतिहासिक रूप से अनुचित हो सकता है। यह दृष्टिकोण आज के इतिहास लेखन को अधिक स्थानीय, प्रासंगिक, और प्रमाण-आधारित बनाने में सहायक है। इन विभिन्न दृष्टिकोणों से स्पष्ट होता है कि सामन्तवाद को न तो एक एकात्मक संस्था के रूप में देखा जा सकता है, और न ही केवल कानूनी या सामाजिक-आर्थिक संबंधों तक सीमित किया जा सकता है। इसके बजाय यह एक बहुआयामी अवधारणा है जिसमें:

- शक्ति का निजीकरण और राज्य का विघटन शामिल है,
- सामाजिक संबंध और अधीनता का जटिल नेटवर्क है,
- धार्मिक और सांस्कृतिक रूपांकनों की भूमिका है।

आज सामन्तवाद को एक जटिल ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में समझा जा रहा है—एक ऐसी प्रक्रिया जिसमें समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था और मानसिकता सब एक साथ परिवर्तित हुए।

5.4 सामन्तवाद की उत्पत्ति और विकास

सामन्तवाद की उत्पत्ति को समझने के लिए यूरोप के उस ऐतिहासिक चरण को देखना आवश्यक है जिसमें पश्चिमी रोमन साम्राज्य (Western Roman Empire) का विघटन (5वीं सदी ईस्वी) हुआ। इस विघटन के साथ-साथ: राजकीय शक्ति का क्षरण हुआ, स्थायी नौकरशाही और केन्द्र से संचालित कर प्रणाली का पतन हुआ और स्थानीय सैन्य नेतृत्व की आवश्यकता—ये सब मिलकर ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित करते हैं जिनमें सामन्तीय संबंध पनपते हैं। राजनीतिक अस्थिरता और विदेशी आक्रमणों (विशेष रूप से जर्मनिक जनजातियों जैसे विसिगोथ, फ्रैंक्स, वैंडल्स आदि) के चलते स्थानीय स्तर पर सुरक्षा, संरक्षण और कृषि उत्पादन की संरचना में गहरे परिवर्तन हुए।

5.4.1 दो परंपराओं का समन्वय: रोमन विरासतऔरजर्मनिक परंपरा

सामन्तीय संबंधों के बीज, विद्वानों के अनुसार, दो प्रमुख परंपराओं के संयोग से उत्पन्न हुए। रोमन परंपरा: रोमन साम्राज्य में 'पेट्रोनाज '(patronage) और 'बेनिफिसियम '(beneficium) जैसी प्रणालियाँ थीं, जिनमें शक्तिशाली व्यक्तियों द्वारा अधीनस्थों को सुरक्षा और संसाधन दिए जाते थे। भूमि का वितरण राज्य के नियंत्रण में था, परन्तु निजी स्वामित्व की प्रवृत्ति भी बढ़ रही थी। जर्मनिक परंपरा: जर्मनिक जनजातियों में निष्ठा (loyalty) और व्यक्तिगत सेवा के संबंध अधिक महत्वपूर्ण थे।वेसल (vassal) और लॉर्ड (lord) के बीच के निजी संबंध—सैन्य सेवा, सुरक्षा और पारस्परिक दायित्वों पर आधारित—सामन्तीय संस्कृति के

मुख्य आधार बने।इन दोनों परंपराओं का समन्वय 6वीं से 10वीं सदी के बीच एक नई सामाजिक-राजनीतिक संरचना की ओर ले गया जिसे हम आज सामन्तवाद के नाम से जानते हैं।

5.4.2 भूमिका निजीकरणऔर सुरक्षा की अनिवार्यता

सामन्तवाद के विकास में दो कारक निर्णायक रहे:

(i) भूमिका निजी स्वामित्व (Patrimonialization of Land):रोमन साम्राज्य के पतन के बाद भूमि का वितरण अब केंद्रीय राज्य द्वारा नहीं, बल्कि स्थानीय प्रभुओं द्वारा निजी तौर पर किया जाने लगा। इससे भूमि पर व्यक्तिगत नियंत्रण बढ़ा।

(ii) निजी सुरक्षा और सैन्य संरक्षण कीआवश्यकता:

राजकीय सुरक्षा व्यवस्था के ध्वस्त होने पर स्थानीय जन समुदायों को सैन्य सुरक्षा के लिए शक्तिशाली ज़मींदारों (lords) पर निर्भर होना पड़ा। यह निर्भरता धीरे-धीरे एक सामन्तीयअनुबंध में बदल गई—जिसमें भूमि के बदले सेवा, वफादारी और निष्ठा की अपेक्षा की जाती थी। "A fief was not merely land; it was an economic and social contract."— Bloch, Feudal Society (1939)

5.4.3 उत्पत्ति को लेकर विद्वानों के मत

(a) फ़्रांस्वा-लुईगैंसहॉफ: गैंसहॉफ ने सामन्तवाद को एक संकीर्ण रूप में परिभाषित किया—केवल लॉर्ड, वेसल और फ़ीफ़ के कानूनी और सैन्य संबंधों पर ध्यान केंद्रित करते हुए। उनके अनुसार, सामन्तीय व्यवस्था मुख्यतः 9वीं–10वीं सदी में अस्तित्व में आई और यह उच्चवर्गीय योद्धा वर्ग के भीतर ही सीमित थी।

(b) ब्लॉख ने सामन्तवाद को एक व्यापक सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक ढाँचे के रूप में देखा। उनके अनुसार इसकी जड़ें 6वीं सदी से ही दिखाई देने लगती हैं। उन्होंने यह भी बताया कि यह केवल कानूनी ढांचा नहीं था, बल्कि एक मानसिकता (mentality) थी, जिसमें व्यक्तिगत संबंध और परंपराएँ सर्वोपरि थीं।

(c) क्रिस विकहम(2009) क्रिस विकहम सामन्तवाद को एक लंबी संक्रमणकालीन प्रक्रिया मानते हैं, जो रोमन साम्राज्य के पतन से लेकर 11वीं सदी तक विकसित होती रही। वे लिखते हैं: "Feudalism did not emerge overnight; it was a centuries-long transformation involving the breakdown of state power and rise of localised economies."— Wickham, The Inheritance of Rome (2009)

(d) सुसन रेनॉल्ड्स(1994) Reynolds सामन्तवाद को एक आविष्कृत श्रेणी (invented category) मानती हैं और तर्क देती हैं कि कोई एकसमान प्रणाली नहीं थी। उनके अनुसार बाद के विद्वानों ने बहुत विविध संबंधों को जबरन एक मॉडल में समेटने का प्रयास किया।

5.4.4 सामन्तवाद का विकास: क्षेत्रीय भिन्नताएँ

यूरोप के विभिन्न भागों में सामन्तवाद की संरचना और विकास की गति अलग-अलग रही:

क्षेत्र	विशेषताएँ
फ्रांस	सामन्तीय संबंधों की सबसे परिपक्व और औपचारिक संरचना यहीं विकसित हुई।
इंग्लैंड	नॉर्मन विजय (1066) के बाद राज्य के नियंत्रण के साथ सामन्तीय ढाँचा अधिक केंद्रीकृत रहा।
जर्मनी और इटली	सामन्तीय ढाँचों में अधिक विकेन्द्रीकरण, और क्षेत्रीय प्रभुओं की स्वायत्तता अधिक थी।
स्पेन	मुस्लिम शासन और पुनर्ज्ञान (Reconquista) की प्रक्रिया के कारण सामन्तवाद ने एक विशिष्ट स्वरूप ग्रहण किया।

इस प्रकार, सामन्तवाद एक धीमी, जटिल और क्षेत्रीय विविधताओं से भरपूर ऐतिहासिक प्रक्रिया थी।इसकी उत्पत्ति केवल किसी एक तिथि या घटना से नहीं जोड़ी जा सकती।यह सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक तत्वों के अंतःक्रियात्मक विकास का परिणाम था।

5.5 सामन्तवाद केआर्थिकआयाम

सामन्तवाद की सामाजिक और राजनीतिक संरचना भूमि पर आधारित आर्थिक संबंधों से गहराई से जुड़ी हुई थी। यह प्रणाली केवल कानूनी या सैन्य नियंत्रण नहीं थी, बल्कि अधिशेष उत्पादन और उसकी जबरन वसूली का एक सुव्यवस्थित ढांचा भी थी। इस खंड में हम सामन्तीय व्यवस्था के आर्थिक पक्षों को दो मुख्य उप-खंडों में विस्तार से देखेंगे:

उत्पादन और अधिशेष वसूली: मध्यकालीन यूरोप में भूमि उत्पादन का केंद्रीय साधन थी। सामन्तीय प्रभु वर्ग (lords) भूमि के स्वामी होते थे, और कृषक (serfs) उस भूमि को जोतते थे। कृषक अपनी उपज का एक निश्चित हिस्सा कर (tax), उपहार (boon), या अनिवार्य सेवा (corvée labour) के रूप में अपने प्रभु को देते थे। यह प्रक्रिया अधिशेष वसूली (surplus extraction) की रीढ़ थी, जिससे प्रभु वर्ग न केवल जीविकोपार्जन करता था बल्कि राजनीतिक और सैन्य प्रभुत्व भी कायम रखता था। उत्पादन की यह प्रणाली अत्यंत स्थैतिक थी — नवीन कृषि तकनीकों और बाजार के अभाव के कारण आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्थाएँ विकसित हुईं, जिन्हें manorial economy कहा जाता है। इस व्यवस्था में प्रभु की जागीर एक इकाई होती थी, जिसमें ग्रामीण कुटीर उद्योग और स्थानीय वस्तु विनिमय प्रणाली भी शामिल थी।

कृषकों की स्थिति और अधीनता: यूरोपीय सामन्तीय व्यवस्था में कृषकों की स्थिति अत्यंत सीमित स्वतंत्रता वाली थी। अधिकांश कृषक 'serfs' (अर्द्धदास) होते थे — वे न तो पूर्णतः स्वतंत्र थे और न ही दास, लेकिन उनके ऊपर स्थानीय प्रभु की व्यक्तिगत और न्यायिक अधीनता थी।

सर्फ़डम की विशेषताएँ: अर्द्धदास भूमि से बँधे होते थे (bound to the land), बिना प्रभु की अनुमति के उस क्षेत्र को छोड़ नहीं सकते थे। उन्हें अनिवार्य श्रम देना होता था (labour rent) और कई बार विवाह, उत्तराधिकार, या स्थानांतरण पर भी कर देना पड़ता था। यद्यपि वे कुछ निजी संपत्ति रख सकते थे, परंतु उनकी कानूनी स्थिति हीन मानी जाती थी।

5.6 सामन्तवाद के सामाजिक आयाम

मध्यकालीन यूरोप में सामन्तवाद केवल राजनीतिक और आर्थिक संरचना नहीं था, बल्कि यह एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था भी थी जिसने मनुष्य के संबंधों, प्रतिष्ठा और जीवन की संभावनाओं को भी पूर्वनिर्धारित कर दिया था। इस खंड में हम यूरोपीय सामन्तवाद की सामाजिक संरचना, अधीनता और सामाजिक गतिशीलता की सीमाओं को दो मुख्य भागों में समझेंगे:

सामन्तीय यूरोप में समाज एक कठोर पदानुक्रम पर आधारित था, जिसे "Three Orders" या "त्रैवर्गिक संरचना" के रूप में समझा जाता है:

1. Oratores (प्रार्थना करने वाले) – पुजारी वर्ग (Clergy), कैथोलिक चर्च यूरोप में सामाजिक जीवन का केंद्र था। पादरी, बिशप, और मठाधीश न केवल धार्मिक अधिकारों के संरक्षक थे बल्कि विशाल भूमियों के स्वामी भी होते थे। इस वर्ग को "spiritual lords" कहा जाता था।
2. Bellatores (युद्धकरनेवाले) – योद्धा वर्ग या कुलीन प्रभु (Nobility), योद्धा वर्ग, जिन्हें barons, dukes, knights आदि कहा जाता था, सैन्य सेवा के बदले भूमि प्राप्त करते थे और बदले में कृषकों से अधिशेष वसूलते थे। इन्हें ही पारंपरिक अर्थों में"feudal lords"कहा जाता है।
3. Laboratores (कार्यकरनेवाले) – कृषक और श्रमिक वर्ग (Peasantry), सामाजिक संरचना का सबसे बड़ा हिस्सा कृषकों का था, जिनमें serfs (बंधुआ कृषक) और freemen (स्वतंत्र कृषक) शामिल थे। इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा न्यूनतम थी और यह वर्ग प्रभु वर्ग के अधीन रहता था।

सामन्तीय यूरोप में सामाजिक और कानूनी समानता का अभाव था। प्रभु और कृषक के बीच का संबंध वफादारी और अधीनता (submission) पर आधारित था, जिसमें कृषकों की आर्थिक स्थिति के साथ-साथ सामाजिक प्रतिष्ठा भी सीमित थी। सर्फ़ व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित थे — न तो विवाह कर सकते थे, न ही स्वतंत्र रूप से निवास बदल सकते थे। जागीर पर उनका कार्य अनिवार्य था — जिसे corvée labour कहा जाता था। वे प्रभु की अदालत के अधीन होते थे, और उनके ऊपर स्वतंत्र न्यायिक अपील का अधिकार नहीं होता था।

कुलीन वर्ग की महिलाओं की स्थिति बेहतर थी, लेकिन वे भी उत्तराधिकार और विवाह के मामलों में पुरुष संरक्षकों पर निर्भर थीं। कृषक वर्ग की महिलाएँ दोहरे शोषण की शिकार थीं — श्रम के साथ-साथ लैंगिक भेदभाव भी। धार्मिक दृष्टिकोणों ने महिलाओं को"पाप का स्रोत"मानकर उनके अधिकारों को सीमित किया।

यूरोपीय सामन्तवाद की सामाजिक व्यवस्था गहन असमानताओं पर आधारित थी। यह एक ऐसा ढाँचा था जिसमें सामाजिक संबंध, वर्ग प्रतिष्ठा, श्रम और अधिकार सभी जन्म के आधार पर पूर्वनिर्धारित थे। कृषक वर्ग के शोषण, महिलाओं की सीमित स्थिति और गतिशीलता की कठिनाई ने इस समाज को स्थिर लेकिन दमनकारी बना दिया। सामन्तवाद इस प्रकार केवल एक राजनीतिक या आर्थिक संरचना नहीं, बल्कि सामाजिक नियंत्रण का भी उपकरण था।

5.7 सामन्तवाद के राजनीतिक आयाम

सामन्तवाद के तहत सत्ता और शासन की अवधारणाएँ आधुनिक 'राज्य' या 'राजसत्ता' की तुलना में भिन्न थीं। यह एक ऐसा राजनीतिक ढाँचा था जिसमें विकेन्द्रितसत्ता, व्यक्तिगतनिष्ठा, और सैन्य अनुबंध के आधार पर राजनैतिक अधिकारों का वितरण होता था। इस खंड में हम दो प्रमुख पहलुओं को विस्तार से देखेंगे:

मध्यकालीन यूरोप में सामन्तवाद की सबसे प्रमुख राजनीतिक विशेषता सत्ता का विकेन्द्रण (decentralization) थी। राजा नाममात्र का सर्वोच्च शासक होता था, लेकिन वास्तविक नियंत्रण विभिन्न स्तरों के सामन्तों के हाथ में होता था। राजा या सम्राट के अधीन कई सामन्तीय प्रभु होते थे — ड्यूक (Dukes), काउंट (Counts), बैरन (Barons), आदि। प्रत्येक प्रभु अपनी जागीर पर कानून, कर, और न्याय लागू करने के लिए स्वतंत्र था। सामन्त एक ओर राजा के अधीन होते, लेकिन अपनी भूमि में वे स्वायत्त शासक के रूप में कार्य करते थे। जैसा कि इतिहासकार Marc Bloch कहते हैं, सामन्तवाद में 'राज्य 'की कोई एककृत परिभाषा नहीं थी; राजनीतिक अधिकार एक ही समय में कई स्तरों पर विद्यमान होते थे — राजा, सामन्त, उप-सामन्त।

सामन्तीय राजनीति की नींव व्यक्तिगत संबंधों पर टिकी थी, न कि किसी लिखित संवैधानिक ढांचे पर। यह संबंध प्रभु (lord) और वैसल (vassal) के बीच सैन्य सेवा, भूमि अनुदान और निष्ठा (loyalty) पर आधारित होता था। वैसल को फ़ीफ़ (fief) के बदले अपने प्रभु को सीमित अवधि तक सैन्य सेवा देनी होती थी (प्रायः वर्ष में 40 दिन)। युद्धकाल में वैसल अपने सैन्य बलों के साथ प्रभु के लिए लड़ता था। इस प्रकार एक विकेन्द्रित सैन्य ढांचा बनता था, जो अक्सर राजाओं को अपने सामन्तों पर निर्भर बनाता था।

सामन्तीय यूरोप की राजनीतिक संरचना एक केंद्रीकृत राज्य-व्यवस्था की अनुपस्थिति में विकसित हुई थी। यह व्यक्तिगत संबंधों, भूमि पर नियंत्रण और सैन्य सेवा के अनुबंधों के जटिल ताने-बाने पर आधारित थी। राजा सर्वोच्च प्रतीक था, लेकिन वास्तविक सत्ता क्षेत्रीय सामन्तों के पास थी, जो स्थानीय स्तर पर mini-kings के रूप में कार्य करते थे। वफादारी की शपथ और सैन्य सेवा इस व्यवस्था को जोड़ने वाले प्रमुख तत्व थे, लेकिन इनकी अस्थिरता ही अंततः सामन्तीय राजनीतिक व्यवस्था के संकट का कारण भी बनी।

5.8 सांमतवाद का पतन

13वीं शताब्दी यूरोप में मध्यकाल का चरमोरकर्ष माना जाता है, किंतु इसी शताब्दी के अंतिम वर्षो में कुछ ऐसी नवीन प्रगतिशील शक्तियों का उदय हो रहा था जो मध्यकालीन व्यवस्था के पतन और नये युग के

आगमन का संकेत दे रही थी। 14वीं एवं 15वीं शताब्दी में प्रायः उन सारी शक्तियों का विघटन हुआ जो मध्यकालीन व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ थी। ये विशेषताएँ थी - राजनीतिक सत्ता का विखंडीकरण, निजी लोगों के हाथों में सार्वजनिक शक्ति एवं एक ऐसी सैन्य व्यवस्था जिसमें सैन्य शक्ति निजी हाथों में ठेके पर दे दी गई है, इत्यादि। मध्यकालीन संस्थाओं के विघटन के साथ-साथ नए आदर्शो और संस्थाओं का उदय हो रहा था। ये दो सदियॉ अंशतः मध्यकालीन और अशंतः आधुनिक साबित हुई। इन दोनों शताब्दियों में कुछ विशिष्ट मध्यकालीन संस्थाओ जैसे बड़े-बड़े साम्राज्य, विश्वव्यापी धर्म, गिल्डों के अधिकार, मैनोरियल व्यवस्था और रूढ़िवाद के पतन के गर्त में गिरते देखते हैं। लगभग हर स्थिति में मध्यकालीन संस्थाएं नवजागृत प्रगतिशील शक्तियों को नियंत्रित करने या रोकने में सक्षम रही। मध्यकालीन व्यवस्था के केन्द्र में सामंतवादी व्यवस्था थी और इसका पतन संपूर्ण मध्यकालीन व्यवस्था के पतन की व्याख्या करता है।

5.9 सामंतवाद के पतन के कारण

5.9.1 सांमतों के मध्य अविराम युद्धों की शृंखला

सामंत प्रथा की एक बड़ी कमजोरी यह थी कि सांमत बराबर आपस में लड़ते रहते थे। इनके कारण धन-जन की काफी क्षति होते गया। 200 वर्षों के धर्मयुद्ध में बहुत सारे सामंत मारे गये। इस युद्ध का अंत होते-होते इंग्लैड़ और फ्रांस के सामंतों के बीच लड़ाई छिड़ गई जो लगभग 100 वर्षो तक चली। इसमें अनेक सांमत मारे गए। फिर 15वीं सदी में इंग्लैड के गुलाबों के युद्ध से भी वहॉ के सामंतवर्ग को बड़ी क्षति पहुची। यह बड़ा भीषण युद्ध था, क्योंकि इसके द्वारा प्रतिद्वन्द्वी सांमतों के दल इंग्लैंड के शासनतंत्र को अपनी-अपनी मुट्ठी में लाना चाहते थे। एक ओर इन्होंने आपस में लड़कर अपनी शक्ति बर्बाद की तो दूसरी ओर इन्होनें राजाओ को सामंती मामलो में हस्तक्षेप करने का मौका दिया। इन सामंती युद्धों के कारण यूरोप में हिंसा, अव्यवस्था और उपद्रव का वातावरण पैदा हुआ। फलतः सामान्य लोगों में सांमतों के प्रति घृणा और उब की भावना पैदा हुई। इसी परिवेश में कानून-व्यवस्था के स्थानापन्न के रूप में शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। फलतः राष्ट्रीय-राज्यों के उदय का मार्ग प्रशस्त होने लगा। अगर इंग्लैंड में यार्क और लंकाशायर वंश के सांमत आपस में नही लड़ते तो वहॉ ट्यूडर निरकुंशतंत्र का उदय नहीं होता।

5.9.2 नये हथियारों का अविष्कार

एक ओर तो लगातार हो रहे युद्धों के कारण सामंतों की संख्या घटती जा रही थी और दूसरी ओर नए हथिआरों के आविष्कार के कारण उनका सामाजिक एवं सामरिक महत्त्व भी घट रहा था। घुड़सवार सामंत अपने भाले, बर्छे और तलवारों से लड़ते थे और इस कारण वे युद्ध में कुशल समझे जाते थे। अब लंबे धनुष का प्रचलन आरंभ हुआ। इससे तीरंदाज किसान भी घुड़सवार सामंत का मुकाबला करने लगा और सामाजिक दृष्टि से अब नाइट की पुरानी प्रधानता जाती रही।

इन सामंतों की सामरिक प्रधानता का दूसरा कारण था कि वे अपने दुर्भेध किलों में रहकर अपनी सुरक्षा आसानी से करते थे, किंतु मंगोल यूरोप में सबसे पहले बारूद लाये और अरब युद्ध में बारूद के गोलों का

व्यवहार होने लगा। गोला-बारूद द्वारा सामंती किलों पर दखल जमाना आसान हो गया, इसलिए अब सामंती किले की दुर्भेधता जाती रही।

मध्य युग के अंत में बंदुकों का व्यवहार होने लगा। पहले इसका व्यवहार जर्मनी में हुआ और गुलाबों की लड़ाई में इंग्लैंड में एडवर्ड चतुर्थ के भाड़े के सिपाहियों ने इसका प्रयोग किया। बंदुकों के कारण पैदल सेना प्रमुख सेना बन गई और पुराने ढंग की घुड़सवार सेना का महत्त्व जाता रहा। सामंतो को दबाने के लिए राजा पैदल सेना का संगठन करने लगा और उनके लिए बंदुक और बारूद जुटाने लगा। इसके लिए पैसे की आवश्यकता थी और पैसे शहरी व्यापारियों के पास थे। सामंतो के विरोधी व्यापारी ने पैसे से राजा का हाथ मजबूत किया जिससे सामंती व्यवस्था को धक्का लगा।

5.9.3 किसान विद्रोह

सामंतों के पतन का एक प्रमुख कारण था किसानों का विद्रोह। कृषि अधिशेष का सामंतो के द्वारा अधिक दोहन का बुरा असर किसानों पर पड़ा। छोटे एवं मध्यम किसान भी इससे प्रभावित हुए क्योंकि अधिशेष दोहन के दर में वृद्धि से उनके पास मुश्किल से कुछ बचता था। एम.एम. पोस्टन के अनुसार सामंती कुलीन वर्ग के द्वारा आश्रित किसानों से कुल उपज का आधा भाग ले लिया जाता था। इसके साथ-साथ लगातार कृषि के कारण भूमि की उर्वरकता भी कम होती जा रही थी क्योंकि उर्वरकता हासिल करने के लिए किसान जमीनों को बहुत दिनों तक परती नहीं छोड़ सकते थे। साथ ही किसानो की सीमित आय के कारण उन्नत बीज, उर्वरक और तकनीक पर खर्च नहीं करते सकते थे। परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन में गिरावट दर्ज हुआ और खाद्य पदार्थो के असमान वितरण और आबादी में लगातार वृद्धि के कारण संकट को जन्म दिया। साथ ही साथ सामंती वर्ग के द्वारा कृषि के क्षेत्र में कोई रूचि का न लेना तथा भोग विलास में ज्यादा खर्च करना भी महत्तवपूर्ण भूमिका निभा रहा था। रोडनी हिल्टन ने अनुमान लगाया कि सामंतो के द्वारा कुल आय का मात्र पॉच प्रतिशत उत्पादन में निवेश किया जाता था बाकि गैर उत्पादक मदों में।

उपरोक्त वर्णित परिस्थितियों के कारण 14वीं सदी के शुरू में पूरे यूरोप में कृषि मूल्यों में काफी बढ़ोती हुई। इससे ग्रामीण तथा शहरी वर्ग दोनों प्रभावित हुआ। खाद्य पदार्थो में हो रहे लगातार वृद्धि के कारण 14वीं सदी के पूर्वार्द्ध में अकाल पड़ने लगे थे। 1315-16 का अकाल काफी भयंकर था। अकालों के कारण आबादी में गिरावट हुआ। इसके अलावा, 1347 में पूर्वी यूरोप में प्लेग की महामारी फैल गई और 1348 तक पश्चिमी यूरोप में फैल गया। महामारी का यह श्रृंखला 1350-51 तक चला। इसे यूरोप में 'काली मौत' के नाम से जाना जाता है। इसमें यूरोप की एक चौथाई आबादी नष्ट हो गई। 14वीं सदी के अंत तक यूरोप की आबादी में 40 प्रतिशत तक गिरावट दर्ज हुआ।

पश्चिम में आश्रित किसानों ने 14वीं सदी के इस संकट का मुकाबला सामंती करों के बढ़ते बोझ के खिलाफ प्रतिरोध करके किया। अधिकांश किसानों के विद्रोह स्वतःस्फूर्त और व्यक्तिगत थे। किसान शुल्क अदा करने से मना करके दूसरी जगह भाग जाते। आगे चलकर बड़ी संख्या में यह विद्रोह संगठित किसान विद्रह हुए

जिससे सामंतो का अधिकार भूदासों पर कमजोर हुआ। 1320 के दशक में फ्रांस, बल्जियम, इंग्लैंड आदि क्षेत्रों में अनेक किसान विद्रोह हुए। सर्वाधिक महत्वपूर्ण विद्रोह 1358 में फ्रांस में हुआ जिसे ग्रैंड जैकरी के नाम से जाना जाता है।

5.9.4 व्यापार की भूमिका

बेल्जियम इतिहासकार हेनरी पिरेन ने सामंतवाद के पतन के लिए व्यापार के प्रसार एवं शहरी केन्द्रों के उदय को जिम्मेदार माना है। इन्होने अपनी पुस्तक, 'मेडिवल सिटीजः देयर ऑरिजिन ऐंड रिवाइवल ऑफ ट्रेड' में सामंतवाद के पतन में व्यापार की भूमिका को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना हैं। पिरेन के अनुसार लंबी दूरी का व्यापार जिसे वे ''ग्रैंड ट्रेड'' कहते थे, की फिर से पुनरूत्थान हुआ और शहरी केन्द्र उभर आए। इससे लोगों के निजी जिंदगी में परिवर्तन हुआ और व्यक्ति स्वतंत्रता का जीवन को मूल मानने लगा। जर्मनी में यह कहावत प्रचलित हुई कि 'शहर की हवा लोगों का आजाद बनाती है।' वास्तव में व्यापार का वातावरण स्वतंत्रता का वातावरण था और सामंती प्रथा का वातावरण असंतोष और संकीर्णता का। इसलिए दोनों में संघर्ष हाने लगा। शहर के लोगों को भी सामंती सेवाएं करनी पड़ती थी जिससे वे मुक्त होना चाहते थे। उदाहरण के लिए उन्हें अपनी जमीन बेचने की स्वतंत्रता नहीं थी, जिससे वे अपनी पूंजी को करोबार में लगा सकें। उनके व्यापार संबधी मुकदमों का फैसला भी मैनर की सामंती कचहरियों में होता था। इसके अतिरिक्त इन्हें अपने उद्योग एवं धन्धें और व्यापार में मजदूरों की आवश्यकता थी, किंतु सामंती व्यवस्था दासता के कारण मजदूर जमीन से बॅधे हुए थे। इन कारणों से भी व्यापारियों और सामंतो के बीच संघर्ष हुआ और व्यापारियों के द्वारा किसान विद्रोही को समर्थन भी मिला।

13वीं-15वीं शताब्दी तक सौदागरों के द्वारा अपना संगठन बनाया गया और राजा की सहायता से अपनी मॉगों को मनवाया भी गया। इससे समंतवाद को बड़ा धक्का लगा। व्यापार में तेजी के पीछे धर्मयुद्ध का भी बड़ा योगदान माना जाता है। इससे भूमध्यसागर का रास्ता मुस्लिमों से निकलकर यूरोपीयों के हाथों में चला गया। परिणामस्वरूप उत्तरी यूरोप और पुरब के बीच व्यापार में तेजी आया। पुराने शहर पुनः उन्नति करने लगे और साथ ही नए शहरों का उदय होने लगा। 15वीं शताब्दी में पेरिस की आबादी तीन लाख, वेनिस की एक लाख, नब्बे हजार, प्राग एवं ब्रुसेल्स की एक लाख और लंदन की आबादी 35000 थी।

पिरेन की सामंतवाद और व्यापार के बीच आधारभूत द्विभाजन संबंध को सबसे गंभीर चुनौति मार्क्सवादी इतिहासकार मॉरिस डॉब ने दी। 1946 में उन्होने अपनी पुस्तक 'स्टडीज इन द डेवेलवपेंट ऑफ कैपिटलिज्म' में सामंतवाद के पतन में व्यापार की भूमिका को उठाया। उनके अनुसार अपने आप में व्यापार किसी भी आर्थिक व्यवस्था को नहीं बदल सकता है क्योंकि व्यापार के साथ-साथ दास प्रथा, सामंतवाद, पूंजीवाद इत्यादि कायम रह सकता है। उन्होने यह भी तर्क दिया कि 17वीं-18वीं शताबदी में पूर्वी यूरोप में व्यापार के

पुनरूत्थान से सामंतवादी व्यवस्था का अंत होने के बजाए वहॉ 'दूसरी कृषि दास' व्यवस्था का जन्म हुआ। इनके अनुसार कृषि दास प्रथा सामंतवाद का प्रमुख लक्षण है।

मार्क्सवादी विश्लेषण के तहत डॉब ने कहा कि पश्चिमी यूरोप में सामंतवाद के पतन का कारण 'अंदरूनी संकट' था। इस अंदरूनी संकट को डॉब ने सामंती वर्गा एवं किसान वर्ग के बीच के संघर्ष के रूप में व्याख्यायित करते है। डॉब शहरों के उदय को भी सामंतवाद के पतन के लिए एक प्रमुख कारण मानते है। परंतु जहॉ एक ओर पिरेन इस परिघटना को व्यापार के साथ जोड़कर देखते हैं वहीं दूसरी ओर डॉब व्यापार से इसका कोई संबंध नहीं मानते है।

अमेरिकी विद्वान पॉल स्वीजी ने भी पिरेन की अवधारणा और व्यापार/सामंतवाद के बीच असंगति का समर्थन किया। उनका तर्क है कि सामंतवाद का पतन वाणिज्यिक अर्थव्यवस्था के विस्तार के कारण हुआ। जापान के इतिहासकार कोचरू ताकाहाशी ने यह कहकर बहस को एक नया मोड़ दे दिया कि पूंजीवाद का जन्म केवल बुर्जुआ वर्ग के उदय के जरिए सामंतवाद के खंडहरों के ऊपर नही हुआ बल्कि यह राज्य समर्थित पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का परिणाम था। जापान के संदर्भ में तेजी पुनर्स्थापना के बाद पूंजीपति वर्ग ने नहीं बल्कि राज्य ने वहॉ पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के उदय में निर्णायक भूमिका अदा की।

यदि डॉब ने व्यापार और सामंतवाद की संगति के संबंध में विचार रखे तो दूसरे फ्रांसीसी इतिहासकार गी बुआ आगे बढ़कर दोनों का सीधा संबंध को स्थापित किया। डॉब के अनुसार सामंतवाद का पतन उत्पादन की सांमतवादी पद्धति के भीतर के अन्तर्विरोधों का परिणाम था। गि बुआ ने अपने लेख में फ्रांस के एक गॉव लूर्नांद ;स्वनतदंदकद्ध का परीक्षण संक्रमण के काल में किया और यह बताया कि व्यापार के विकास से अधिपतियों और किसानों का सांमती गठजोड़ कमजोर होने के बजाए और मजबूत हो गया। पिरेन का यह मानना था कि मध्यकालीन यूरोप में प्रौद्योगिकी का स्थान निम्न था और भूमि तथा श्रम की उत्पादकता काफी कम थी, से डॉब, रोडनी हिल्टन आदि सहमति दर्ज करते हैं।

5.9.5 मुद्रा-व्यवस्था का उदय

जैसे-जैसे व्यापार की वृद्धि हुई मुद्रा-व्यवस्था का प्रचलन हुआ। सामंती व्यवस्था के आर्थिक आधार में मुद्रा की प्रघानता नहीं थी। किसान वर्ग काम करके एवं सामंतशाह उनसे सेवाएँ लेकर अपनी जरूरतों को पूरा करते थे। परंतु सिक्कों के प्रचलन से परिस्थितियॉ बदल गयी। मुद्रा अर्थव्यवस्था में सामंतो ने भूमि को व्यावस्था के रूप में देखना शुरू किया। वे अब अपनी जागीर से अधिक से अधिक मुनाफा चाहने लगे। अतः उन्होने अपनी जमीन की घेराबंदी शुरू की और उस घिरे हुए प्लाट में खेती के नये तरीके अपनाये। उन्होंने महसूस किया किया कि अब खेती में उतने लोगों की आवश्यकता नहीं है, जितने लोग पहले लगाए जाते थे। अतः उन्होने अपनी जागीर में संलग्न किसानों को बाहर करना शुरू किया। इस प्रकार से एक ओर मैनोरियल व्यवस्था का अंत हुआ और दूसरी ओर कृषि के व्यावसायीकरण से सामंती मूल्य एवं दृष्टिकोण विखड़ने लगा। मैनर

व्यवस्था से मुक्त किसान नए व्यवस्था की खोज में शहर की ओर पलायन करने लगे। इस कारण से मुद्रा-प्रधान अर्थव्यवस्था के कारण ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में एक नई लहर पैदा हुई जो सामंतवाद के विरूद्ध थे। अब गतिहीन, कृषि प्रधान और सामूहिक सामंती व्यवस्था के स्थान पर एक गतिशील, शहरी, प्रतियोगी और मुनाफा व्यावस्था अर्थव्यवस्था अर्थात् पूंजीवाद का उदय हुआ। ऐसी स्थिति में सामंतवाद जीर्ण-शीर्ण और अनुपयोगी साबित होने लगा। धीरे-धीरे यह स्पष्ट होने लगा कि उदयीमान आर्थिक एवं सामाजिक शक्तियों का विकास शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार के द्वारा ही हो सकता है। किसान व्यापारी, उद्योगपति, मजदूर, सभी राजा को ही अपना हितचिंतक मानने लगे और उन्होंने व्यापार, उद्योग, खेती तथा सामाजिक संरचना पर केन्द्रीय सरकार के अधिकाधिक नियंत्रण की मॉग की। इंग्लैंड एवं फ्रांस जैसे देश के राजाओं ने इस चुनौति का स्वीकारा और उन्होंने राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को नियंत्रित किया। सामाजिक स्तरीकरण ,आर्थिक स्थानीयवाद और निहित स्वार्थो के विभिन्न घटकों पर आधारित सामंतवाद के पतन का संकेत राष्ट्रीय-राज्यों के उदय से मिल रहा था।

परिणाम यह हुआ कि पश्चिमी यूरोप के देशों में राजा और व्यापारिक वर्ग (थर्ड स्टेट) के बीच अन्योन्याश्रित संबंध कायम हुआ। पारस्परिक समझौते के द्वारा दोनों सामंतों की रही-सही शक्ति को तोड़ने लगे। अपने देश में एक मजबूत केन्द्रीय (राष्ट्रीय) शक्ति की स्थापना की चेष्टा करने लगे। उदाहरण के लिए, 1389 ई0 में इंग्लैड की सरकार ने यह कानून पास किया कि समूचे इंग्लैंड में एक समान माप-तौल चलेगी और जो इसका उल्लंघन करेगा उसे छः महीने की सजा मिलेगी । उसी प्रकार 1439 ई0 में फ्रांस के राजा ने एक कानून पास किया कि व्यापारियों को सामंतो के द्वारा ज्यादा लुटने से बचाया जाए। उसी साल फ्रांस में राष्ट्रीय कर जिसे टैली कहते है पहले पहल लगाया गया जो नियमित रूप से सबको पैसे के रूप में देना पड़ता था। अब राजा नियमित रूप से वेतनधारी सेना रखने लगा और राजकर्मचारियों को भी बहाल करने लगा। वह मध्यमवर्ग से जज, मंत्री और नागरिक अधिकारिक को भी भर्ती करने लगा। 15 वीं शताब्दी में फ्रांस के जाकी कोर नामक लियोन शहर का बैंकर अपने समय का बहुत धनी व्यक्ति राजा का मंत्री बना। इस तरह 15वीं शताब्दी का अंत होते-होते इंग्लैड, फ्रांस, बैल्जियम और स्पेन में पूरे के पूरे राज्य एक आर्थिक इकाई बन गए और राजा की प्रधानता कायम हो गयी। स्थानीयता पर आधारित सामंतवाद धाराशायी होने लगा।

5.9.6. प्रौद्योगिकी और भूमि तथा श्रम की उत्पादकता

मध्ययुगीन यूरोप में प्रौद्योगिकी के निम्न स्तर की बात को हेनरी पिरेन तथा मॉरिस डॉब दोनों ने ही समर्थन किया परन्तु इस बात पर उन्होंने कुछ नहीं कहा कि इस लंबे अंतराल में प्रौद्योगिकी में काफी परिवर्तन दर्ज हुआ। पॉचवीं से आठवीं या नवीं शताब्दी के मध्य दक्षिणी यूरोप और भूमध्यसागर के आसपास मे क्षेत्रों में बीजःउपज का अनुपात लगभग 1:1.6 या अधिक से अधिक 1:2.5 था। अर्थ है 10 किलो बीज बोने पर अधिकतम सिर्फ 25 किलो अन्न का उत्पादन। इस समय उपलब्ध प्रौद्योगिकी अतिसाधारण थी। इस समय हल के रूप में खुरचने वाला हल का इस्तेमाल होता था जिससे जमीन की गहरी खुदाई नहीं हो पाती थी।

इससे जमीन की उर्वरकता का अधिकतम दोहन नहीं हो पाता था। फलस्वरूप बड़े-बड़े खेतों में फसल लगाना पड़ता था और श्रम भी ज्यादा लगता था। श्रमिकों के अधिक मॉग के कारण सामाजिक स्तर पर भी तनाव बना रहता था।

परंतु मध्य काल में कृषि प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकास हुआ। कृषि के क्षेत्र में भारी हल का प्रयोग, दो-खेत व्यवस्था के स्थान पर तीन-खेती व्यवस्था, बारी-बारी से फसल उगाना , नई फसलें जैसे मटर, बीन्स आदि का उपजाने की शुरूआत हुई। भारी हल खींचने के लिए बैल तथा बाद में घोड़े का प्रयोग किया गया। इससे 12वीं शताब्दी में श्रम और भूमि की उत्पादकता में वृद्धि हुई। अब बीजःफसल का अनुपात 1:4 हो गया यानि अधिशेष की मात्रा तिगुनी हो गई थी। इसके अलावा पनचक्की एवं पवनचक्की के प्रयोग के कारण मानव श्रम की आवश्यकता भी कम हो गई। परिणामस्वरूप कृषि के लिए अतिरिक्त मानव संसाधन उपलब्ध थे। परंतु इस तरह की प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल हेतु अधिक पूंजी की जरूरत होती थी जिसके कारण किसानों के बीच पहले से मौजूद मतभेद को और अधिक विस्तारित कर दिया। अब छोटे किसान भी कृषि में अधिक पूंजी निवेश करने लगा और बाजार में उत्पाद को बेचने लगा। परंतु कृषि के वाणिज्यिकरण के कारण और असमय फसल के नष्ट होने के चलते उसे भूमिहीन मजदूर बनने को बाध्य होना पड़ता था। इस प्रकार मजदूर, भूमि और उपज तीनों बाजार के द्वारा निर्धारित होने लगे इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप किसानों के बीच भेद और तीव्र हो गया जो सामंतवाद के पतन के लिए जिम्मेदार साबित हुआ।

5.9.7. जनसंख्या में वृद्धि

1960-70 के दशक में नव-माल्थसवादियों ने भी सामंतवाद के पतन की व्याख्या अपने तरीके से की। इनका मानना है कि जनसंख्या के पैटर्न में आए बदलाव के कारण सामंती अर्थव्यवस्था का पतन हुआ। ये आगे कहते हैं कि आर्थिक ढॉचे में दीर्घकालीक परिवर्तन में जनसंख्या की बड़ी भूमिका थी। इमैनुएल लि रॉय लादूरी ने यह तर्क दिया कि मध्ययुगीन यूरोप में बढ़ी हुई आबादी का बोझ सहन करने में कृषि अपने को असमर्थ पा रही थी। जनसंख्या में वृद्धि के साथ-साथ उत्पादकता में गिरावट, जोतों का विखंडन, मजदूरी मे गिरावट और लगान में वृद्धि के कारण कृषि संकट पैदा हो गया। इसलिए 1314-15 ई0 में अकाल और 1348-51 में प्लेग ने ऐसा कहर बरपाया कि यूरोप की एक चौथाई जनसख्या समाप्त हो गई। इससे मध्ययुगीन यूरोप का संपूर्ण संतुलन बिगड़ गया और पूंजीवाद की और संक्रमण हुआ।

5.9.8. पुनर्जागरण और धर्मसुधार

पुनर्जागरण एवं धर्मसुधार आंदोलन भी सामंतवाद के पतन में अपना योगदान दिया। पुनर्जागरण ने मानवतावाद और राष्ट्रीय-राज्यों के उदय का मार्गा प्रशस्त किया। इसके साथ ही साथ तर्क और विवेक पर आधारित एक ऐसी विचारधारा का जन्म हुआ जो सामंती विचारधारा से मेल नहीं खाती थी। धर्मसुधार आंदोलन में उस चर्च की महत्ता पर कुठाराघात किया जो सामंती व्यावस्था का एक मुख्य आधार था। मठो

की जमीन जब्त कर ली गयीः पादारियों के विशेषाधिकार छिन लिये गये और रूढ़िवादी विचारधारा पर प्रहार हुए। दूसरे शब्दों में सामंतवाद के आधारस्तंत्रों को हिला दिया गया।

5.10 सारांश

कुल मिलाकर इतिहासकार जनसंख्या में परिवर्तन और व्यापार की भूमिका को सामंती अर्थव्यवस्था के रूपान्तरण के लिए जिम्मेदार मानते है। आर्थिक इतिहासकार एम.एम. पोस्टन एवं ई.ले. राय लादूरी जनसंख्या के विस्तार एंव संकुचन के संदर्भ में सामंती व्यवस्था के पतन हेतु व्याख्यायित करते है। दूसरी तरफ हेनरी पिरेन और ई0 वैलरस्टीन जैसे इतिहासकार व्यापार की भूमिका पर बल देते है। एक अन्य इतिहासकार राबर्ट ब्रेनर ने 1976 में अपने लेख 'एग्रेरियन क्लास स्ट्रक्चर एंड इकानोमिक डेवलपमेंट इन प्री-इंडस्ट्रियल यूरोप' में यह दलील दी है कि 'जनसंख्या मॉडल' एवं 'व्यापार मॉडल' एवं व्यापार मॉडल सामंती व्यवस्था के भीतर के परिवर्तन को स्पष्ट करने में असमर्थ है। इन्होने इन परिवर्तनों के पीछे मध्यकाल में हो रहे वर्ग-संघर्ष को वास्तविक कारण मानते है। इस वर्ग संघर्ष के दो मुख्य समूह थे किसान और सामंती समुदाय। ब्रेनर की भॉति पेरी एंडरसन भी सामंतवाद से पूंजीवाद की संक्रांति में राजनीतिक कारकों की भूमिका मानते है। वह शहरों और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के महत्व को आंशिक रूप से मानते है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सामंतवाद का पतन उन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक व धार्मिक तथा बौद्धिक वातावरण में हुआ, जिनका उदय एंव विकास बड़ी तेजी से 13वीं शताब्दी में होने लगा। धर्मयुद्ध, वाणिज्यिक क्रांति, पूंजीवाद की ओर संक्रमण, राष्ट्रीय-राज्यों का उदय, जनसंख्या में परिवर्तन, कृषि अर्थव्यवस्थां में बदलाव, अकाल, महामारी आदि ऐतिहासिक घटनाक्रमों ने एक साथ मिलकर सामंतवाद के पतन में अपना योगदान दिया। सामंतवाद का पतन उन देशों में पहले हुआ जहॉ उपयुक्त आधुनिक शक्तियों का झौंका पहले आया। पश्चिमी यूरोपीय देशों सामंतवाद का पतन पहले हुआ और मध्य एवं पूर्वी यूरोपीय देशों में बाद में।

सत्य/असत्य बताए:

- सामंतवाद की मुख्य विशेषताएँ थी- राजनीतिक सत्ता का विखंडीकरण एवं निजी लोगों के हाथों में सैन्य शक्ति का संकेन्द्रण।
- सामंतावाद के पतन हेतु सामंतों के बीच अनवरत युद्ध ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- इंग्लैंड में गुलाबों की लड़ाई के दौरान राजा एडवर्ड पंचम था।

- **रिक्त स्थानों की पूर्ति करे:**
  - 1358 में ग्रैंड जैकारी नामक विद्रोह ..... में हुआ था।

- मेडिवल सिटीजः देअर ओरिजन एण्ड रिवाइवल ऑफ टे^{a}ड के लेखक ..... है।
- किसानों के बीच विभेदीकरण किस प्रकार सामंतवाद के पतन को आगे बढ़ाया ?
- सामंतवाद के पतन के लिए आंतरिक संघट किस प्रकार अपनी भूमिका निभाई ?

5.11 शब्दावली

सामंतवाद - 9वीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी के मध्य पश्चिमी और मध्य यूरोप में एक राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक प्रणाली थी जिसमें अधिपतियों की संप्रभुता के साथ-साथ राजनीतिक विखंडीकरण प्रमुख विशेषता थी।

मौन्टेसक्यू: फ्रांसिसी दार्शनिक (1689-1755)। 'द स्पिरिट ऑफ लॉस' इनकी प्रसिद्ध कृति है।

मैनोर: सामंती व्यवस्था में आर्थिक उत्पादन एवं सामाजिक जीवन का एक आधारभूत इकाई। इसमें कई छोटे-छोटे आश्रित खेत होते थे जिस पर अधिपति का सीधा अधिकार होता था और कृषि दासों और इससे बंधे किसानो से खेती कराई जाती थी।

गुलाबों की लड़ाई (1455-85): 15वीं शताब्दी में इंग्लैंड में सामंतो के लड़ाई में एडवर्ड चतुर्थ के द्वारा बंदूक का प्रयोग किया गया था जिसमें सामंतो कां बहुत क्षति पहुँचती।

जैकरी विद्रोह: 14 वीं सदी के पूर्वार्ध में पश्चिमी यूरोप में सामंती आहरण के बढ़ते बोझ के खिलाफ किसानों के द्वारा प्रतिरोध खड़ा किया गया था। इसी विद्रोह के क्रम में 1358 में फ्रांस में जो किसान विद्रोह हुआ था, ग्रैंड जैकरी के नाम से जाना जाता है।

कैरोलिंजी: सातवीं शताब्दी में यह फ्रैकिश शासकीय वंश सत्ता में आया। शार्लमान्य के नेतृत्व में उसने पश्चिम में रोपन साम्राज्य के पहले के अधिकांश क्षेत्रों को अपने अधीन कर लिया। नवीं शताब्दी के अंत में इस साम्राज्य का पतन हो गया।

शार्लमान्य: फ्रैंक्स का महान राजा चार्ल्स (771-814) जिसने पश्चिम में रोमन क्षेत्रों को समेटकर एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया।

धर्मयुद्ध: 11वीं और 13वीं शताब्दी के बीच ईसाइयों की प्रतिरक्षा में मुसलमानों के विरूद्ध लड़ा जाने वाला युद्ध।

काली मौत ;Black Death: यूरोप में 14वीं शताब्दी के मध्य में प्लेग महामारी के रूप में फैली थी और अनुमानतः इसमें यूरोप की आबादी का एक तिहाई से एक चौथाई के बीच लोगों की मृत्यु हो गई थी।

मैनर: सामंती व्यावस्था में आर्थिक उत्पादन के साथ-साथ सामाजिक जीवन का भी एक आधारभूत इकाई थी जिस पर कई छोटे-छोटे आश्रित खेत शामिल होते थे। इस पर अधिपति का कृषि दासों पर सीधा अधिकार होता था।

5.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

- हेनरी पिरेन, मेडिवल सिटिज: देयर आरिजिन ऐंड द रिवाइवल ऑफ ट्रेड, प्रिंसटन, 1926
- मॉरिश डॉब, स्टडीज इन द डेवलमेंट ऑफ कैपिटलिज्म, लंदन, राउटलेज, 1963
- रोडनी हिल्टन, (संपा) दि ट्रांजिशन फ्राम फयूडलिज्म टू कैपिटलिज्म, लंदन, वर्सो 1984
- मार्क ब्लाक, फ्यूडल सोसाइटी, 2 खंड, शिकागो, 1961
- हरबंस मुखिया, ''मॉरिस डॉबस एक्सप्लेनेशन ऑफ दि डिकलाइन ऑफ फयूडलिज्म इन वेस्टर्न यूरोप ए क्रिटीक,'' आई.एच.आर. खंड 6, नं. 1-2, जुलाई 1979- जनवरी 1980 पृ0 154-184.
- अरविंद सिन्हा, संक्रातिकालीन यूरोप, दिल्ली, मनोहर 2010.

5.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. हेनरी पिरेन ने सामंतवाद के पतन हेतु व्यापार के उत्थान एवं शहरी केन्द्रों के उदय का किस प्रकार जिम्मेदार माना है ?

इकाई छह

पुनर्जागरण

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 पुनर्जागरण

- **6.3.1 पुनर्जागरण के तत्व**
- **6.3.2 पुनर्जागरण के कारण**
- **6.3.3 पुनर्जागरण और धर्मयुद्ध**
- **6.3.4 अरब संपर्क**
- **6.3.5 कुबलाई खॉं का दरबार**

6.4 पुनर्जागरण की विशेषताएँ

- **6.4.1 तर्क पर बल**
- **6.4.2 प्रयोग पर बल**
- **6.4.3 मानवतावाद का समर्थन**

6.5 पुनर्जागरण का स्वरूप

6.6 पुनर्जागरण की अभिव्यक्ति

- **6.6.1 साहित्य के क्षेत्र में**
- **6.6.2 कला के क्षेत्र में**
- **6.6.3 स्थापत्य एवं मूर्तिकला**
- **6.6.4 दर्शन**
- **6.6.5 विज्ञान**

6.7 पुनर्जागरण का महत्व एवं परिणाम

- **6.7.1 भौतिकवादी दृष्टिकोण का विकास**
- **6.7.2 बुद्धिजीवी दृष्टिकोण का विकास**
- **6.7.3 पुरातन के प्रति मोह जगाना**
- **6.7.4 अभिव्यक्ति की प्रतिष्ठा**
- **6.7.5 राज्य एवं धर्म का पृथक्करण एवं राष्ट्रीयता का विकास**

6.8 निष्कर्ष

6.9 शब्दावली

6.10 ग्रंथ सूची

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम पुनर्जागरण से संबंधित विभिन्न पहलुओं को समझने की कोशिश करेंगे। पुनर्जागरण का शब्दिक अर्थ होता हैः पुनर्जिवित होना, पुनर्जागृत होना इत्यादि। इस रूप में पुनर्जागरण शब्द का अर्थ, महत्त्व और प्रयोग मध्यकाल से आधुनिक काल के बीच संक्रमण के दौरान व्यक्त होने वाला बौद्धिक, कलात्मक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों से जुड़ा हुआ है। इसने यूरोप के इतिहास में महत्वपूर्ण और खासकर मानव-जीवन से संबंधित समस्याओं के संबंध में लोगों के दृष्टिकोण में व्यापक परिवर्तन लाया । इसके साथ-साथ इसकी अभिव्यक्ति केवल कला, साहित्य, दर्शन, विज्ञान के क्षेत्र में ही नहीं हुई परंतु राजनीतिक, अर्थिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों में भी हुई। इसे वृहत तौर पर मध्ययुग की विरोधी विचारधारा माना गया है और विशेषतः इटली के संदर्भ में पुनर्जागरण चेतना को मानववाद से जोड़ दिया गया है। सही अर्थो में पुनर्जागरण विश्व और मानव की खोज था। इसने आधुनिक सभ्यता का आधार निर्मित किया जिसकी अभिव्यक्ति गणतंत्रवादी स्वतंत्रता के रूप में हुई। यह अध्ययन की एक प्रणली ही नहीं वरन् एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति भी था।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप

- बता सकेंगे कि पुनर्जागरण का अर्थ क्या होता है।
- समझा सकेंगे कि मध्यकाल से आधुनिक काल के संक्रमण में पुनर्जागरण का क्या महत्त्व रहा।
- समझ सकेंगे कि पुनर्जागरण के उदय होने के क्या कारण थे ?
- बता पायेंगे कि पुनर्जागरण की विशेषताओं, स्वरुप और महत्व क्या थे।

6.3 पुनर्जागरण

पुनर्जागरण एक आंदोलन नहीं बल्कि एक मनोदशा, जिसमें वर्तमान की मनोदशा, अतीत की मनोदशा, बुद्धिजीवी की मनोदशा सम्मिलित था। पुनर्जागरण ने अपनी बुद्धि, तर्क के आधार पर अपने युग के सारे परंपरागत व्यवस्थाओं पर प्रश्न खड़ा किया तथा एक वैकल्पिक एवं आधुनिक व्यवस्था के कार्यक्रम की शुरुआत की। इसके परिणामस्वरुप मध्यकाल की आस्थावादी मनोदशा, तर्कवादी आधुनिक काल की मनोदशा में रुपान्तरित हो गया। इसके साथ ही साथ सांस्कृतिक एवं वैचारिक भावनाओं को मूर्त्त रुप देने में पुनर्जागरण एक सर्वाधिक सशक्त आधार बना। पुनर्जागरण मनुष्य की बौद्धिक और कलात्मक ऊर्जाओं की एक ऐसी अभिव्यक्ति थी जिसके द्वारा यूरोप ने मध्यकाल से निकल कर आधुनिक काल में प्रवेश किया इसने जीवन के राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक पक्षों में भी व्यापक परिवर्तन लाया।

पुनर्जागरणकालीन साहित्य मनुष्य और मनुष्य से संबंध सभी अवयवों से जुडा था और इसकी रचना जनसामान्य की भाषाओं मे हुई थी। इस दृष्टि से पुनर्जागरण कालीन साहित्य मध्ययुगीय साहित्य से भिन्न था जिसमें धर्म की बहुलता थी और जिसकी रचना लैटिन भाषा में हुई थी। इसके अलावा, कला भी धार्मिक बंधनों से मुक्त होकर अधिक

यथार्थवादी हो गयी। कला अब जीवन्त एवं आकर्षक हो गयी। लियोनार्दो द विंची (विंचि), माइकल ऐंजलों एवं राफेल आदि इस युग के प्रसिद्व कलाकार थे। इस युग में मूर्तिकला स्थापत्य कला की अधीनता से मुक्त होकर एक स्वतंत्र कला के रुप में स्थापित हुई और साथ ही एक धर्मनिरपेक्ष उद्वेश्य से भी प्रेरित होने लगी। पुनर्जागरण चेतना के प्रभाव में गोथिक स्थापत्य का अवसान हो गया।

पुनर्जागरण शब्दावली से उन सभी बौद्धिक परिवर्तन का बोध होता है जो मध्ययुग के अन्त में दृष्टिगोचर हो रहे थे। परिवर्तन से तात्पर्य सामान्तवाद की अवनति, प्राचीन साहित्य का अध्ययन, राष्ट्रीय राज्यों का उत्थान, आधुनिक विज्ञान का प्रारंभ, नये व्यापारिक मार्गो की खोज, प्रारंभिक पूंजीवाद की शुरुआत इत्यादि। इतिहासकार डेविस के शब्दों में पुनर्जागरण शब्द "मानव स्वातन्त्रय प्रिय साहसी विचारों को जो मध्ययुग में धर्माधिकारियों द्वारा जकड़े एवं बंदी बना लिए गये थे, व्यक्त करता है।" फ्रांस के प्रसिद्ध इतिहासकार मूल्स मिशिलेट ने पुनर्जागरण की व्याख्या करते हुए दो ऐसे व्यापक आयामों की ओर संकेत दिया है जिनमें पुनर्जागरण सुधारवादी समग्र प्रयत्न आ जाते है। ये दो आयाम है - "दुनिया की खोज" और "मनुष्य की खोज।" दुनिया की खोज से तात्पर्य था - 15वीं-16वीं शताब्दी की उन भौगोलिक उपलब्धियों से है जिसने अटलांटिक, प्रशांत और हिंद महासागर को व्यापार के लिए खोल। और पुरानी दुनिया के लोगों को अमेरिका की नई दुनिया, दक्षिणी अफ्रीका और आस्ट्रेलिया का परिचय कराया। "मनुष्य के खोज" के अन्तर्गत मानव शक्ति के उस पक्ष को लिया गया, जिसके द्वारा उसने मध्यकालीन पोपशाही को अस्वीकार किया तथा विकसीत एवं स्वतंत्र दृष्टि से अवलंवन किया।

6.3.1 पुनर्जागरण के तत्व

- उत्सुकता एवं जिज्ञासा और खोजी दृष्टि का उदय।
- साहसिक मनोभावों का उदय।
- व्यक्तिवाद - आत्मतुष्टि और अपनी उपलब्धियों से गौरव की अनुभूति व्यक्तिवाद का सार है।
- धर्मनिरपेक्षता- इसका अभिप्राय है (क) सांसारिक कार्यो में अधिक अभिरुचि लेना तथा (ख) वैसे पादरियों की आलोचना जो आत्मत्याग की बात करते है परंतु उनका पालन नहीं करते।
- मनवतावाद- इसका अर्थ हैं मनुष्य की विशिष्ट गरिमा को पहचानना। इस समय मनुष्य को सभी प्राणियों से सर्वश्रेष्ठ माना गया तथा उसकी प्रतिभा का सम्मान किया जाने लगा।
- ऐतिहासिक आत्मचेतना - यह इतिहास के प्रति बदलती हुई दृष्टि का परिचायक था।

बोध प्रश्न:

1 पुनर्जागरण का क्या अर्थ है ?

2 पुनर्जागरणकालीन कला एवं सहित्य की क्या विशेषताए थी ?

3 व्यक्तिवाद और मानववाद के विकास में पुनर्जागरण क्या भूमिका निभायी ?

6.3.2 पुनर्जागरण के कारण

पुनर्जागरण का एक प्रमुख कारण आर्थिक तथा व्यापारिक समृद्धि थी। धर्मयुद्धों के क्रम में यूरोप के पूर्वी देशों के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित हुए। व्यापारियों का जमघट जेरूसलम तथा एशिया माइनर के तटों पर होने लगा था।

परिणामस्वरूप् व्यापार में वृद्धि हुई। व्यापारिक समृद्धि के कारण यूरोपीय व्यापारियों का विभिन्न देशों से संपर्क हुआ जहॉ वे नये विचारों और प्रगतिशील तत्वों से अवगत हुए। व्यापारिक वृद्धि के कारण नये नगरों का जन्म हुआ। उदाहरण हेतु वेनिस, मिलान, फलोरेंस, न्यूरेमबर्ग आदि का संपर्क विभिन्न क्षेत्रों से स्थापित हुआ। इसके कारण विचारों का भी आदान प्रदान संभव हुआ तथा ज्ञान के विकास में सहायता मिली। व्यापारिक विकास से व्यापारिंयों के पास धन का संकेद्रण बढा। नवोदित व्यापारी वर्ग अब विधार्जन का लाभ उठाया। मध्ययुग में केवल पादरियों को यह अवसर प्राप्त था। अब जनसाधारण भी सहजता से ज्ञान अर्जित कर सकता था।

13वीं -14वीं शताब्दियों में व्यापारिक नगर शक्तिशाली नगर-राज्य बन गए और वे आस-पास के ग्रमीण इलाकों के राजनीतिक और आर्थिक जीवन पर अपना प्रभुत्व जमाने लगे। इस प्रकार शहरी केद्रों में रहने से इटली का अभिजातवर्ग सार्वजनिक मामलों में हिस्सा लेने लगा। नये धनाढय समुदायों ने अभिजातवर्ग का दर्जा हासिल करने की कोशिश की। इसके अलावा इटली में कुलीन वर्ग की स्थिति भी यूरोप के लोगों के कुलीन वर्ग से अलग थी। इटली के व्यवसायिक वर्ग के द्वारा नये विचारों, साहित्य कला को प्रोत्साहन दिया गया। इस प्रकार इटली में नयी विचारधारा के उद्भव के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि तैयार हुई।

इसके अतिरिक्त इटली का भौगोलिक अवस्थिति इसे पूर्व और पश्चिम के बीच का प्रकृतिक द्वारा बना दिया था। वेनिस, फलोरेंस, जेनोआ अदि नगरों का एशियाई देशों के साथ निर्बाध रूप के व्यापार चलता था।

6.3.3 पुनर्जागरण और धर्मयुद्ध

पुनर्जागरण की स्थापना में धर्मयुद्ध का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन धर्मयुद्धों के परिणामस्वरूप यूरापवासियों का पूरब के लोगों के साथ संपर्क हुआ, जो ज्ञान के प्रकाश से आलोकित थे। धर्मयुद्धों ने भौगोलिक खोजों को प्रोत्साहन दिया। परिणामस्वरूप यूरोपीय लोगों द्वारा लंबी यात्राएं की जाने लगीं और बौद्धिक विकास को बढ़ावा मिला। अरस्तु के वैचारिक ग्रंथ, अरबी अंकगणित, बीजगणित, दिशासूचक यंत्र, कागज आदि का यूरोपीय लोगों से संपर्क हुआ।

1453 में पूर्वी रोमन साम्राज्य के पतन के बाद बाइजेंटाइन साम्राज्य की राजधानी कुस्तुनतुनिया पर उस्मानी तुर्की ने अपना आधिपत्य कायम किया। कुस्तुनतुनिया यूनानी, ज्ञान, दर्शन, विज्ञान, स्थापत्य कला एवं संस्कृति का मुख्य केन्द्र थी। परंतु तुर्को के उपेक्षापूर्ण नीति के कारण विद्वानों, कलाकारों, दर्शनिको और स्थापत्यकारों को कुस्तुनतुनिया छोड़ने के लिए मजबूर किया। यहॉ के बुद्धिजीवी, कलाकार, कारीगर इटली, फ्रॉस, इंग्लैण्ड आदि पश्चिमी यूरोप के देशों में जाकर बस गए। पुनः इनके द्वारा क्लासिकल साहित्य एवं कला के विकास को बढ़ावा दिया गया। कुछ लोग 1453 की इस घटना को इतना महत्वपूर्ण मानते हैं कि पुनर्जागरण का प्रारंभ इसी समय से मानने लगे।

6.3.4 अरब संपर्क

मध्यकाल में अरबों के संपर्क से यूरोपीयों ने कागज बनाने की कला सीख ली। फिर जर्मनी के जॉन गुटेनबर्ग ने 15वीं शताब्दी के मध्यकाल में टाईप मशीन का अविष्कार किया। प्रारंभिक मुद्रण यंत्र के विकास ने बौद्धिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया। धीरे-धीरे छापाखाना का प्रसार इंग्लैंड, जर्मनी, स्पेन, फ्रांस आदि देशों में भी हो गया। कागज और मुद्रण

यंत्र के अविष्कार ने प्रकाशन तंत्र को विकसित किया। पुस्तक-मुद्रण के आविष्कार के बाद अधिकाधिक लोगों के लिए यह जानना सम्भव हो गया कि दुनिया में क्या हो रहा है। ज्ञान अब मठों और विश्वविद्यालयों के दीवारों के पीछे ही सीमित न रह कर पढ़े-लिखे लोगों के कहीं अधिक व्यापक दायरे में फैलने लगा। अब राजनीतिक और दार्शनिक विचार ज्यादा से ज्यादा लोगों के पास पहुँचने लगा परिणामस्वरूप रुढ़िवादिता और अंधविश्वासको ठेस पहुंचा।

6.3.5 कुबलाई खॉं का दरबार

नवीन चेतना के प्रचार एवं प्रसार में मंगोल शासक कुबलाई खॉं के दरबार का भी महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है। इनका दरबार विद्वानों, धर्म प्रचारकों, व्यापारियों का केन्द्र बन गया था। मंगोल राज्यसभा पोप के दूतों, भारत के बौद्ध भिक्षुओं, पेरिस, इटली के विद्वानो तथा चीन के दस्तकारों, भारत के गणितज्ञों एवं ज्यातिषचार्यो आदि सभी से सुशोभित था। अतः इस युग में पूर्व एवं पश्चिम का वास्तिवक संपर्क हुआ जिसका यूरोप के लोगों पर काफी प्रभाव पड़ा।

बोध प्रश्नः

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1 पुनर्जागरण के उदय के प्रमुख कारण क्या थे ?

लघुउत्तरीय प्रश्न

2 धर्मयुद्ध से आप क्या समझते है ?

3 कुस्तुनितिनिया के पतन के क्या कारण थे ?

रिक्त स्थान भरिए

क टाइप मशीन के आविष्कारक ..... है।

ख पूर्वी रोमन साम्राज्य का पतन ..... ई0 में हुआ था।

6.4 पुनर्जागरण की विशेषताएँ

6.4.1 तर्क पर बल

पुनर्जागरण ने मध्ययुगीन धर्म और परंपराओं से नियंत्रित चिंतन को मुक्त कर तर्क को बढ़ावा दिया। इस युग के प्रारंभ में अरस्तु के तर्क का गहरा प्रभाव पड़ा। पेरिस, आक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज आदि विश्वविद्यालय ने तर्क के सर्वोच्चता को स्थापित किया।

6.4.2 प्रयोग पर बल

रोजर बेकन प्रयोगात्मक खोज प्रणाली का अगदूत था। प्रयोग के आधार पर ही गैलिलियों ने कॉपरनिकस के सिद्धांत को अकाट्य साबित किया।

6.4.3 मानवतावाद का समर्थन

मानवतावाद का अर्थ है- मानव जीवन में रुचि लेना, मानव की समस्याओं का अध्ययन करना, मानव का आदर करना। 15वीं शताब्दी के मानवतावादी आंदोलन के महत्व में तीन बातें उल्लेखनीय हैं- क. इटली के मानवतावादियों

ने मानव के बौद्धिक विकास और सतत् चिंतन मे सहयोग किया। ख. मानवतावादियों द्वारा की गई ग्रीक साहित्य की पुनः स्थापना ने चर्च के लेखों और साहित्य का स्थान ले लिया। ग. आलोचनावाद का शुरूआत हुआ।

6.5 पुनर्जागरण का स्वरूप

पुनर्जागरण के लौकिक दृष्टिकोण का सबसे महत्वपूर्ण आधार था मानवतावाद। मानवतावाद ने न सिर्फ मानव का बल्कि एक व्यक्ति के महत्व को भी स्थापित किया। अतः व्याक्तिवाद पुनर्जागरण की सांसारिक भावना का दूसरा महत्वपूर्ण स्वरूप है। सांसारिक पुनर्जागरणकालीन सभ्यता शहरी थी। यह मध्यकालीन देहाती सभ्यता से भिन्न प्राचीन यूनानी और रोमन साम्राज्य से मिलती जुलती थी। पुनर्जागरण आंदोलन का मुख्य स्वरूप मध्यवर्गीय था। यह जनसाधारण का आंदोलन नहीं बल्कि मध्यमवर्गीय धनी लोगों के संरक्षण में चलने वाला आंदोलन था। धनी मध्यवर्ग ने समाज में अपने प्रभुत्व की स्थापना हेतु चर्च, पोप और सांमतों की तरह साहित्य और सत्ता को संरक्षण प्रदान किया। इसके अतिरिक्त पुनर्जागरण का स्वरुप तर्कप्रधान इसाईविरोधी तथा सामंतविरोधी था।

यूरोप के देशों में पुनर्जागरण आंदोलन का स्वरुप थोड़ा भिन्न था। इटली की तुलना में यूरोप के उत्तरी देशों में चित्रकारी, मूर्तिकला और स्थापत्य में कम महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके विपरीत मानवतावादी दर्शन और साहित्य ने अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

बोध प्रश्न-

1 पुनर्जागरण के स्वरुप पर चर्चा करें।

2 क्या पुनर्जागरण एक मानवतावादी आंदोलन था ?

सत्य/असत्य बताइए-

क. रोजर बेकन प्रयोगात्मक खोज प्रणाली का अग्रदूत था।

ख. पुनर्जागरण मानववाद को स्थापित किया।

6.6 पुनर्जागरण की अभिव्यक्ति

पुनर्जागरण काल में पुराने से सामंजस्य का नवीन के निर्माण की शुरूआत हुई। इसने न केवल साहित्य, कला, दर्शन एवं विज्ञान को अपितु मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया।

6.6.1 साहित्य के क्षेत्र में

पुनर्जागरण काल में निज साहित्य की रचना हुई। उसका विशिष्ट महत्व है। इससे पूर्व सहित्य का सृजन केवल लैटिन भाषाओं में होता आ रहा था किंतु पुनर्जागरण काल में इनका अध्ययन अध्ययापन यूरोपीय भाषाओं में किया जाने लगा। विभिन्न देशों के लोग अपनी-अपनी मातृभाषाओं में सहित्य का सृजन करने लगे जिससे इटालियन, फ्रेंच, स्पेनिश, पुर्तगाली, जर्मन, अंग्रेजी, डच, स्वीडीश, आदि भाषाओं का विकास हुआ। पेट्रार्क को इतावली पुनर्जागरण साहित्य का पिता कहा जाता है। पेट्रार्क की कविताओं में नवीनता दृष्टिगोचर होती है। पेट्रार्क ने समूचे यूरोप में मानवतावादी विचारधारा को प्रोत्साहित किया। बोकाचियो गद्य साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। दॉते को इतावली कविता का पिता कहा जाता है। दॉते की प्रसिद्ध कृति डिवाइन कामेड़ी है जिसमें एक काल्पनिक जगत

की यात्रा का वर्णन है। दॉते की अन्य प्रसिद्ध रचना है द मोनालिसा। लेखकों की दिलचस्पी अब जीते-जागते लोगों में, उनकी खुशियों और गमों में थी। उन्होंने अपने समय की तूफानी जिंदगी के बारे में लिखा, अपनी कविताओं लोगों की सशक्त भावनाओं को व्यक्त किया।

पुनर्जागरण काल के साहित्य की दूसरी प्रमुख विशेषता विषय वस्तु की थी। मध्यकालीन साहित्य का मुख्य विषय धर्म था परंतु इस युग के साहित्य में धार्मिक विषय के स्थान पर मनुष्य के जीवन और इस युग के साहित्यकारों के विचार मध्ययुगीन धर्मसंबधी वाद-विवाद एवं मान्यताओं से मुक्त थे। अब साहित्य आलोचना प्रधान, मानवतावादी और व्यक्तिवादी हो गया स्पेन के लेखक सर्वातेस ने 'डॉन क्विजोट' में सामंतवादी मूल्यों की खिल्ली उडा़ई हैं। लोक साहित्य से उन्होनें मठवासियों और सामंतों की ओर लक्षित व्यंग्य और उपहास को ग्रहण किया।

फ्रॉसीसी साहित्य के क्षेत्र में रेवेलास और मॉन्टेन इसी युग की देन है। रेवेलास ने धार्मिक कट्टरता एवं पुरातनंपथियों के विरोध में आवाज उठायी। उसने अधिकतम संपन्न लोगों, धार्मिक कट्टरता एवं अंधविश्वास पर व्यंगय किये। अंग्रेजी साहित्यकारों में टोमस मूर ने पुनर्जागरण के कार्य को आगे बढ़ाया। इनकी प्रमुख रचना यूटोपिया है। इसमें इग्लैंड के जनजीवन में सामाजिक बुराईयों और आर्थिक दोषों का निरुपण किया। फ्रांसिस बेकन इस युग का सर्वोत्तम निबंधकार थे। इसने तर्क, अनुभव और प्रमाण पर जोर दिया। शेक्सपीयर द्वारा अपनी कृतियों में मानव के सभी संभव भावों और उनकी क्षमताओं तथा दुर्बालताओं का विवेचन किया है। शेक्सपीयर ने मनुष्य के चरित्र को उत्तम दर्शाने के लिए वही कार्य किया जो माइकल एंजेलो ने फ्रांस में किया।

6.6.2 कला के क्षेत्र में

चित्रकला पुनर्जागरण काल में सबसे अधिक विकास चित्रकला के क्षेत्र में हुआ। 15वीं शताब्दी तक चित्रकला न केवल धार्मिक विषयों पर सीमित थी परंतु रंगों और विषयों का चयन भी सीमित था। उस काल के चित्रों में उदासी एवं एकरसता झलकती है। परंतु पुनर्जागरण काल में कालाकार की अपनी स्वतंत्र पहचान हो गई। इस समय तक आर्थिक समृद्धि एवं धर्मनिरपेक्ष भाव की आंशिक विजय के कारण कला बहुत हद तक धर्म की सेवा से मुक्त हो गई। पुनर्जागरण काल के कलाकारों ने कला कों जीवन का रूप समझा । उन्होने प्रकाशिकी और ज्यामिति का अध्ययन किया और चित्रों में प्रक्षेपों का उपयोग प्रांरभ किया। मानव के हाव भावों की आंतरिक व्यवस्था को समझने के लिए शरीर-रचना विज्ञान के अध्ययन पर जोड़ दिया गया। इंद्रिय सुख प्राप्त करना कला का न्यायोचित उद्वेश्य हो गया। पुनर्जागरण कला के प्रांरभिक चित्रकारों में जिऐटो महत्वपूर्ण है। इन्होनें पंरपरागत शैली से हटकर मानव एवं प्रकृति पर अनेक चित्र चित्रित किए। जियेटों को चित्रकला का जन्मदाता कहा जाता है। इस काल में लियोनार्दो द विंची (द लास्त सपर, मोनालिसा,) माइकल एंजेलो (लास्ट जजमेंट) और राफेल के चित्रों में पुनर्जागरण चेतना की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई।

6.6.3 स्थापत्य एवं मूर्तिकला

पुनर्जागरण चेतना के विकास के साथ कला के क्षेत्र में महत्वपूर्ण विकास हुआ। इस काल में स्थापत्य एवं मूर्तिकला एक दूसरे से स्वतंत्र होकर अलग-अलग विधा के रूप में स्थापित हुई। पुनर्जागरण चेतना के प्रभाव में गोथिक स्थापात्य

का अवसान हो गया। स्थापात्य की नई शैलियों का विकास पहले इटली में और बाद में यूरोप के अन्य भागों में हुआ। इस युग का प्रमुख मूर्तिकार डोनाटेलों तथा गिबर्ती था।

6.6.4 दर्शन

बुद्धिवादी विकास ने व्यापारियों और दर्शनिकों को प्रोत्साहित किया। इटली के दार्शनिकों ने विश्व को यथार्थ से जोड़ा और प्रकृति को सुव्यवस्थित दैविक नियमों से नियंत्रित बताया। पुनर्जागरण काल के मानववादियों ने अरस्तु की जगह सिसरो को अपना आदर्श माना और नैतिक दर्शन पर बल दिया। आगे बहुत से दार्शनिक प्लेटोवादी हो गए और फलोरेंस मे प्लेटोनिक सोसाइटी की स्थापना हुई। मैकियावेली एक यथार्थवादी राजनीतिक दार्शनिक था जो अपनी पुस्तक 'द प्रिंस' और 'डिसकोर्सेज' में अपने विचार व्यक्त किए हैं। उसने मध्ययुग की आधारभूत राजनीतिक अवधारणा पर चोट की। उसने राज्य की अवधारणा आधुनिक रुप में प्रस्तुत की । उत्तरी यूरोप में इरासमस एवं बेकन महत्वपूर्ण विचारक हुए। इरासमस ने चर्च के धार्मिक आडम्बर पर चोट की और बेकन ने आगमनात्मक दर्शन पर जोर दिया।

6.6.5 विज्ञान

पुनर्जागरण के काल में विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई। इस वैज्ञानिक विकास के प्रमुख कारण थे-

1. प्रोटेस्टेंट धर्म ने मनुष्य को धार्मिक नियंत्रण से मुक्त कर स्वतंत्र रुप से विचार करने का अवसर प्रदान किया ।

2. इस युग के विचारकों का मानना था कि ज्ञान प्राप्त करने का सबसे अच्छा तरीका अन्वेषण, अध्ययन- अध्ययापन है न कि महज चिंतन करना फ्रांसिस बेकन ने कहा था ज्ञान की प्राप्ति केवल प्रयोग करने से ही हो सकती है। बेकन के अनुसार जो व्यक्ति ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, उसे स्वयं से प्रश्न करना चाहिए। खगोल विज्ञान के क्षेत्र में कॉपरनिकस ने एक क्रांति ला दी जब उसने घोषणा की कि पृथ्वी अपनी धुरी पर चक्कर लगाती है और वह सूर्य की परिक्रमा करती है। जर्मन वैज्ञानिक केपलर द्वारा गणित की सहायता से ग्रह द्वारा सूर्य की परिक्रमा करने की क्रिया की पुष्टि की गई। आइजेक न्यूटेन ने यह साबित किया कि सभी खगोलीय पिंड गुरूत्वाकर्षण के अन्तर्गत यात्रा करते है। मानव शरीर और रक्त-संचारण के बारे में भी कई अविष्कार हुए। इस प्रकार वैज्ञानिक मनोवृति ने दीर्धकाल से स्वीकृत विचारों और प्रथाओं की आलोचनात्मक परीक्षा की और मनुष्य को कला, व्यवसाय, शिक्षा और जीवन के अनेक क्षेत्रों से नये विचारो के संबध में परीक्षण करने के लिए प्रेरित किया।

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. पुनर्जागरण साहित्य ने किस प्रकार नई चेतना का विकास किया।

बहुविकलपीय प्रश्न

क. इतावली पुनर्जागरण साहित्य के पिता कौन थे ?

1 पेट्रार्क 2 अरस्तु 3 दॉते 4 इरासमस

ख. डिवाइन कॉमेडी के रचनाकार कौन है ?

1 बुकासियो 2 टॉमस मूर 3 दॉते 4 शेक्सपीयर

ग. यूटोपिया के लेखक कौन है ?

1 सर्वातेस 2 टॉमस मूर 3 दॉते 4 शेक्सपीयर

सत्य/असत्य बताइए

1. लियोनार्डो द विंची को चित्रकला का जन्मदाता कहा जाता है।
2. लास्ट जजमेंट माइकल एंजेलों की कृति है।

रिक्त स्थानों को भरें

1. प्लेटोनिक सोसाइटी की स्थापना ..... में हुई थी।
2. 'द प्रिंस' के रचनाकार ..... हैं।

6.7 पुनर्जागरण का महत्व एवं परिणाम

हम समग्र रूप से पुनर्जागरण का विश्लेषण करे तो कुछ बातें स्पष्ट हो जाती है। पुनर्जागरण ने प्राचीन प्रेरणाओं पर आधारित एक ऐसा प्रयोग आंरभ किया जो उस युग की परिस्थितियों से सांमजस्य कर सका। साथ ही नितांत मौलिक एवं प्रगतिशील दिशाएं भी तलाश सका।

6.7.1 भौतिकवादी दृष्टिकोण का विकास

पुनर्जागरण ने मनुष्या को उसकी महत्ता से अवगत कराया। यह कहा जा सकता है कि पुनर्जागरण मूलतः मध्यकाल के ईश्वर केन्द्रित सभ्यता से आधुनिक युग के मानव केन्द्रित सभ्यता की ओर एक परिवर्तन था। पुनर्जागरण चेतना से उत्पन्न व्यक्तिवाद ने यूरोपीय मानस को आंदोलित कर दिया। आर्थिक क्षेत्र में व्यक्तिवाद पूंजीवादी चेतना से जुड़ गया। पुनर्जागरण के अधिकांश विद्वानों ने मानव संसार को अधिक सुंदर एवं समृद्ध बनाने की शिक्षा दी जिससे भौतिकवादी दृष्टिकोण का विकास हुआ।

6.7.2 बुद्धिजीवी दृष्टिकोण का विकास

पुनर्जागरण ने तर्क और वितर्क को प्रतिष्ठित किया तथा पुरानी धार्मिक विचारधारा और पंरपराओ को झकझोर कर उन पर कठोर आघात किया। विचार, स्वतंत्रता को पुनर्जागरण का आधार स्तंभ माना जाता है। पुनर्जागरण काल की नई खोजों, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तार्किक विवेचना ने धर्मग्रथों के अनेकों सिद्धांतों और विश्वासों को हिला दिया। उसने वैज्ञानिक और बौद्धिक आंदोलन का मार्ग प्रशस्त किया।

6.7.3 पुरातन के प्रति मोह जगाना

पुनर्जागरण से पूर्व लोगों को पुरातन ज्ञान में कोई अभिरूचि नहीं थी। इटलीवासी अपने प्राचीन स्मारकों को विस्मृत कर चुके थे, परंतु इस आंदोलन ने उनका ध्यान इस ओर आकृष्ट किया।

6.7.4 अभिव्यक्ति की प्रतिष्ठा

पुनर्जागरण ने अभिव्यक्ति की भावना को प्रतिष्ठित किया, इसका अर्थ है कि अब केवल लोगों को निःस्तब्ध भाव से बातों को सुनते जाना ही संतुष्टि प्रदान कर सकता था।

6.7.5 राज्य एवं धर्म का पृथ्क्करण एवं राष्ट्रीयता का विकास

पुनर्जागरण काल में चर्च और राज्य के बीच पृथक्कता की कल्पना की गई। पुनर्जागरण के बाद ना केवल कैथोलिक चर्च का एकाधिकार टूटा और सरल संप्रदायों का जन्म हुआ बल्कि निकट भविष्य में राज्य और धर्म के बीच एक स्पष्ट विभाजक रेखा अंकित हुई। धर्म और पोप की सत्ता के प्रभाव में कमी आने से लोगों में राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ। पुनर्जागरण चेतना ने बहुत सी आधुनिक संस्थाओं के आधार निर्मित किए जिनमें एक है- आधुनिक राष्ट्रीय-राज्य।

6.8 निष्कर्ष

हम कह सकते है कि पुनर्जागरण ने यूरोप के लोगों में एक नई ज्ञानपिपासा पैदा की, तर्क को प्रतिष्ठित किया। मानवतावाद को विश्व के पटल पर स्थापित किया। विचार और स्वतंत्रता के मूल्यों को आगे बढ़ाया और भौतिकवाद का मार्ग प्रशस्त किया। पुनर्जागरणकालीन विचारधारा ने भविष्य में धर्मसुधार आंदोलन, वैज्ञानिक क्रांति, बौद्धिक क्रांति, राष्ट्रीय-राज्यों के उदय और पूंजीवाद तथा मध्यवर्ग के उदय का मार्ग प्रशस्त किया।

6.9 शब्दावली

गोथिक स्थापत्य - जिसमें कमानीदार छतें, नुकीले मेहराव और टेकें मुख्य विशेषताएँ हो।

व्यक्तिवाद - अपनी उपलब्धियों से आत्मतुष्टि और गौरव की अनुभूति।

धर्मनिरपेक्षता - धार्मिक कार्यो की अपेक्षा संसारिक कार्यो में रुचि लेना तथा धर्म के क्षेत्र में सभी मतों का समान आदर।

पोपशाही - मध्यकालीन यूरोप में जीवन के प्रत्येक क्षेत्रों में पोप की सर्वोच्चता।

मानवतावाद - मनुष्य की सर्वोच्चता को स्थापित करना। जीवन के लक्ष्य को मानव की भलाई के लिए काम करना था।

धर्मयुद्ध - 11वीं-12वीं शताब्दी में इसाई धर्म के प्रमुख स्थल येरुशलम को लेकर मुस्लिम और इसाई के बीच युद्ध।

6.10 ग्रंथ सूची

पीटर, बर्क. - द यूरोपियन रेनसॉं: सेन्टर एण्ड पेरिफरी, ब्लैकवेल, 1992.

जे0 आर0 हैल - रेनासॉं यूरोप, फौनटाना प्रेस, 1968.

लाल बहादुर वर्मा - यूरोप का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 1998.

जे0 एच0 पलम्ब - द पेंग्विन बुक ऑफ रेनासॉं, इंग्लैंड, 1964.

पार्थ सारथी गुप्ता (सं) - आधुनिक पश्चिम का यूरोप, नई दिल्ली, 1983.

जी0 एन0 क्लार्क - अर्ली मॉडर्न यूरोप, ऑक्सफोर्ड, 1976.

देवेश विजय (सं) - प्रारंभिक आधुनिक यूरोप मे सास्कृतिक परिवर्तन, दिल्ली 2006.

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. पुनर्जागरण पर एक विस्तृत निबंध लिखिये।

इकाई सात

धर्म सुधार एवं प्रति धर्म सुधार

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 धर्म सुधार का अर्थ, उद्देश्य एवं स्वरूप

7.4 धर्म सुधार आन्दोलन के कारण

- 7.4.1 वैज्ञानिक प्रगति
- 7.4.2 शिक्षा का प्रसार
- 7.4.3 आर्थिक परिवर्तन
- 7.4.4 चर्च का सांगठनिक दोष
- 7.4.5 राजनीतिक कारण
- 7.4.6 तात्कालिक कारण

7.5 मार्टिन लूथर

- 7.6.1 लूथर के विचार एवं उनका प्रसार

7.7 प्रोटेस्टेन्ट चर्च का जन्म

- 7.7.1 काल्विन वाद

7.8 लूथर और काल्विन

7.9 ऐग्लिंकन चर्च

7.10 धर्म सुधार आन्दोलन के परिणाम

- 7.10.1 प्रतिवादी धर्म सुधार आन्दोलन
- 7.10.2 ईसाई एकता का अन्त
- 7.10.3 असहिष्णुता का विकास
- 7.10.4 व्यक्ति की महत्ता का विकास
- 7.10.5 शासकों की शक्ति का विकास
- 7.10.6 राष्ट्रीय भाषा एवं साहित्य का प्रचार-प्रसार

7.11 प्रति धर्म सुधार (Counter-Reformation)

7.12 प्रमुख पहलु

7.13 नए धार्मिक संप्रदायों का उदय: जेसुइट (Jesuits)

7.14 सेंसरशिप, अनुशासन और कला: प्रति धर्मसुधार का सांस्कृतिक और वैचारिक आयाम

7.15 प्रति धर्मसुधार का प्रभाव: धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक आयामों में परिवर्तन

7.16 अन्य धार्मिक युद्ध

7.17- सारांश

7.18 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.19 शब्दावली

7.20 सन्दर्भ ग्रन्थ

7.21 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

पुनर्जागरण से पहले यूरोपीय समाज में धर्म का, मनुष्य के जीवन पर अत्यधिक प्रभाव था तथा पश्चिमी एवं मध्य यूरोप में कैथोलिक ईसाई चर्च का पूर्ण वर्चस्व था। व्यक्ति जन्म लेने के साथ ही चर्च की शरण पाता और मृत्यु पर्यन्त चर्च से नियंत्रित रहता था। ईसाई जगत में इस धर्म के साम्राज्य के संगठनात्मक क्षेत्र का अध्यक्ष रोम का विशप होता था, जिसे पोप के नाम से पुकारा जाता था। पोप का निर्वाचन विशेष पादरियों द्वारा किया जाता था जिन्हें कर्डिनल कहा जाता था, पोप कैथोलिक चर्च का सर्वोच्च नियम निर्माता, न्यायाधीश तथा वित्त व्यवस्था का सर्वोच्च प्रशासक होता था लेकिन धीरे-धीरे ईसाई जगत की एकता, चर्च सार्वभौमिकता तथा पोप की सर्वोच्चता अपनी अभ्यान्तरिक कमजोरियों के कारण धीरे-धीरे गौरवहीन होने लगा था। चर्च के पदाधिकारियों का जीवन अनैतिक एवं विलासिता पूर्ण था। धर्म सुधार आन्दोलन को गति प्रदान करने में एक कारण और था जिसे हम राष्ट्रीय चेतना कह सकते हैं। बढ़ती राष्ट्रीय चेतना, नवीन बुद्धिवादिता एवं ज्ञान की जिज्ञासा ने धर्म में व्याप्त बुराईयों एवं भ्रष्टता के प्रति असन्तोष जाग्रत किया जिससे यूरोप में धर्म सुधार आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। वस्तुतः धर्म सुधार आन्दोलन मध्य युग के पतझड़ के समय आरम्भ हुआ। इस इकाई में सम्पूर्ण यूरोप में ईसाई धर्म की एकता एवं कैथोलिक चर्च के वर्चस्व की क्षीणता तथा नये विचारों एवं आदर्शों को आत्मसात करते हुए कैथोलिक चर्च के भीतर व्याप्त भ्रष्टता तथा पादरियों के नैतिक पतन के प्रति यूरोप के लोगों द्वारा प्रतिकार तथा एक सच्चे धर्म को स्थापित करने के प्रयत्न का विश्लेषण करेंगे।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम यूरोप में हुए धर्म सुधार आन्दोलन में आये इसके कारण एवं परिणामों के विषय में चर्चा करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:-

(1) धर्म सुधार के अर्थ स्वरूप एवं उद्देश्य को समझ सकेंगे।

(2) विभिन्न धर्म सुधारकों से परिचित एवं उनके कार्यों को जान पायेंगे।

(3) धर्म सुधार के कारण एवं परिणामों से परिचित हो पायेंगे।

7.3 धर्म सुधार का अर्थ, उद्देश्य एवं स्वरूप

सोलहवीं शताब्दी में यूरोप में व्याप्त आन्तरिक एवं वाह्य उथल-पुथल के कारण ईसाई संगठन से एक बड़ा परिवर्तन हुआ जिसमें परिणाम स्वरूप ईसाई धर्मावलम्बी दो भागों में विभाजित हो गये। कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट। कैथोलिक धर्म परम्परागत ईसाई धर्म का सुधरा रूप था जिसमें पोप का कोई स्थान नहीं था। धर्म सुधार की यह लम्बी प्रक्रिया धर्म सुधार आन्दोलन के नाम से विख्यात है।

वारनर एवं मार्टिन के अनुसार - ''धर्म सुधार पोप की संसारिकता व भ्रष्टाचार के विरूद्ध एक नैतिक विद्रोह था।''

होज के अनुसार - ''वस्तुतः सोलहवीं सदी के आरम्भ में विवेक जागृति के कारण बहुसंख्यक ईसाईयों में कैथोलिक चर्च के प्रति कटुता थी तथा वे चर्च की संस्था को पूर्णरूप से सुधारना चाहते थे। इसी सुधार प्रयास के परिणामस्वरूप जो धार्मिक आन्दोलन हुआ तथा ईसाई धर्म के भीतर जो नये-नये धार्मिक सम्प्रदाय बने, उसे समष्टि रूप से धर्म सुधार आन्दोलन कहा जाता है।''

वस्तुतः धर्म सुधार यूरोप के इतिहास में दो महत्वपूर्ण धाराओं की ओर इंगित करता है। पहली घटना थी प्रोटेस्टेन्ट क्रान्ति जिसने ईसाई धर्म में दरार उत्पन्न कर दी और दूसरी थी-अनेक देशों का रोमन कैथोलिक चर्च से नाता तोड़कर राष्ट्रीय आधार पर अलग चर्च की स्थापना करना।

मूलतः धर्म सुधार आन्दोलन में दो प्रमुख उद्देश्य थे, ईसाई लोगों के नैतिक एवं आध्यात्मिक जीवन को पुनः समुन्नत करना तथा रोम के पोप के व्यापक धर्म सम्बन्धी अधिकारों को विनष्ट करना।

प्रो0 हर्नशा ने आन्दोलन के स्वरूप के बारे में लिखा है कि ''प्रोटेस्टेन्ट आन्दोलन जर्मनी की ट्यूटन जाति का रोमनों के आधिपत्य के विरूद्ध, सांसारिक प्राणियों का पादरियों के विरूद्ध, धनी किन्तु मितव्ययी लोगों का सिद्धान्तहीन अपव्ययी लोगों के विरूद्ध, तथा नैतिक स्वतंत्रता के समर्थकों का पोप के अत्याचारों के विरूद्ध विद्रोह था। इन सबसे बढ़कर यह धर्म परायण जाति का एक ऐसी प्रथा के विरूद्ध विद्रोह था जिसे क्षमा पत्रों की बिक्री कहा जाता था।''

7.4 धर्म सुधार आन्दोलन के कारण

पुनर्जागरण से 14वीं एवं 15वीं शताब्दी में यूरोपीय जगत में तमाम परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए। राष्ट्रीय राज्यों का उदय, एक मजबूत मध्य वर्ग का विकास, वैचारिक परिवर्तन एवं सबसे बढ़कर चर्च में व्याप्त बुराईयों के कारण धर्म सुधार आन्दोलन शुरू हुआ। धर्म सुधार आन्दोलन के निम्न कारण हैं:-

7.4.1 वैज्ञानिक प्रगति

पुनर्जागरण से जगत एवं ईश्वर सम्बन्धी प्राचीन धारणाओं एवं मान्यताओं में व्यापक परिवर्तन हुआ जैसे टालमी का यह विचार कि पृथ्वी सौरमण्डल का केन्द्र है, कोपर निकस ने यह सिद्ध कर दिया कि पृथ्वी नहीं सूर्य ही

केन्द्र है तथा मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है। यूरोप में इस वैज्ञानिक प्रगति ने चर्च की मान्यताओं को धूमिल किया।

7.4.2 शिक्षा का प्रसार

15वीं शताब्दी के पूर्व तक यूरोपीय शिक्षा जगत का केन्द्र धार्मिक शिक्षा थी, किन्तु पुनर्जागरण के फलस्वरूप धर्म निरपेक्ष शिक्षा को बढ़ावा मिला जिसने ईसाई धर्म की कुरीतियों का भण्डाफोड़ किया। छापेखाने के आविष्कार ने धार्मिक पुस्तकों को सामान्य जनता तक पहुंचाया, कई यूरोपीय राज्यों में विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई जो कालान्तर में धर्म सुधार आन्दोलन में अधिकांश नेताओं की गतिविधियों के केन्द्र बने।

7.4.3 आर्थिक परिवर्तन

मध्य युगीन योरप का सामाजिक ढाँचा सामन्ती था। जिससे आर्थिक व्यवस्था कृषि प्रधान तथा उद्योग भी श्रेणी व्यवस्था से बँधा था। व्यक्तिगत स्वतंत्रता जैसी कोई चीज नहीं थी, किन्तु शक्तिशाली राज्यों के उदय से सामन्ती ढाँचा टूटने लगा जिससे कृषकों एवं कर्मकारों को स्वतंत्रता मिली, इस व्यवस्था ने व्यापारिक उन्नति से मार्ग प्रशस्त किया। व्यापार एवं उद्योग की उन्नति में एक मजबूत मध्यवर्ग का विकास हुआ। इस धनी वर्ग ने ईसाई एवं चर्च की प्रतिकूल परम्पराओं को नष्ट करने में धर्म सुधार आन्दोलन में सक्रिय सहभागिता की।

7.4.4 चर्च का सांगठनिक दोष

मध्यकालीन यूरोप के चर्च का सम्पूर्ण संगठन पूर्णतः दूषित हो चुका था। चर्च नियंत्रण एवं शोषण का शक्तिशाली साधन बन चुका था, प्रत्येक व्यक्ति को चर्च के अधीन लाने का प्रयास हुआ। चर्च में फैले भ्रष्टाचार का सीधा सम्बन्ध आर्थिक शोषण से था, प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आय का दशमांश चर्च को देना पड़ता था। चर्च के बड़े पदों पर इटली का अधिकार था। लोगों को इस बात का भी शोक था कि उनका धन रोम चला जाता था, भ्रष्टाचार सारे चर्च में व्याप्त था चर्च का कोई भी पद बिक सकता था, सारा तंत्र विलासिता का शिकार था। पादरियों का जीवन पूर्णतः भ्रष्ट था तथा वे विलाशिता में डूबे हुए थे, इसीलिए धर्म में सुधार की आवश्यकता थी।

7.4.5 राजनीतिक कारण

पोप का राजनीतिक प्रभाव एवं राजाओं द्वारा पोप के प्रभाव से स्वतंत्र होने की आकांक्षा भी धर्म सुधार आन्दोलन का प्रमुख कारण था मध्य युग में पोप को व्यापक राजनीतिक अधिकार प्राप्त थे जैसे राज्यों में आन्तरिक एवं वाह्य हस्तक्षेप, राजा को धर्म से बहिष्कृत करने का अधिकार, किसी राज्य की जनता को राजा के विरूद्ध विद्रोह करने का आदेश किन्तु 16वीं शताब्दी में स्थितियाँ बदल चुकी थी। यूरोप के कुछ भागों में राष्ट्रीय राज्यों का उदय हो चुका था। ये राज्य चर्च एवं पोप के हस्तक्षेप को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। अतः उन्होने धर्म सुधार आन्दोलन में सक्रिय सहयोग दिया,. बिना राज्य की सहायता के धर्म सुधार आन्दोलन सफल नहीं हो सकता था।

7.4.6 तात्कालिक कारण

धर्म सुधार आन्दोलन का तात्कालिक कारण था-पोप के अधिकृत पदाधिकारी, टेट जेल द्वारा जर्मनी में पाप मोचन पत्रों अथवा अनुग्रह पत्रों का विक्रय। जब सन् 1517 में टेटजेल नामक पोप का एजेन्ट विटन वर्ग में क्षमा पत्रों को खुलेआम बेंचने लगा तो मार्टिन लूथर ने इसका डटकर विरोध किया तथा धन से मोक्ष की जगह श्रद्धा द्वारा दोष मुक्ति का सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

7.5 मार्टिन लूथर

मार्टिन लूथर का जन्म जर्मनी में 10 नवम्बर, 1483 को एक गरीब किसान परिवार में हुआ था, इसने इरफर्ट विश्वविद्यालय से शिक्षा ग्रहण की। 1511 में इसने रोम की यात्रा की तथा वहाँ पोप के नैतिक पतन को देखकर निराश हुआ। लूथर प्रारम्भ में पोप का विरोधी नहीं था किन्तु क्षमा पत्र बेंचकर धन इकट्ठा करने के पोप की आज्ञा ने लूथर को चर्च का विरोधी बना दिया।

लूथर ने क्षमा पत्र बिक्री के विरोध में 'द नान्टी फाइव थीसिस' में चर्च द्वारा सभी उपायों से धन एकत्र करने की आलोचना की तथा तीन अन्य लघु पुस्तिकाओं में उन मूलभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जिन्हें आगे चलकर प्रोटेस्टेन्ट वाद के नाम से अभिहित किया गया। मार्टिन लूथर ने आन्दोलन को सफल बनाने के लिए अथक प्रयास किया तथा भाषणों, लेखों एवं पत्रिकाओं द्वारा समाज के सभी कार्यों में जागृति उत्पन्न की।

7.6 लूथर के विचार एवं उनका प्रसार

(1) उसने ईसा और बाइबिल की सत्ता स्वीकारने तथा पोप और चर्च की दिव्यता एवं निरंकुशता को नकारने की बात कही।

(2) चर्च द्वारा निर्धारित कर्मो के स्थान पर उसने ईश्वर में आस्था को मुक्ति का साधन बताया।

(3) 'सप्त संस्कारों' में से उसने केवल तीन नामकरण, प्रायश्चित और प्रसाद को ही माना।

(4) उसने चर्च के चमत्कार में अविश्वास व्यक्त किया।

(5) रोम के चर्च के प्रभुत्व का अन्त करके राष्ट्रीय चर्च की शक्ति को सबल बनाया जाना चाहिये।

(6) धर्मग्रन्थ सबके लिए है, सब उसका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

(7) चर्च के भ्रष्टाचार को रोकने के लिए पादरी लोगों को विवाह करके सभ्य नागरिकों की तरह रहने की अनुमति दी जानी चाहिए।

आने वाले वर्षो में मार्टिन लूथर एक स्वतंत्र चर्च स्थापित करने की बात कहता रहा। उसने कैथोलिक चर्च की श्रेणीबद्ध व्यवस्था को अस्वीकार किया। जर्मन भाषा को चर्च के कार्य-व्यवहार की भाषा बनाया। मठवाद का अंत किया। धरती पर ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में पुरोहितों के विशेष पदों को समाप्त किया। देववाद के सिद्धान्तों एवं धर्मग्रन्थों की सत्ता को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी। तीर्थ यात्रा एवं अवशेषों की पूजा को गौण माना। कुल मिलाकर लूथर धर्म को एक सरल रूप देने के प्रयत्न में लगा रहा।

7.7 प्रोटेस्टेन्ट चर्च का जन्म

मार्टिन लूथर के आन्दोलन से उपजे इस धार्मिक विवाद को समाप्त करने के लिए 1526 में स्पीयर में एक सभा हुई किन्तु कोई समाधान नहीं निकला, 1529 में स्पीयर में ही दूसरी सभा हुई इस सभा ने धर्म सुधार आन्दोलन के विरूद्ध कई कठोर निर्देश पारित किये। इस सभा के एक पक्षीय निर्णयों के विरूद्ध लूथर वादी शासकों एवं समर्थकों ने तीव्र विरोध किया। इस विरोध या प्रतिवाद (प्रोटेस्ट) के कारण इस सुधार आन्दोलन का नाम प्रोटेस्टेन्ट पड़ा। औपचारिक तौर पर यह विरोध 19 अप्रैल 1529 को हुआ, अतः ऐतिहासिक दृष्टि से प्रोटेस्टेन्ट शब्द का जन्म इसी तिथि से माना जाता है और अन्ततः 1555 की ऑग्सबर्ग की सन्धि के द्वारा प्रोटेस्टेन्ट धर्म को मान्यता मिली।

लूथर वाद के समान ही यूरोप के दूसरे भागों में धर्म सुधार आन्दोलन हुए। स्ट्जिरलैण्ड में इसका प्रणेता हुलड्रीक ज्विंगली था। ज्विंगली ने वाइबिल की सर्वोच्चता का समर्थन किया तथा कैथोलिक धर्म की रूढ़ियों को अस्वीकृत कर दिया। वह पोप शाही, समूह प्रार्थना, सन्तों की पूजा, उपवास, तीर्थ यात्रा, मठो का अनुशासन, पाप शुद्धि जैसे कैथोलिक सिद्धान्तों का विरोध एवं खण्डन किया। उसने नये रिफार्म्ड चर्च की स्थापना की, कोपल की सन्धि के द्वारा स्विट्जरलैण्ड भी दो भागों कैथोलिक व प्रोटेस्टेन्ट में बंट गया।

7.7.1 काल्विन वाद

ज्विन्गली की विचार धारा को जान काल्विन ने व्यवस्थित करके सशक्त रूप से न केवल स्विट्जरलैण्ड बल्कि बाहर भी स्थापित किया। काल्विन को दृढ़ विश्वास था कि उसे अपने विचार अकाट्य तर्कों के आधार पर रखने होंगे, तभी वे कैथोलिक चर्च का विरोध कर सकेंगे। यहां यह सारणीय है कि लूथरवाद में पोप और संगठन के विरोध के अतिरिक्त धर्म के कर्मकाण्डों के विषय में उल्लेखनीय परिवर्तन का प्रस्ताव नहीं था, परन्तु काल्विन धर्म शास्त्र के बाहर किसी भी कर्मकाण्ड को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं था। काल्विन वाद विशेष रूप से मध्य वर्ग में काफी लोकप्रिय हुआ यह स्ट्जिरलैण्ड एवं फ्रांस में धीरे-धीरे फैलने लगा, जर्मनी में भी काल्विन वाद का प्रसार एवं अन्त में मान्यता मिली। उत्तरी नीदरलैण्ड एवं स्काटलैण्ड में इस विचार धारा का तेजी से प्रसार हुआ। इस तरह सत्रहवीं शताब्दी तक आते-आते अपने कट्टर अनुशासन के कारण काल्विन वाद सारे यूरोप में फैल गया जबकि लूथरवाद मुख्यतया जर्मनी का राष्ट्रीय धर्म है।

7.8 लूथर और काल्विन

दोनों ने करीब-करीब एक ही समय कैथोलिक चर्च का विरोध कर पृथक् सम्प्रदाय खड़े किये। दोनों ने ईसा मसीह और बाइबिल को पूर्णतः स्वीकार किया। लेकिन पोप की सत्ता को नकारा। दोनो ने विशेषकर मध्यमवर्ग को प्रभावित किया। दोनों ने आडम्बर का विरोध किया लेकिन उनके सुधार एवं इसके तरीके भिन्न-भिन्न थे - (1)

लूथर चर्च को बिना पूरी तरह नकारे जर्मनी के राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुए थोड़े से परिवर्तन करके संतुष्ट रहा, जबकि काल्विन अधिक परिवर्तन का पक्षधर रहा।

(2) लूथर चमत्कारों को प्रतीक के रूप में स्वीकार करने को तैयार था, किन्तु काल्विन ने चमत्कारों को बिल्कुल नकार दिया।

(3) लूथर आस्था को मुक्ति का आधार मानता था। काल्विन के लिए कर्म या आस्था से कोई फर्क

नहीं पड़ता था, क्योंकि वह मानता था कि व्यक्ति की नियति पहले से ही निश्चित होती हैं

(4) लूथर ने अपने अनुयायियों के चरित्र एवं आचार-व्यवहार पर विशेष ध्यान नहीं दिया लेकिन कालिवन ने चारित्रिक अनुशासन को अत्यधिक महत्व दिया।

7.9 ऐग्लिंकन चर्च

जर्मनी और स्विट्जरलैण्ड की तुलना में इग्लैण्ड में धर्म सुधार आन्दोलन के विकास में चर्च और संगठन के धार्मिक दोषों के स्थान पर राजनीतिक महत्वाकांक्षा ज्यादा बलवती थी। ट्यूटर वंश के शासक हेनरी अष्टम (1509-47) अपनी प्रमुख परिचारिका एवं बोलिन से प्यार करता था तथा उससे विवाह करना चाहता था किन्तु यह तभी सम्भव हुआ जब उसका अपनी पत्नी कैथरिन से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता, लेकिन पोप इस विवाह विच्छेद के लिए तैयार नहीं था, फलतः हेनरी ने 1534 में पोप से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और इंग्लैण्ड के शासक को इंग्लैण्ड के चर्च का सर्वोच्च अधिकारी घोषित किया। इस प्रकार एक झटके में यह सम्बन्ध टूट गया।

हेनरी की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी एडवर्ड अष्टम् ने इस विचारधारा को आगे बढ़ाया तथा एक सामान्य प्रार्थना पुस्तक में प्रकाशित कर 42 सिद्धान्तों की घोषणा की जिसमें प्रोटेस्टेन्ट विचारधारा को स्थापित किया गया। एलिजाबेथ के समय में आंग्ल धर्म का अन्तिम रूप सुनिश्चित हुआ। 42 सिद्धान्तों को थोड़ा संशोधित कर 39 सिद्धान्तों के नाम से लागू किया। इस प्रकार सोलहवीं शताब्दी के अन्त तक इग्लैण्ड में एक ऐसे राष्ट्रीय चर्च की स्थापना हुई जो कर्मकाण्ड में रोमन और धर्मशास्त्रीय संदर्भ में काल्विन वादी था।

मार्टिन लूथर ज्विंगली, काल्विन एवं हेनरी अष्टम् के प्रयत्नों से यूरोप में अधिकांश देशों (स्पेन एवं फ्रांस को छोड़कर) में प्रोटेस्टेन्ट धर्म जड़ पकड़ने लगा। इंग्लैण्ड, नार्वे, स्वीडन तथा उत्तरी जर्मनी में प्रोटेस्टेन्ट धर्म कायम हुआ तथा स्वतंत्र राष्ट्रीय चर्च की स्थापना हुई।

7.10 धर्म सुधार आन्दोलन के परिणाम

7.10.1 प्रतिवादी धर्म सुधार आन्दोलन

प्रोटेस्टेन्ट आन्दोलन एवं इसकी सफलता ने कैथोलिकों को भी संगठित किया तथा अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए कैथोलिकों ने भी धर्म सुधार आन्दोलन का सूत्रपात किया जिसे प्रतिवादी धर्म सुधार आन्दोलन बढ़ते ही कैथोलिकों ने ट्रेंट कौंसिल में एक सभा कर चर्च में सुधार हेतु कई निर्णय लिए जिससे कैथोलिक चर्च में काफी सुधार हुआ। इंग्लोशियस त्नोयोका ने जैसइट संघ के माध्यम से कठोर अनुशासन के द्वारा विदेशों एवं मुस्लिम देशों में भी ईसाई धर्म को फैलाया।

7.10.2 ईसाई एकता का अन्त

धर्म सुधार आन्दोलन के द्वारा ईसाई जगत में दरार पड़ गयी, अब यूरोप में ईसाई धर्म कई स्वतंत्र भागों में बँट गया।

7.10.3 असहिष्णुता का विकास

धर्म सुधार आन्दोलन ने कैथोलिक एवं प्रोटेस्टेन्टों के बीच पारस्परिक वैमनस्य उत्पन्न किया। इस घृणा एवं शत्रुता ने एक दूसरे का कत्लेआम किया तथा इस धार्मिक असहिष्णुता ने एक लम्बे समय तक के लिए यूरोप की शान्ति को भंग रखा।

7.10.4 व्यक्ति की महत्ता का विकास

व्यक्ति पर धर्म का प्रभाव कम होने से व्यक्ति को महत्व प्राप्त हुआ, अब उसके चिन्तन के आयाम चारों दिशाओं में अपने पैर पसार सकते थे।

7.10.5 शासकों की शक्ति का विकास

इस आन्दोलन में परिणाम स्वरूप शासकों की शक्ति बढ़ी तथा धर्म विषयक मसले पर उन्हें स्वतंत्रता मिली। धर्म सुधार आन्दोलन से व्यापार एवं वाणिज्य को प्रोत्साहन मिला। चर्च सूद एवं मुनफे का विरोधी था, अतः मध्य वर्ग ने इस आन्दोलन को प्रोत्साहन दिया। नवीन धर्म सम्प्रदायों ने व्यय पर उदार दृष्टिकोण अपनाया तथा मितव्ययता तथा कठोर श्रम पर जोर दिया। जोकि व्यवसाय में वृद्धि एवं पूँजीवाद के विकास के लिए आवश्यक थे।

7.10.6 राष्ट्रीय भाषा एवं साहित्य का प्रचार-प्रसार

धर्म सुधार आन्दोलन का एक बड़ा परिणाम राष्ट्रीय भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार के रूप में हुआ। लोगों को मातृभाषा के प्रति श्रद्धा पनपी जिससे साहित्य के क्षेत्र में मातृभाषा के प्रयोग पर जोर दिया जाने लगा।

7.11 प्रति धर्म सुधार (Counter-Reformation)

प्रतिधर्मसुधार (Counter-Reformation) — जिसे कैथोलिकपुनरुत्थान (Catholic Reformation) भी कहा जाता है — 16वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में रोमन कैथोलिक चर्च द्वारा शुरू किया गया एक संगठित धार्मिक आंदोलन था, जिसका मुख्य उद्देश्य प्रोटेस्टेंट सुधार (Protestant Reformation) के प्रभाव को रोकना और चर्च के भीतर व्याप्त भ्रष्टाचार और कमजोरियों को सुधारना था।

प्रति धर्म सुधार (Counter-Reformation) का मूल उद्देश्य प्रोटेस्टेंट सुधार आंदोलन के प्रभाव को सीमित करना और रोमन कैथोलिक चर्च की शक्ति, प्रतिष्ठा तथा आध्यात्मिक अनुशासन को पुनः सुदृढ़ करना था। सोलहवीं शताब्दी में मार्टिन लूथर, कैल्विन और अन्य प्रोटेस्टेंट विचारकों के प्रभाव से यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों में चर्च की पारंपरिक शिक्षाओं और संरचनाओं को चुनौती मिली। इस चुनौती का उत्तर देने हेतु कैथोलिक चर्च ने एक आत्म-सुधारात्मक प्रक्रिया प्रारंभ की, जिसका पहला उद्देश्य था — प्रोटेस्टेंटप्रभावकोरोकना और अपने अनुयायियों को पुनः चर्च की परंपराओं और सिद्धांतों से जोड़ना।

दूसरा महत्वपूर्ण उद्देश्य था चर्चकीप्रतिष्ठाऔरअनुशासनकीपुनःस्थापना। लंबे समय से चर्च के भीतर फैली भ्रष्टाचार की प्रवृत्तियाँ, जैसे कि पापमोचक पत्रों (Indulgences) की बिक्री, पदों की खरीदी-बिक्री (Simony) और पादरियों की अशिक्षा — चर्च की सामाजिक व नैतिक साख को कमजोर कर रही थीं। प्रति धर्म सुधार के माध्यम से इन संस्थागत समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया गया।साथ ही, यह सुधार धार्मिक शिक्षा और नैतिक अनुशासन के सुदृढ़ीकरण पर भी केंद्रित था। ट्रेंट की परिषद (Council of Trent) में पादरियों के लिए व्यवस्थित प्रशिक्षण की

व्यवस्था की गई, धर्मशास्त्र को सुव्यवस्थित किया गया और धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए शिक्षण संस्थानों की स्थापना को बढ़ावा दिया गया।

अंततः, प्रति धर्म सुधार का लक्ष्य था — विश्वासियोंकोएकसशक्तआध्यात्मिकमार्गदर्शन प्रदान करना, जिससे वे चर्च से जुड़े रहें और प्रोटेस्टेंट आलोचनाओं के प्रभाव से बचे रहें। इस हेतु कला, संगीत, वास्तुकला तथा उपदेश के माध्यम से धार्मिक अनुभूति को संवर्धित किया गया। इस प्रकार, प्रति धर्म सुधार एक समग्र प्रयास था जो न केवल धार्मिक संस्थान की रक्षा का माध्यम था, बल्कि आध्यात्मिक और नैतिक पुनर्निर्माण का भी अग्रदूत सिद्ध हुआ।

7.12 प्रमुख पहलु

ट्रेंटपरिषद (Council of Trent), 1545–1563: प्रतिधर्मसुधारकीकेंद्रीयपहल: ट्रेंटपरिषद प्रति धर्म सुधार (Counter-Reformation) की सबसे महत्वपूर्ण और निर्णायक पहल मानी जाती है। यह परिषद 1545 से 1563 तक तीन चरणों में आयोजित की गई और इसका उद्देश्य कैथोलिक चर्च की गिरती प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करना, प्रोटेस्टेंट सुधार की वैचारिक चुनौतियों का जवाब देना, और चर्च के भीतर सुधारों को क्रियान्वित करना था।

1. कैथोलिक धर्मशास्त्र की पुनर्परिभाषा

परिषद ने सबसे पहले यह स्पष्ट किया कि प्रोटेस्टेंट आलोचना के बावजूद कैथोलिक सिद्धांतों को बदला नहीं जाएगा, बल्कि उन्हें और अधिक व्यवस्थित व परिभाषित किया जाएगा। इस पुनर्परिभाषा के अंतर्गत यह घोषित किया गया कि:

- पवित्रग्रंथ (Bible) और चर्च की परंपरा (Tradition), दोनों को समान रूप से सत्य और अनुकरणीय माना जाएगा।
- बाइबिल की व्याख्या केवल चर्च के अधिकारीगण (pope और ecumenical councils) ही कर सकते हैं; सामान्य जनता या व्यक्तिगत व्याख्या को खारिज किया गया।

इसका सीधा विरोध प्रोटेस्टेंट धर्म सुधारकों, विशेषकर मार्टिन लूथर की "Sola Scriptura" (केवल बाइबिल) की अवधारणा से था।

2. भ्रष्टाचार और नैतिक सुधार

Council of Trent ने कैथोलिक चर्च की आंतरिक गिरावट और नैतिक विचलन पर भी गंभीर मंथन किया। विशेष रूप से निम्नलिखित बिंदुओं पर सुधार लागू किए गए:

- Indulgences (पापमोचकपत्रों) की बिक्री पर कड़े नियंत्रण लगाए गए। अब इन्हें धन उगाही के साधन के रूप में नहीं, बल्कि पश्चाताप की आध्यात्मिक प्रक्रिया के हिस्से के रूप में ही मान्यता दी गई।
- Simony (धार्मिक पदों की खरीदी-बिक्री) को प्रतिबंधित किया गया।
- पादरियोंकेआचरण को अनुशासित करने के लिए विशिष्ट निर्देश जारी किए गए — जैसे कि ब्रह्मचर्य, शिक्षा, और आचरण के उच्च मानदंड।

3. शिक्षा और संस्थागत सुदृढ़ीकरण

Council ने यह भी सुनिश्चित किया कि प्रत्येक डायोसीज़ (diocese) में पादरियोंकेप्रशिक्षणकेलिएसेमिनरी (Seminaries) स्थापित किए जाएँ। इसका उद्देश्य यह था कि जो भी व्यक्ति चर्च की सेवा में हो, वह धार्मिक शिक्षाओं और नैतिकता में पूर्णतः प्रशिक्षित हो।

4. ईश-पूजाऔरसंस्कारोंकीरक्षा

Council ने सात पारंपरिक कैथोलिक संस्कारों (Sacraments) को अक्षुण्ण रूप से स्वीकार किया, जिनमें पवित्र भोज (Eucharist), बपतिस्मा (Baptism), और पश्चाताप (Penance) शामिल हैं — यह प्रोटेस्टेंट विचारधारा के विरुद्ध एक स्पष्ट वैचारिक रेखा थी, जो केवल कुछ संस्कारों को मान्यता देती थी।

5. आध्यात्मिकचेतनाऔरअनुशासन

परिषद ने केवल सिद्धांतों को नहीं, बल्कि विश्वासियों के जीवन को भी प्रभावित करने वाले निर्णय लिए। धार्मिक अनुशासन, उपदेश शैली, और चर्च की कार्यप्रणाली को अधिक संगठित और अनुशासित बनाया गया। इसने चर्च की नैतिक शक्ति को पुनः स्थापित किया।

ट्रेंट परिषद ने रोमन कैथोलिक चर्च को न केवल प्रोटेस्टेंट चुनौती से रक्षा की दीवार प्रदान की, बल्कि उसे आध्यात्मिक, नैतिक और वैचारिक रूप से फिर से सशक्त किया। यह परिषद कैथोलिक परंपराओं की दृढ़ता, शिक्षा की पुनर्रचना, और अनुशासन की स्थापना की प्रतीक बन गई। इसके प्रभाव कई शताब्दियों तक कैथोलिक चर्च की संरचना और नीति-निर्धारण में विद्यमान रहे। इस प्रकार ट्रेंट परिषद प्रति धर्म सुधार की आत्मा और संगठनात्मक रीढ़ साबित हुई।

7.13 नए धार्मिक संप्रदायों का उदय: जेसुइट (Jesuits)

प्रति धर्म सुधार (Counter-Reformation) की प्रक्रिया में Society of Jesus, जिसे सामान्यतः Jesuits (जीसूट) कहा जाता है, की स्थापना और भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण थी। यह नया धार्मिक संप्रदाय 1534 में इग्नेशियसलोयोला (Ignatius of Loyola) द्वारा स्थापित किया गया और 1540 में पोप पॉल तृतीय (Pope Paul III) द्वारा अनुमोदित हुआ। यह संगठन तत्कालीन कैथोलिक चर्च के पुनरुत्थान का सबसे प्रभावशाली माध्यम बन गया।

Jesuits एक सख़्तअनुशासन, पूर्णसमर्पणऔरशिक्षापरकेंद्रितमिशनरीसंगठन था। इसकी सदस्यता के लिए कठोर प्रशिक्षण और आध्यात्मिक अनुशासन आवश्यक था।इस संस्था के तीन प्रमुख उद्देश्य थे: शिक्षाकाप्रसार: कैथोलिक धर्मशास्त्र और नैतिकता की रक्षा और प्रचार; प्रोटेस्टेंटसुधारकाविरोध: तर्क, शिक्षा और प्रचार द्वारा प्रोटेस्टेंट विचारधारा का मुकाबला; मिशनरीगतिविधियाँ: यूरोप से बाहर एशिया, अफ्रीका और अमेरिका में ईसाई धर्म का विस्तार।इग्नेशियस लोयोला की प्रसिद्ध कृति Spiritual Exercises इस संस्था का आत्मिक आधार बनी, जो अनुशासन, ध्यान और प्रभु सेवा की भावना को मजबूत करती थी।

Jesuits ने शिक्षा को अपना सबसे प्रभावी हथियार बनाया। उन्होंने पूरे यूरोप में स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालयों की श्रृंखला स्थापित की, जिनमें न केवल धार्मिक शिक्षा, बल्कि दर्शन, गणित, विज्ञान और भाषाओं का भी उच्च स्तर का शिक्षण होता था। उनका उद्देश्य केवल धार्मिक प्रचार नहीं, बल्कि एकबौद्धिकऔरनैतिकनेतृत्वतैयारकरना था।रोम, पेरिस, म्यूनिख, वियना, प्राग जैसे शहरों में Jesuit कॉलेज स्थापित हुए। इन संस्थानों की शिक्षा-प्रणाली इतनी प्रभावशाली थी कि कई प्रोटेस्टेंट परिवारों ने भी अपने बच्चों को इन विद्यालयों में भेजा।

Jesuits ने कैथोलिक धर्मशास्त्र और वैचारिक स्पष्टता को मजबूती से प्रस्तुत करते हुए प्रोटेस्टेंट सुधारकों के तर्कों का गहन बौद्धिक खंडन किया। उन्होंने पंथ विरोध को केवल नकारने के बजाय तार्किक, नैतिक और आध्यात्मिक तर्कों से काटा। इस प्रयास से कैथोलिक चर्च ने प्रोटेस्टेंटों के बीच फैलते हुए प्रभाव को कई क्षेत्रों में सीमित किया। Jesuits का कार्यक्षेत्र यूरोप तक सीमित नहीं रहा। वे जल्दी ही विश्वव्यापी मिशन पर निकल पड़े। उनका उद्देश्य था — एशिया, अफ्रीका और अमेरिका जैसे क्षेत्रों में ईसाई धर्म का प्रचार और स्थानीय संस्कृतियों से संवाद। प्रसिद्ध मिशनरियों में शामिल हैं:

- Francis Xavier — भारत, जापान और मलक्का क्षेत्र में कार्यरत।
- Matteo Ricci — चीन में कैथोलिक धर्म का प्रचार करते हुए स्थानीय परंपराओं के साथ समन्वय।
- Roberto de Nobili — दक्षिण भारत में हिंदू परंपराओं का सम्मान करते हुए मिशनरी कार्य।

इन मिशनों की विशेषता यह थी कि Jesuits ने स्थानीयभाषाएँ, रीति-रिवाजऔरदर्शन को समझने की कोशिश की, जिससे उनके प्रयास अधिक प्रभावशाली हुए। Jesuits ने राजदरबारों में सलाहकार, शिक्षक, और कभी-कभी राजनयिक के रूप में भी कार्य किया। यूरोप के कई शासकों ने उन्हें अपने बच्चों के गुरु, सलाहकार और दूत के रूप में नियुक्त किया। इससे उन्हें राजनैतिक निर्णयों और धार्मिक नीतियों पर प्रभाव डालने का भी अवसर मिला।Jesuits न केवल प्रति धर्म सुधार का शक्तिशाली धार्मिक संगठन थे, बल्कि उन्होंने शिक्षा, वैचारिक संघर्ष और वैश्विक मिशनरी प्रयासों के माध्यम से कैथोलिकपुनरुत्थानकोसशक्तआधार प्रदान किया। उनका प्रभाव इतना व्यापक था कि 16वीं और 17वीं शताब्दी का कोई भी धार्मिक, बौद्धिक या सांस्कृतिक विमर्श Jesuits के बिना अधूरा रहता।Jesuits ने यूरोप और विश्व को यह दिखाया कि शिक्षा, अनुशासन और वैचारिक स्पष्टता के साथ किसी भी धार्मिक आंदोलन को गहराई और स्थायित्व प्रदान किया जा सकता है।

7.14 सेंसरशिप, अनुशासन और कला: प्रति धर्मसुधार का सांस्कृतिक और वैचारिक आयाम

प्रति धर्म सुधार (Counter-Reformation) केवल धार्मिक और संस्थागत पुनर्गठन की प्रक्रिया नहीं थी, बल्कि यह एक व्यापक सांस्कृतिकऔरवैचारिकप्रतिक्रिया भी थी, जिसका उद्देश्य प्रोटेस्टेंट आंदोलन की बढ़ती वैचारिक और जन-संवैधानिक शक्ति को चुनौती देना था। इस प्रयास में सेंसरशिपऔरअनुशासन के साथ-साथ कलाऔरस्थापत्य को भी प्रभावशाली औजारों के रूप में प्रयुक्त किया गया। प्रोटेस्टेंट सुधारकों द्वारा चर्च की आलोचना और स्वतंत्र व्याख्याओं ने यूरोपीय समाज में विचारों की एक नई क्रांति को जन्म दिया। इसके उत्तर में कैथोलिक चर्च ने विचारधारा

के क्षेत्र में एक सुव्यवस्थित सेंसरशिप तंत्र स्थापित किया, जैसे: Index Librorum Prohibitorum (प्रतिबंधितपुस्तकोंकीसूची)

1540 के दशक में रोमन कैथोलिक चर्च द्वारा प्रकाशित की गई यह सूची उन पुस्तकों की सूची थी जिन्हें "चर्च-विरोधी", "अनैतिक" या "भ्रष्ट विचारों" वाला माना गया। इसमें प्रोटेस्टेंट विचारकों जैसे कि मार्टिन लूथर, जॉन कैल्विन, हुल्द्रिख़ ज़्विंगली आदि की रचनाएँ शामिल थीं। यह सूची पाठकों को चेतावनी देती थी कि वे केवल वैध और आधिकारिक रूप से स्वीकृत धार्मिक साहित्य का ही अध्ययन करें। कैथोलिक विश्वविद्यालयों और पुस्तकालयों में कठोर समीक्षा प्रणाली लागू की गई। "Controlling the written word was essential to defending the soul from heresy."— Robert Bireley, The Refashioning of Catholicism (1999) पादरियों के लिए प्रशिक्षण और अनुशासन, Council of Trent के निर्देशों के तहत चर्च ने निर्णय लिया कि: हर डायोसीज़ (diocese) में Seminaries (धार्मिक प्रशिक्षण संस्थान) स्थापित किए जाएँ; पादरियों को धर्मशास्त्र, नैतिकता और अनुशासन का औपचारिक प्रशिक्षण दिया जाए।; पादरी वर्ग से अपेक्षा की गई कि वे ब्रह्मचर्य, सादगी, और आत्मिक सेवा का पालन करें। इस प्रकार, चर्च न केवल वैचारिक दृष्टिकोण से बल्कि नैतिक आचरण के स्तर पर भी अपने धार्मिक अधिकारियों को सुदृढ़ और अनुशासित बनाना चाहता था।प्रति धर्म सुधार के सांस्कृतिक अभियान का एक अत्यंत शक्तिशाली पक्ष था — धार्मिककला और वास्तुकला का पुनः प्रयोग। जहाँ प्रोटेस्टेंट परंपरा ने धार्मिक चित्रण, मूर्तिकला और चर्च की भव्यता का विरोध किया, वहीं कैथोलिक चर्च ने इसे ईश्वर की महिमा और धर्म की अनुभूति का माध्यम माना। 16वीं और 17वीं शताब्दी में विकसित बारोक शैली ने दर्शकों में भक्ति, विस्मय और आध्यात्मिक अनुभव जगाने की कोशिश की। यह शैली निम्न विशेषताओं से युक्त थी:

- भावनात्मक तीव्रता: चेहरे के हाव-भाव, शरीर की गतिशीलता, प्रकाश-छाया का नाटकीय प्रयोग।
- धार्मिक विषयवस्तु: संतों की शहादत, मरियम की महिमा, यीशु का बलिदान आदि।
- भव्यता और वैभव: चर्च की छतों, वेदियों, और दीवारों पर जटिल चित्रांकन।

जियान लोरेन्ज़ो बेर्नीनी (Gian Lorenzo Bernini) जैसे कलाकारों ने रोम के सेंट पीटर्स चर्च में अद्भुत बारोक शिल्प प्रस्तुत किया। चर्चों में प्रयोग की गई भित्तिचित्रों और मूर्तियों का उद्देश्य दर्शककेभीतरआध्यात्मिकभाव-जागरण उत्पन्न करना था। "Art was not just decoration; it was a catechism for the illiterate, a vision of the invisible."— Evelyn Welch, Art and Authority in Renaissance Italy (1995)

चर्च ने यह समझा कि शब्दऔरउपदेशसेअधिकप्रभावशालीमाध्यमदृश्यकलाऔरअनुशासितजीवनशैली हो सकती है। एक ओर जहाँ विचारों और पुस्तकों को प्रतिबंधित कर वैचारिक एकरूपता लाई गई, वहीं दूसरी ओर भव्य कलाकृतियाँ और चर्चों की संरचना द्वारा धार्मिक रहस्यवाद और भक्ति को दर्शकों के अनुभव में लाया गया।यह संयोजन — विचार पर नियंत्रण और इंद्रियों पर प्रभाव — प्रति धर्म सुधार की वह रणनीति थी जिसने कैथोलिक चर्च को जनमानस में फिर से गहराई से स्थापित करने में मदद की।

प्रति धर्म सुधार में सेंसरशिप और अनुशासन ने जहां वैचारिक और नैतिक अनुशासन को पुनर्स्थापित किया, वहीं कला और स्थापत्य ने जनता के हृदयों में धार्मिक भक्ति और कैथोलिक पहचान को फिर से जाग्रत किया। यह रणनीतिक समन्वय न केवल विरोधी मतों का दमन था, बल्कि आत्म-सुधार और आस्था के पुनर्निर्माण की एक शक्तिशाली सांस्कृतिक प्रक्रिया भी थी।

7.15 प्रति धर्मसुधार का प्रभाव: धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक आयामों में परिवर्तन

प्रति धर्म सुधार (Counter-Reformation) ने यूरोपीय इतिहास में बहुआयामी और दीर्घकालिक प्रभाव छोड़े। यह प्रक्रिया केवल रोमन कैथोलिक चर्च की एक आंतरिक पुनर्रचना नहीं थी, बल्कि यह एक व्यापक धार्मिक प्रतिक्रिया और प्रतिस्पर्धा थी, जिसने यूरोप के धार्मिक भूगोल, बौद्धिक परिदृश्य, तथा सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना को गहराई से प्रभावित किया। नीचे इसके प्रमुख प्रभावों को शैक्षणिक ढंग से विश्लेषित किया गया है:

1. धार्मिक ध्रुवीकरण का तीव्रता से विस्तार: प्रति धर्म सुधार के बाद यूरोप दो प्रमुख धार्मिक धड़ों — कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट — में स्थायी रूप से विभाजित हो गया। ट्रेंट परिषद और Jesuit प्रचार के माध्यम से कैथोलिक चर्च ने अपनी आस्था और परंपराओं को और अधिक कठोरता से परिभाषित किया, जिससे आपसी संवाद और समन्वय की संभावनाएँ सीमित हो गईं। इसका परिणाम यह हुआ कि जहाँ प्रोटेस्टेंट क्षेत्रों में सुधारवाद गहरा हुआ, वहीं कैथोलिक क्षेत्र पहले से अधिक संगठित, अनुशासित और सिद्धांतनिष्ठ हो गए। "The Counter-Reformation did not reconcile Europe's religious divisions, but solidified them." — Euan Cameron, The European Reformation (1991)

2. कैथोलिक चर्च की प्रतिष्ठा और प्रभाव की पुनःस्थापना: Council of Trent, Jesuits, और अन्य धार्मिक सुधार आंदोलनों के माध्यम से चर्च ने अपनी खोई हुई नैतिक और बौद्धिक प्रतिष्ठा को कई क्षेत्रों में पुनः प्राप्त किया।इटली, स्पेन, फ्रांस, पोलैंड, ऑस्ट्रिया जैसे देशों में कैथोलिक चर्च ने पुनः प्रभुत्व स्थापित किया। Jesuit शिक्षा, मिशनरी कार्य और बौद्धिक संगठनों ने चर्च को एक वैचारिक नेतृत्वकर्ता के रूप में स्थापित किया।यह पुनःस्थापना केवल धार्मिक स्तर पर ही नहीं, बल्कि राजनीतिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी दिखाई दी।

3. शिक्षा और धर्मशास्त्र का पुनर्गठन: प्रति धर्म सुधार के दौरान शिक्षा को एक केंद्रीय भूमिका दी गई। विशेष रूप से Jesuit संप्रदाय ने यूरोप में सैकड़ों विद्यालयों, कॉलेजों और सेमिनरी संस्थानों की स्थापना की, जिनका उद्देश्य न केवल धार्मिक शिक्षा देना था, बल्कि शास्त्रीय अध्ययन, तर्कशास्त्र, विज्ञान, और दर्शन को भी बढ़ावा देना था।यह शिक्षा प्रणाली व्यापक, संगठित और अनुशासित थी, जिसने यूरोप के शैक्षणिक मानकों को पुनः परिभाषित किया।धर्मशास्त्र को एक सुव्यवस्थित अनुशासन के रूप में प्रस्तुत किया गया, जो प्रोटेस्टेंट विचारधारा से वैचारिक प्रतिस्पर्धा कर सके। — John O'Malley, Trent: What Happened at the Council (2013-The intellectual revitalization of the Catholic Church was one of the most enduring legacies of the Counter-Reformation." — John O'Malley, Trent: What Happened at the Council (2013)

4. धार्मिक संघर्ष और राजनीतिक अस्थिरता

निम्न प्रश्नों में सही और गलत का निशान लगावें -

प्र01- ईसाई धर्म जगत के ढांचे का प्रमुख पोप होता था। ( )

प्र02- धर्म सुधार आन्दोलन का तात्कालिक कारण पाप मोचन पत्रों की बिक्री था।( )

प्र03- मार्टिन लूथर फ्रांस के गरीब किसान परिवार में पैदा हुआ था। ( )

प्र04- एंग्लिकन चर्च की स्थापना स्पेन में हुयी। ( )

7.17- सारांश

यह कहा जा सकता है कि धर्म सुधार आन्दोलन उस अभिव्यक्ति का एक परिणाम था, जो 15वीं शताब्दी के अन्त एवं 16वीं शताब्दी के प्रारम्भ में संघर्षों तथा उथल-पुथल के रूप में यूरोप में दिखाई दे रहा था। धर्म के क्षेत्र में संघर्ष का एक कारण यह भी था कि धर्म की ही जकड़ सबसे भयानक थी। दीर्घकाल से अपनी सीमाओं का अतिक्रमण कर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को आक्रान्त करने वाले चर्च का स्वरूप बदलने का समय आ गया था। धर्म सुधार आन्दोलन धर्म के मूल स्वरूप के लिए चुनौती नहीं था, विरोध केवल व्यवहार एवं कार्यान्वयन का था। सुधारवादी सम्प्रदाय केवल धार्मिक कारणों से ही अलग नहीं हुए अपितु आर्थिक और राजनीतिक कारणों ने भी बहुत बड़ी भूमिका अदा की।

यथार्थ में धर्म सुधार आन्दोलन ने मानव वादियों की अपेक्षा अधिक द्रुतगति से मध्ययुग से सम्बन्ध विच्छेद किया। अब मनुष्य में सोचने की कोई सीमा न रह गयी थी और वह जीवन के सभी पहलुओं में प्रयोग करने को स्वतंत्र था।

प्रति धर्म सुधार आन्दोलनों के दौरान फ्रांस में ह्यूगनॉट्स युद्ध (Wars of Religion) और ब्रिटेन में इंग्लिश सिविल वॉर और स्कॉटिश प्रेस्बिटेरियन संघर्ष हुआ,इन संघर्षों ने यह सिद्ध किया कि प्रति धर्म सुधार से धार्मिक तनाव कम होने केबजाय और जटिल हो गए, और यूरोप में धर्म और राजनीति की परस्पर निर्भरता और टकराव और बढ़ गए।

प्रति धर्म सुधार ने यूरोप को एक दोहरी दिशा में प्रभावित किया — एक ओर इसने कैथोलिक चर्च को आत्मसुधार, अनुशासन और शिक्षा के माध्यम से सशक्त किया, तो दूसरी ओर इसने धार्मिक ध्रुवीकरण और संघर्षों को स्थायित्व प्रदान किया। इसका प्रभाव केवल धार्मिक विश्वास तक सीमित नहीं था, बल्कि यह राजनीति, शिक्षा, कला, समाज और अंतरराष्ट्रीय संबंधों को भी प्रभावित करता रहा। इस प्रकार, प्रति धर्म सुधार यूरोपीय इतिहास का एक निर्णायक मोड़ था, जिसने आधुनिक यूरोपीय चेतना और सत्ता-संरचना की नींव रखी।

हालाँकि प्रति धर्म सुधार ने कैथोलिक धर्म को पुनर्जीवित किया, परंतु इसका एक प्रतिकूल प्रभाव यह भी हुआ कि धार्मिक संघर्ष और हिंसा में अप्रत्याशित वृद्धि हुई। 16वीं और 17वीं शताब्दी के दौरान यूरोप में अनेक युद्ध और दंगे हुए, जिनका मूल कारण धार्मिक वैचारिक संघर्ष था। Thirty Years 'War (1618–1648): यह युद्ध यूरोप का सबसे विनाशकारी संघर्ष था, जो प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक शक्तियों के बीच लड़ा गया। यह केवल धर्म नहीं, बल्कि सत्ता, भू-राजनीति और प्रभुत्व का युद्ध भी था।इस युद्ध ने जर्मनी सहित पूरे मध्य यूरोप को सामाजिक, आर्थिक और जनसंख्या स्तर पर भारी नुकसान पहुँचाया।

7.18 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र01- सही (□)

प्र02- सही (□)

प्र03- गलत (ग्)

प्र04- गलत (ग्)

7.19 शब्दावली

पुर्नजागरण - ''फिर से जागना'' सर्वप्रथम बैसारी ने 16वीं शताब्दी में वास्तुकला एवं शिल्पकला आदि में परिवर्तनों को रिनासिता की संज्ञा दी थी।

इन्क्वीजिशन- धर्म विरोधियों के दमन हेतु स्पेन में 1480 में इन्क्वीजिशन नामक विशेष धार्मिक न्यायालय की स्थापना हुई।

काल्विन वाद- स्विट्जरलैण्ड में जॉन काल्विन द्वारा चलाये गये धर्म सुधार को काल्विन कहा जाता है।

एंग्लिकन चर्च- इंग्लैण्ड में धार्मिक विवाद से उत्पन्न राष्ट्रीय चर्च।

7.20 सन्दर्भ ग्रन्थ

विश्व इतिहास - जैन एवं माथुर

आधुनिक पश्चिम का उदय - पार्थसारथि गुप्ता

ए हिस्ट्री आफ वर्ल्ड सिविलाइजेशन - जे0ई0 स्वेन

द आउट लाइन आफ हिस्ट्री - एस0जी0 वेल्स

7.21 निबंधात्मक प्रश्न

प्र01- धर्म सुधार आन्दोलन में मार्टिन लूथर के योगदान की चर्चा करें?

प्र02- धर्म सुधार आन्दोलन के कारण एवं परिणामों की विवेचना करें?

प्र03- काल्विन के विचार एवं उसके कार्यो को स्पष्ट करें?

प्र04- इंग्लैण्ड में एंग्लिकन चर्च की स्थापना पर एक टिप्पणी लिखें।

प्र05- लूथर वाद एवं काल्विन वाद में क्या अन्तर था?

इकाई-आठ

प्रबोधन का युग

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 प्रबोधन का युग

8.4 प्रबोधन से संबंधित विचार

8.5 कुछ प्रमुख विचारक

- **8.5.1 पियरे बेयल**
- **8.5.2 मॉण्टेस्क्यू**
- **8.5.3 वॉल्टेयर**
- **8.5.4 जीन जैकस रूसो**
- **8.5.5 दिदरो**
- **8.5.6 क्वेसने**

8.6 प्रबोधन का प्रभाव

8.7 सारांश

8.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

8.9 शब्दावली

8.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.11 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

18वीं सदी के वैविध्य और परस्पर विरोधी प्रकृति वाला प्रबोधन जो सामान्यः तर्क के युग के नाम से जाना जाता है, वस्तुतः पिछली सदी की बौद्धिक उत्तेजना का ऋणी है। 17वीं सदी की वैज्ञानिक क्रान्ति ने ऐसे प्रारूप प्रस्तुत किये जिनके द्वारा समस्या का समाधान तार्किक विचारों और प्रयोगों के द्वारा संभव हो सका। वास्तव में फ्रांसिसी दार्शनिक, गणितज्ञ और वैज्ञानिक रेने देकार्ट ने मानव की तार्किक क्षमता को उसके अस्तित्व का प्रमुख प्रमाण माना। वैज्ञानिक क्रान्ति तो वास्तव में 16वीं सदी के मध्य में ही प्रारंभ हो चुकी थी जब कॉपरनिकस ने प्राचीन काल से मान्य टॉलेमी के विचार कि पृथ्वी ही ब्रह्माण्ड का केन्द्र है का खण्डन कर यह बताया कि वास्तव में सूर्य, ब्रह्माण्ड का केन्द्र है। इस वैज्ञानिक क्रान्ति ने 1687 में सर आइजैक न्यूटन की प्रिसंपिया के प्रकाशन के साथ चरमोत्कर्ष प्राप्त किया, प्रिंसपिया में यान्त्रिक ब्रह्माण्ड को सार्वजनीन गति के नियमों द्वारा सविस्तार समझाया गया। प्रिंसपिया से उद्भूत विचारों ने उस युग में

मौलिक बौद्धिक परिवर्तन प्रारंभ कर दिये। 18वीं सदी के प्रारंभिक दौर से ही अनुमान का केन्द्र धार्मिकता से हटकर धर्मनिरपेक्ष होने लगा था, यह नया दृष्टिकोण इस बात से समझा जा सकता है कि फ्रांस का शासक लुई IVX एक ठेठ 17वीं सदी का शासक था जो शासक के रूप में राज्य का प्राथमिक कर्तव्य धार्मिक नेतृत्व को मानता था, उसके द्वारा 1685 में नॉट के अभिलेखों का खण्डन किया गया जिससे हजारों प्रोटेस्टेण्टों को फ्रांस से भागना पड़ा, यह उदाहरण उसके राज्य की धार्मिक एकता के प्रति उसकी सोच को बतलाता है, जबकि दूसरी ओर 18वीं सदी में प्रशा का शासक फ्रेडरिक महान् मूलतः एक धर्मनिरपेक्ष शासक था। वह स्वयं को राज्य का प्रथम सेवक मानता था, उसके अनुसार उसकी प्रजा का धर्म उनका व्यक्तिगत मामला है और राज्य का इससे कुछ लेना-देना नहीं है। उसकी मुख्य रूचि अपनी सैन्य क्षमता का विकास, जनता की समृद्धि और सुरक्षा में थी।

अब विज्ञान और बौद्धिक जांच-पड़ताल लोगों को एकबद्ध करने के सार्वजनिक आधार बन गये जो पहले कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट में विभाजित थे। अब आनन्द की खोज इस जगत में की जाने लगी। तर्क ने एकीकरण का सिद्धान्त प्रस्तुत किया और साथ ही मानव को आनन्द वृद्धि की कुंजी के साथ वह स्थान प्राप्त किया जो पहले धर्म को प्राप्त था। यह माना जाने लगा कि तर्क के सही प्रयोग से समाज की समस्याओं का निदान किया जा सकता है और सभी मनुष्य समृद्धता और खुशहाली से जी सकते हैं। इस आशावाद ने बढ़ते हुए आर्थिक अवसरों की अनुभूति उत्पन्न की। 18वीं सदी का यूरोप अब तक का सबसे सम्पन्न और जनसंख्या वाला यूरोप बन गया। बढ़ती हुई आर्थिक संवृद्धि ने यह भावना विकसित की कि वैज्ञानिक तरीके न केवल भौतिक जगत की कुंजी है वरन् यह धर्मशास्त्र, इतिहास, राजनीति और सामाजिक समस्याओं का हल भी प्रदान कर सकती है। तर्कपूर्ण वैज्ञानिक अन्वेषण के फलस्वरूप उत्पन्न उन्नति से किसानों ने कृषि में सुधार किया और उद्यमियों ने उत्पादों और नयी तकनीकों के साथ प्रयोग करने प्रारंभ कर दिये।

8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई प्रबोधन से संबंधित है इसको पढ़ने के बाद आप अग्रांकित जानकारियां प्राप्त कर सकेंगे-

- प्रबोधन काल के विचार
- प्रबोधन युग के प्रमुख विचारक
- प्रबोधन का प्रभाव

8.3 प्रबोधन का युग

फ्रांसीसी इतिहासकार परम्परागत रूप से प्रबोधन के काल को 1715 ई0 जब लुई ग्प्ट की मृत्यु हुई थी और 1789 ई0 जब फ्रांस की क्रांति की शुरूआत हुई थी, के मध्य रखते हैं, जबकि कुछ आधुनिक इतिहासकार 1620 के दसक से प्रबोधन के युग का प्रारंभ मानते हैं जब वैज्ञानिक क्रान्ति का प्रारंभ हुआ था। प्रबोधन के कुछ प्रमुख व्यक्तियों में जिन लोगों के नाम शामिल हैं उनमें महत्वपूर्ण हैं, फ्रांस के मॉण्टेस्क्यू (1689-1755); वॉल्टेयर (1694-1778); दिदरो (1713-1784); रूसो (1712-1778); कांडिलैक (1714-1780) और काण्डोर्सेट (1743-1794); ब्रिटेन के

डेविड ह्यूम (1711-76) और एडम स्मिथ (1723-1790); जर्मनी के लेसिंग (1729-1781), और काण्ट (1724-1804); इटली के गैम्बटिस्टा विको (1668-1744); बेकारिया (1734-1794) और पगानो (1748-1799)।

प्रबोधन का युग अपने पूर्वगामी वैज्ञानिक क्रान्ति से अत्यन्त निकटता से संबंधित था। कुछ पूर्व के दार्शनिकों जिन्होंने प्रबोधन को प्रभावित किया उनमें बेकन (1562-1626), देकार्ट (1596-1650), जॉन लॉक (1632-1704); स्पीनोजा (1632-1677); पियरे बेयल (1647-1706) और सर आइजक न्यूटन (1642-1727) शामिल हैं।

प्रबोधन के युग का सबसे महत्वूर्ण प्रकाशन 'इनसाइक्लोपीडिया' था, जिसे दिदरो, डि एलम्बर्ट तथा 150 वैज्ञानिकों एवं दार्शनिकों के एक दल द्वारा संकलित किया गया था, यह 1751 और 1772 के बीच 35 खण्डों में प्रकाशित किया गया था। इसके द्वारा प्रबोधन के विचार सम्पूर्ण यूरोप और उसके बाहर भी प्रसारित हुए। इनसाइक्लोपीडिया के अलावा जो अन्य महत्वपूर्ण पुस्तकें थीं उनमें वाल्टेयर द्वारा लिखित 'लेटर्स ऑन इंग्लिश', रूसो द्वारा लिखित 'डिस्कोर्स ऑन इक्वैलिटी', तथा 'सोशल काण्ट्रेक्ट', मॉण्टेस्क्यू की 'स्पिरिट ऑफ लॉ' शामिल थी।

8.4 प्रबोधन से संबंधित विचार

प्रबोधन युग के दार्शनिकों ने सर्वाधिक महत्व स्वतन्त्रता, विकास, तर्क, सहिष्णुता और चर्च तथा राज्य की बुराइयों को समाप्त करने में दिया। हांलाकि इन उददेश्यों को प्राप्त करने के साधनों में उनके विचारों में वैभिन्य मिलता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उत्पन्न चिंतन ने इस युग के विचारों को परिवर्तित कर दिया था, अब धर्मनिरपेक्ष चिंतन और विवेकपूर्ण पूछताछ को बढ़ावा दिया जाने लगा। इस काल के लेखक सामाजिक बुराइयों को उद्घाटित करने लगे। उन्होंने तर्क, सहिष्णुता और मानवता को सबसे आगे रखा। प्रबोधन युग में आम जनता के विचारों और दृष्टिकोण में विज्ञान तथा तर्क को बढ़ावा देने के कारण इतना अधिक परिवर्तन आ गया कि अनेकों लोग इसे बौद्धिक क्रान्ति भी कहने लगे। इस युग में चिंतन का केन्द्र मनुष्य था और मानव कल्याण को परम लक्ष्य माना गया। यह माना गया कि राज्य, चर्च तथा अन्य संस्थाओं को निरंतर मानव कल्याण के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। अब मानव गरिमा, मानवीय अधिकार तथा मानवीय आदर्शों को स्थापित किया जाने लगा, इन्होंने मध्यकालीन परंपराओं, सामंतवादी समाज, रूढ़िवादी धर्म और निरंकुश राजतन्त्र सभी का तिरस्कार करना प्रारंभ किया।

इस युग का यह सामान्य विचार था कि विश्व एक विशाल मशीन की भांति है जो कुछ प्राकृतिक नियमों के अनुसार संचालित होती है, ये नियम शाश्वत एवं अपरिवर्तनीय हैं। मनुष्य को चाहिए कि वह इन प्राकृतिक नियमों का पता लगाये, अपने क्रियाकलापों को इन नियमों के अनुसार संचालित करे और इन नियमों का अतिक्रमण करने का प्रयत्न न करे। बुद्धि और तर्क द्वारा इन प्राकृतिक नियमों का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, जो नियम तर्क एवं बुद्धि की कसौटी में खरे उतरते हैं, वे ही सही है और मनुष्यों के लिए श्रेयस्कर हैं, लेकिन जो तर्क, बोधगम्य न होकर केवल प्राचीन मान्यताओं, विश्वासों और परम्पराओं पर आधारित हैं वे मनुष्य के लिए हितकारी नहीं हो सकते हैं। मनुष्य एक बुद्धिवान प्राणी है जिसके द्वारा वह प्राकृतिक नियमों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। सभी मुनष्य एक समान उत्पन्न होते

हैं, उनमें जो अन्तर मिलता है वह केवल शिक्षा और उन्नति के समान अवसर न मिल पाने की वजह से है। समाज में सभी मनुष्यों का समान स्थान और महत्व होता है।

8.5 कुछ प्रमुख विचारक

प्रबोधन का युग बौद्धिक क्रियाकलाप का युग है, इस युग में अनेकों दार्शनिकों, लेखकों, वैज्ञानिकों ,विचारकों एवं चिंतकों ने जनसामान्य के मध्य ज्ञान, बुद्धि, तर्क के प्रति जागृति उत्पन्न करने का कार्य किया था। कुछ प्रमुख विचारकों के विषय में आपको यहां पर जानकारी दी जा रही है-

8.5.1 पियरे बेयल

फ्रांस का पियरे बेयल, लुई IVX का समकालीन था। वह सत्य का पक्षपाती था और वैज्ञानिक चिंतन पर विश्वास रखता था। उसका मानना था कि किसी भी धर्म के अनुयायियों को अपने विरोधियों के साथ शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि इसमें प्रतिक्रिया होती है जिसका कोई अंत नहीं होता। अपनी पुस्तक 'व्हॉट होली कैथोलिक फ्रांस अण्डर दी रिजीम ऑफ लुई फोरटीन्थ रियली इज?' में उसने लुई IVX द्वारा नॉट की घोषणा की आलोचना की है। उसकी, 'हिस्टोरिकल एण्ड क्रिटिकल डिक्शनरी' में उसने वैज्ञानिकों, इतिहासकारों, धर्मशास्त्रियों और दार्शनिकों के जीवन तथा उनकी कृतियों एवं विचारों का सूक्ष्म विवेचन किया है।

8.5.2 मॉण्टेस्क्यू

मॉण्टेस्क्यू भी फ्रांस का एक प्रसिद्ध विचारक था। 'पर्शियन लेटर्स' नामक उसकी पुस्तक फ्रांस के तत्कालीन धर्म, रीति-रिवाजों, परम्पराओं तथा निरंकुश शासन पर व्यंग करती है। उसकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना, 'स्पिरिट ऑफ लॉज' है। इसमें सामाजिक, भौगोलिक, राजनीतिक तथा आर्थिक शक्तियों के संबंधों पर चर्चा की गयी है। साथ ही दासता, धार्मिक अत्याचार और निरंकुशतावाद पर आक्रमण किया गया है। उसने राजा के दैवी अधिकारों की निंदा की है और संवैधानिक राजतन्त्र का समर्थन किया है। इस पुस्तक में उसने 'शक्ति पार्थक्य' के सिद्धान्त को भी प्रतिपादित किया है। स्पिरिट ऑफ लॉज की गणना विश्व के महानतम् ग्रन्थों में की जाती है।

8.5.3 वॉल्टेयर

फ्रांस का वॉल्टेयर एक महान् लेखक, कवि, दार्शनिक, पत्रकार, नाटककार, आलोचक और व्यंगकार था। उसने अपने लेखन द्वारा राज्य और चर्च में व्याप्त भ्रष्टाचार, अभिजात्य वर्ग के विशेषाधिकार इत्यादि की घोर आलोचना की। उसकी कुछ प्रमुख पुस्तकों में, 'लैटर्स ऑन इंग्लिश', 'एज ऑफ लुई ग्प्ट', 'ट्रिटाइज ऑन टॉलरेन्स' हैं। वॉल्टेयर को समस्त यूरोप में विवेक, प्रबुद्धता और प्रकृति के सिद्धान्त के प्रचार-प्रसार का श्रेय दिया जा सकता है। उसने निरन्तर अन्याय, कटटरता, विशेषाधिकार और धार्मिक दुराग्रह का प्रभावशाली ढंग से विरोध किया, उसके समय के लोग सम्मान से उसे 'राजा वॉल्टेयर' कहते थे।

8.5.4 जीन जैकस रूसो

जीन जैकस रूसो को फ्रांस का सबसे प्रबुद्ध दार्शनिक माना जाता है। उसने अनेक निबन्ध, लेख तथा उपन्यासों के साथ-साथ स्वयं की जीवनी भी लिखी। उसकी सर्वाधिक प्रसिद्ध पुस्तक, 'सोशल काण्ट्रेक्ट' है। इसी पुस्तक कें प्रारंभ में लिखा गया है कि, 'मनुष्य स्वतन्त्र पैदा होता है परन्तु वह सर्वत्र जंजीरों में जकड़ा हुआ है।' इस पुस्तक के अनुसार आदिम काल में मनुष्यों को स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व प्राप्त था, लेकिन जैसे-जैसे मनुष्य सभ्य होता गया उसने एक समवेत शक्ति उत्पन्न करने के लिए समझौता किया और इस प्रकार राज्य का जन्म हुआ। रूसो के अनुसार राज्य का जन्म सत्ता तथा उन लोगों के बीच एक समझौता था, जिन्होंने उसका निर्माण किया था। अतः सत्ताधिकारी यहां तक कि स्वयं राजा भी जनता के प्रतिनिधि हैं। अतः यदि जनता के प्रतिनिधि स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व-भाव में हस्तक्षेप करते हैं तो जनता को चाहिए कि वह उन्हें बदल दे। रूसो निरंकुश राजतन्त्र का घोर विरोधी था। वह जनतन्त्र को आदर्श शासन प्रणाली मानता था। रूसो की महानता के विषय में नेपोलियन ने कहा था कि, 'रूसो का जन्म न होता तो फ्रांस की राज्य क्रांति का होना असंभव था'।

8.5.5 दिदरो

दिदरो भी फ्रांस का एक प्रमुख दार्शनिक था। वह 'इनसाइक्लोपीडिया' का प्रमुख संकलनकर्ता था। सभी मध्यकालीन संस्थाओं का उसने घोर विरोध किया था, उसका मानना था कि समस्त कटुता को निरकुंश शासकों एवं पादरियों ने उत्पन्न किया था। उसकी इनसाइक्लोपीडिया में धार्मिक असहिष्णुता, अन्धविश्वास, दासों के व्यापार, पादरियों का भ्रष्ट जीवन, अवांछित करों और अभिजात वर्ग के विशेषाधिकारों को निशाना बनाया गया है। इस ग्रन्थ में विज्ञान और तर्कवाद को सर्वाधिक महत्व दिया गया है।

8.5.6 क्वेसने

क्वेसने फ्रांस का एक भू-अर्थशास्त्री था , उस काल में भू-अर्थशास्त्रियों का मानना था कि भूमि और कृषि ही धन के वास्तविक स्रोत होते हैं , क्योंकि व्यापार में केवल स्थान परिवर्तन के कारण वस्तु का मूल्य बढ़ता है और उसे धन का उत्पादन नहीं कहा जा सकता है।वास्तव में देखा जाय तो सभी चीजें प्रकृति की ही देन हैं,अतः धन का मूल स्रोत तो प्रकृति ही है, जहां से हमें कृषि उत्पाद, मत्स्य उत्पाद और खनिज पदार्थ प्राप्त होते हैं और वास्तव में ये ही धन उत्पन्न करते हैं अतः राज्य को चाहिए कि वह उत्पादन के इन क्षेत्रों में हस्तक्षेप न करे और उन्मुक्त व्यापार को प्रोत्साहित करे। क्वेसने का मानना था कि किसानों पर कर्ज का बोझ कम होना चाहिए क्योंकि यदि किसान गरीब है तो राज्य के साथ-साथ राजा भी गरीब हो जायेगा।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

अग्रांकित प्रश्नों में रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. व्हॉट होली कैथोलिक फ्रांस अण्डर दी रिजीम ऑफ लुई फोरटीन्थ रियली इज?' के लेखक.....हैं।
2. स्पिरिट ऑफ लॉज' के लेखक.....हैं।
3. लेटर्स ऑन इंग्लिश' के लेखक.....हैं।

4. डिस्कोर्स ऑन इक्वैलिटी' के लेखक.....हैं।
5. सोशल काण्ट्रेक्ट के लेखक.....हैं।
6. 'मनुष्य स्वतन्त्र पैदा होता है परन्तु वह सर्वत्र जंजीरों में जकड़ा हुआ है।'यह कथन .....ने कहा है।
7. 'रूसो का जन्म न होता तो फ्रांस की राज्य क्रांति का होना असंभव था'।यह कथन .....ने कहा है।
8. ..... 'इनसाइक्लोपीडिया' का प्रमुख संकलनकर्ता था।
9. 'एज ऑफ लुई ग्प्ट के लेखक.....हैं।
10. ट्रिटाइज ऑन टॉलरेन्स' के लेखक.....हैं।
11. 'हिस्टोरिकल एण्ड क्रिटिकल डिक्शनरी' के लेखक.....हैं।
12. 'पर्शियन लेटर्स' के लेखक.....हैं।
13. प्रिसंपिया के लेखक.....हैं।

8.6 प्रबोधन का प्रभाव

18वीं सदी बुद्धिवाद और तर्कवाद की सदी थी, जैसा कि ऊपर बताया गया है विभिन्न दार्शनिकों, विद्वानों ने अपने लेखन द्वारा इस काल में व्यापक जनजागृति उत्पन्न कर दी थी। यह स्वाभाविक है कि इस जागृति का प्रभाव यूरोप के विभिन्न शासकों में भी पड़ा। इस काल के प्रमुख शासक जिनमें इस जागृति का प्रभाव पड़ा था, उनमें रूस की साम्राज्ञी कैथरीन, ऑस्ट्रिया का सम्राट जोसेफ द्वितीय, प्रशा का राजा फ्रेडरिक द्वितीय, स्पेन का राजा चार्ल्स तृतीय, पुर्तगाल का शासक जोसेफ प्रथम, स्वीडन का राजा गुस्ताव तृतीय तथा टस्कनी का शासक चार्ल्स इमैन्युअल तृतीय प्रमुख थे। यद्यपि ये सभी शासक स्वेच्छाचारी और निरंकुश थे और अपनी इच्छा को ही कानून मानते थे पर जागृति की लहर ने इन्हें प्रबुद्ध निरंकुश बना दिया, इन्होंने अपने-अपने देशों की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अवस्था को नये विचारों के अनुसार परिवर्तित करने का प्रयास किया। सभी ने कम या अधिक मात्रा में प्रशासनिक सुधारों को क्रियान्वित किया। कानूनी कार्यप्रणाली में एकरूपता लाने का प्रयास किया, कानूनों को संहिताबद्ध किया, कर-पद्धति को न्याय संगत बनाया। जन साधारण की शिक्षा व्यवस्था, कृषि दासों के प्रति मानवीयता, साहित्य का विकास, चिकित्सालयों का निर्माण आदि कार्यों को किया जाने लगा।

धर्म एवं अध्यात्म का क्षेत्र भी दार्शनिकों की आलोचना का प्रमुख क्षेत्र था, अतः यहां भी व्यापक प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इस युग के प्रारंभ में लोगों की जो धार्मिक मान्यताऐं थी वे वस्तुतः इसाई धर्मग्रन्थों में लिखी बातों पर आधारित थीं और उनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं था। बौद्धिक क्रान्ति ने लोगों को यह समझाया कि इन प्रमाणों का तब तक कोई मूल्य नहीं जब तक कि उनमें लिखी बातें तर्क एवं बुद्धि की कसौटी में खरी न उतरें, इन ग्रन्थों की उन बातों को छोड़ने को कहा गया जो तार्किक न हों, बातों को स्वीकार करने से पहले उनकी सत्यता परीक्षण एवं तर्क से जांचना आवश्यक हो गया।

8.7 सारांश

फ्रांसीसी इतिहासकार परम्परागत रूप से प्रबोधन के काल को 1715 ई0 जब लुई ग्प्ट की मृत्यु हुई थी और 1789 ई0 जब फ्रांस की क्रांति की शुरूआत हुई थी, के मध्य रखते हैं, जबकि कुछ आधुनिक इतिहासकार 1620 के दसक से प्रबोधन के युग का प्रारंभ मानते हैं जब वैज्ञानिक क्रान्ति का प्रारंभ हुआ था। 18वीं सदी के प्रारंभिक दौर से ही अनुमान का केन्द्र धार्मिकता से हटकर धर्मनिरपेक्ष होने लगा था। प्रबोधन युग के दार्शनिकों ने सर्वाधिक महत्व स्वतन्त्रता, विकास, तर्क, सहिष्णुता और चर्च तथा राज्य की बुराइयों को समाप्त करने में दिया। इस युग के प्रमुख विचारकों में फ्रांस के मॉण्टेस्क्यू (1689-1755); वॉल्टेयर (1694-1778); दिदरो (1713-1784); रूसो (1712-1778); कांडिलैक (1714-1780) और काण्डोर्सेट (1743-1794); ब्रिटेन के डेविड ह्यूम (1711-76) और एडम स्मिथ (1723-1790); जर्मनी के लेसिंग (1729-1781), और काण्ट (1724-1804); इटली के गैम्बटिस्टा विको (1668-1744); बेकारिया (1734-1794) और पगानो (1748-1799) आदि शामिल थे।

8.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. पियरे बेयल
2. मॉण्टेस्क्यू
3. वॉल्टेयर
4. जीन जैकस रूसो
5. जीन जैकस रूसो
6. जीन जैकस रूसो
7. नेपोलियन
8. दिदरो
9. वाल्टेयर
10. वॉल्टेयर
11. पियरे बेयल
12. मॉण्टेस्क्यू
13. न्यूटन

8.10 शब्दावली

आशावाद: यह विचार की भविष्य अच्छा होगा

इनसाइक्लोपीडिया: विश्वकोश

बोधगम्य: बुद्धि के तर्क-वितर्क से समझ में आने योग्य

अभिजात्य वर्ग: पोप, पादरी, राजा, उच्च अधिकारी एवं धनी लोग

दैवी अधिकार: ईश्वर द्वारा दिये गये अधिकार

8.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. विश्व का इतिहास 1500-1950: जैन एवं माथुर, जैन पुस्तक मंदिर, चौड़ा रास्ता, जयपुर।
2. आधुनिक पश्चिम का उदय - पार्थसारथि गुप्ता
3. ए हिस्ट्री आफ वर्ल्ड सिविलाइजेशन - जे0ई0 स्वेन
4. द आउट लाइन आफ हिस्ट्री - एस0जी0 वेल्स
5. हेज, सी.जे.एच.-ए पोलिटिकल एण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑफ मार्डन यूरोप, भाग 1एवं 2

8.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रबोधन से आप क्या समझते हैं? इस युग के प्रमुख विचारकों के बारे में बताइये।

इकाई नौ

निरंकुश राष्ट्रीय राज्यों का उदय

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 निरंकुशवाद की विशेषताएं

9.4 नवीन निरंकुश राजतंत्रों के उदय के कारण

9.5 प्रमुख निरंकुश राष्ट्र-राज्यों का उदय

- **9.5.1** इंग्लैण्ड
- **9.5.2** फ्रांस
- **9.5.3** स्पेन
- **9.5.4** रूस
- **9.5.5** प्रशा

9.6 समीक्षा

9.7 निरंकुशता का पतन

9.8 सारांश

9.9 शब्दावली

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

9.11 बोध प्रश्न

9.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.13 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

राष्ट्रीय राज्यों का उत्कर्ष आधुनिक युग की एक बहुत बड़ी विशेषता है, मध्ययुग में सर्वत्र सामन्तवाद का वर्चस्च था। सामन्त, राजा की ही तरह अनेक शक्तियों का उपयोग करते हुए स्वयं को लगभग स्वतंत्र मानते थे। किन्तु पन्द्रहवीं शताब्दी में इस व्यवस्था के विरूद्ध घोर प्रतिक्रिया हुई। इसका एक प्रमुख कारण था, पन्द्रहवी-सोलहवीं शताब्दी में राष्ट्रीयता की भावना का उदय। देश-प्रेम एवं देश-भक्ति की भावना ने मध्य युग का अन्त कर आधुनिक युग की घोषणा की। इसने सामंतकाल की अत्यधिक अव्यवस्था व अराजकता को समाप्त कर दिया। सामन्तवाद को नष्ट करने के साथ-साथ राष्ट्र-राज्यों ने आर्थिक विकास में बड़ा योग दिया।

उत्पादन के लिए सुधरे हुए तरीकों का इस्तेमाल हुआ और तरीकों में सुधार हुए। राष्ट्रीय राज्यों के उदय के कारण राष्ट्रीय सीमाएं और अधिक तर्क संगत हो गयी। राष्ट्रीय राज्य एक संस्कृति के व्यक्तियों को संगठित करने में बहुत सहायक सिद्ध हुए। अपने राष्ट्र के प्रति निष्ठा का विकास हुआ।

1589 ई0 से 1715 ई0 के मध्य नये एवं सबल राजतंत्रीय राष्ट्रीय राज्यों का उत्थान तेजी से हो रहा था। इंग्लैण्ड, फ्रांस, स्पेन, आदि पश्चिमी यूरोपीय राष्ट्रों में राजनीतिक संगठन, राष्ट्रीय एकता, देशभक्ति तथा सुदृढ़ राजतंत्रों की प्रगति हो रही थी। परन्तु मध्य, दक्षिण एवं पूर्वी यूरोप के राज्य अभी भी उतने संगठित एवं सशक्त न हो पाए जितने पश्चिमी यूरोप के राष्ट्र। ये राष्ट्र राजनीतिक अनैक्यता, अराजकता तथा अविकसित व्यवस्थाओं के कारण असम्बद्ध राज्य बने हुए थे।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम यूरोप में नवीन निरंकुश राज्यों के उदय एवं उसके कारणों की चर्चा करेंगें।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

1-निरंकुश राज्य का अर्थ एवं उसकी विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।

2-इस इकाई के अध्ययन से हम निरंकुश राज्यों के उदय के कारणों से परिचित हो पायेंगे।

3-यूरोप में नये निरंकुश राज्यों एवं उनके शासकों के कार्य एवं योगदान जान सकंेगे।

4-नवीन राष्ट्रीय राज्यों की सीमाओं एवं इसकी प्रगति को समझ पायेंगें।

9.3 निरंकुशवाद की विशेषताएं

1-राजा ही सर्वोच्च होता है। वह सेना तथा अन्य बड़े-बड़े अफसरों की सहायता से शासन कार्य चलाता है। किन्तु उस पर किसी का अंकुश नहीं होता है। राजा ही अन्तिम रूप से कानून का निर्माण करने वाला होता है।

2-सेना निरंकुश राज्य की मूलभूत विशेषता है।

3-नौकरी-पेशा वर्ग की स्थापना शासकों द्वारा की गयी। इस वर्ग में दो प्रकार के पद थे - (क) प्रशासनिक, (ख) सैनिक, कुछ देशों में नौकरी पेशा वर्ग के सदस्य कुलीन न होकर साधारण जनता में से भी लिए जाते थे, ताकि वे राजा का विरोध न कर सकें

4-निरंकुशवाद की एक विशेषता वाणिज्यवाद भी थी, वाणिज्यवाद एक प्रकार का आर्थिक युद्ध था, जिसमें एक राज्य स्वयं आत्मनिर्भर होकर, दूसरे देशों को अपने ऊपर आर्थिक रूप से निर्भर होने के लिए प्रेरित करता था।

9.4 नवीन निरंकुश राजतंत्रों के उदय के कारण

व्यापारिक क्रांति ने निरंकुश राजतंत्र के उदय में महती भूमिका निभाई। वाणिज्यवादी नीतियों के उपयोग ने राजाओं को प्रचुर धनराशि प्रदान की, जिसका प्रयोग वे सेना को संगठित करने तथा अपनी राजनीतिक सत्ता के विस्तार के लिए कर सकते थे। व्यापार के विस्तार ने भी सुदृढ़ सरकार की अनिवार्यता को बढ़ावा दिया। व्यापार-वाणिज्य की उन्नति के साथ-साथ मध्यम वर्ग की सामाजिक-आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती गयी एवं मध्यम वर्ग ने अपने व्यापार-वाणिज्य के उत्थान तथा सुरक्षा हेतु सबल राजतंत्र के स्थापना में बड़ा सक्रिय सहयोग दिया। मध्यम वर्ग ने सामन्तो के विरूद्ध राजतंत्रों की बड़ी सेवाएं की एवं राष्ट्रीयता की भावना का सृजन किया। इसके बदले में राजाओं ने व्यापार-वाणिज्य को संरक्षण प्रदान किया।

मध्य युगीन धर्मयुद्धों ने सामन्त-तन्त्र को दुर्बल कर राजाओं की शक्ति को बढ़ाया। कुछ यूरोपीय देशों में प्रोटेस्टेट आन्दोलन ने राजकीय सत्ता के विकास में सहयोग किया। इसने कैथोलिक चर्च की एकता को भंग कर दिया, शासकों के ऊपर पोप की प्रमुखता को समाप्त कर दिया और राष्ट्रीयता की भावना को बल दिया।

सबल राजतंत्र के प्रति चर्च का विरोध क्षीण हो रहा था। चर्च ने सामन्ती अराजकता के विरूद्ध राजतन्त्र का समर्थन किया।

राष्ट्रीयता का उत्थान राजतंत्रों के उत्कर्ष का प्रधान कारण था। धर्म सुधार ने राष्ट्रीयता की भावना को जागत किया। सभ्यता पहले धर्म-प्रधान थी, अब वह राष्ट्र-प्रधान बन गयी। मठों के टूटने से राष्ट्रीय राज्यों की आय तथा शक्ति में वृद्धि हुई। निरंकुश राजतंत्र के विकास में राज्य के दैवीय उत्पत्ति के सिद्धान्त ने बड़ा योगदान दिया।

पुनरूत्थान एवं धर्म सुधार काल के कुछ विद्वान लेखकों ने भी राजाओं के हाथों को सुदृढ़ करने में सहयोग दिया। इटालियन लेखक मैकिया वेली फ्रांसीसी लेखक बोडिन और अंग्रेज लेखक हाब्स ने क्रमशः दी प्रिंस, दी स्टेट, और लेवियाथन नामक पुस्तके लिखीं। इन लेखकों ने शक्तिशाली निरंकुश राजतंत्र का पूर्ण समर्थन किया।

9.5 प्रमुख निरंकुश राष्ट्र-राज्यों का उदय

9.5.1 इंग्लैण्ड

राष्ट्रीय एकता स्थापित करने वाला पहला राज्य इंग्लैण्ड था। इंग्लैण्ड में राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्रीय सरकार की स्थापना का कार्य पश्चिमी यूरोप के अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक तेजी से हुआ। सन् 1337 से 1453 तक फ्रांस और इंग्लैण्ड के बीच हुए दीर्घकालीन सामन्तीय एवं राजवंशीय युद्धों (शतवर्षीय युद्ध) के परिणाम बड़े महत्वपूर्ण सिद्ध हुए। शतवर्षीय युद्ध की समाप्ति के तुरन्त बाद ही इंग्लैण्ड में व्यापक सामंतीय युद्ध का प्रारम्भ हुआ। इसमें प्रायः सभी सामन्तों ने भाग लिया। यह सामन्तीय युद्ध ''गुलाबों का युद्ध'' (1455-1485) कहलाता है। उसमें यार्क राजवंश एवं लंकास्टर राजवंश के परस्पर विरोधी सामन्तों एवं समर्थकों के बीच दीर्घकालीन ध्वंसात्मक युद्ध हुआ।

हेनरी ट्यूडर (हेनरी सप्तम्) के सिंहासन पर बैठने के साथ ही एक नये राजवंश ''ट्यूडर वंश'' (1485-1603 ई0) का उदय हुआ। इंग्लैण्ड के इतिहास में एक नये युग की शुरूआत हुई। देश की सभी प्रगतिशील शक्तियोंने जिनमें अभिजात वर्ग का वह हिस्सा भी शामिल था। हेनरी सप्तम् (1485-1509 ई0) ने सर्वप्रथम देश में शान्ति-व्यवस्था एवं सुरक्षा की स्थापना के उद्देश्य से शक्शिाली राजतंत्र स्थापित करने की चेष्टा की। गुलाबों का युद्ध के परिणाम से हेनरी सप्तम् को दो बड़े लाभ हुए -

1-इस युद्ध के परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड में अनेक शक्तिशाली तथा प्रभावशाली सामन्तगण मारे गये, या अशक्त हो गये। अतः राजा ने उनके अधिकारों को कुचल दिया एवं उनकी जागीरे जब्त कर ली।

2-इसमें मध्ययुगीन सामन्तों का दमन करके एक नये वर्ग अर्थात् मध्यवर्ग को जन्म दिया, जिसने अपने हितों के लिए राजा का साथ दिया। इसी जन समर्थन के आधार पर ट्यूडर राजाओं ने सोलहवीं शताब्दी में निरंकुश राजतन्त्र स्थापित किया। उसने विभिन्न अधिनियमों के द्वारा सामन्तों का दमन किया, उनसे सैन्य अधिकार छीन लिये तथा सामन्तों के स्थान पर मध्य वर्ग के लोगों को ऊँचे पदों पर नियुक्त किया। इस प्रकार उसने इंग्लैण्ड में सामन्त तन्त्र को हमेशा के लिए समाप्त करके निरंकुशता को परिपुष्ट किया।

हेनरी सप्तम् के बाद हेनरी अष्टम् (1509-1547 ई0) के शासनकाल में इंग्लैण्ड में धर्म सुधार आन्दोलन हुआ, जिसके महत्वपूर्ण संवैधानिक एवं धार्मिक प्रभाव पड़े। इस आन्दोलन में राजा और पार्लियामेन्ट को देश के धार्मिक जीवन पर नियन्त्रण का अधिकार दे दिया। इसके कुछ वर्षो बाद मठों एवं समर्पित पूजागृहों के विसर्जन ने राजा को धन एवं समर्थन दोनो ही प्रदान किये। ट्यूडर वंश की अन्तिम शासिका ने भी राजा की शक्ति में वृद्धि की। उसने इंग्लैण्ड को समुद्रों का स्वामी और संसार का सबसे प्रमुख व्यापारिक राष्ट्र बनाने में सहायता दी।

ट्यूडर शासकों के शासनकाल में संसद सशक्त राजाओं के प्रभाव में रही। ट्यूडर काल में इंग्लैण्ड की व्यापारिक प्रगति तो हुई ही, दुनिया के देशों में उसका महत्व भी बढ़ा। अंग्रेजों को अपने देश पर गर्व था और ट्यूडर लोग दुनिया में इंग्लैण्ड की शक्ति और गौरव के प्रतीक थे। परन्तु स्टुअर्ट शासनकाल (1603-1688 ई0) के अन्तिम शासक जेम्स द्वितीय के समय इंग्लैण्ड में रक्तहीन गौरवपूर्ण क्रांति (1688 ई0) हुई। जिसमें पार्लियामेन्ट की जीत हुई तथा वह अंग्रेज शासकों पर सर्वोच्च बन गयी। इस प्रकार लोकतंत्र ने निरंकुशता पर विजय पाना आरम्भ कर दिया।

9.5.2 फ्रांस

फ्रांस का विकास इंग्लैण्ड से भिन्न तरीके से हुआ था। फ्रांस की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि इस पर आसानी से आक्रमण हो सके, क्योंकि यह चारो ओर से समुद्र द्वारा उस तरह सुरक्षित नहीं जैसे इंग्लैण्ड। शक्ति और अधिकार एक व्यक्ति को सौंपे गये थे, न कि पार्लियामेंट को, क्योंकि इससे शक्तिशाली राजा आपातकाल में तत्काल कार्यवाही कर सकता था। यह एक उल्लेखनपीय तथ्य है कि 1500 ई0 में फ्रांस एक राष्ट्रीय राजतंत्र था तथा वहाँ राष्ट्रीय साहित्य का अभ्युदय हुआ। राष्ट्रीय भावनाओं के विकास की विशेषता यह थी कि इसका केन्द्र राजा था। शतवर्षीय युद्ध ने फ्रांस की बड़ी बर्बादी की, किन्तु राज्य की शक्ति पहले किसी भी समय की अपेक्षा अधिक हो गयी। फ्रांसीसी राजाओं ने युद्ध की आवश्यकताओं के कारण ''एस्टेट्स जनरल'' को बुलाये बिना भी लोगों पर कर लगाने का अधिकार प्राप्त

कर लिया। इस प्रकार वे एक स्थायी सेना रखने में समर्थ हुए। अब राजा के अलावा किसी दूसरे को सेना खड़ी करने और उसे बनाये रखने का अधिकार नहीं था। एक नियमित सेना और उसके निर्वाह के लिए उचित धन के द्वारा फ्रंास के राजा असीम शक्ति के रास्ते पर अग्रसर थे।

निरंकुश राजसता की स्थापना को अधिक सुदृढ़ आधार प्रदान किया- लुई ग्याहरवें (1461-1483 ई0) ने उसके शासनकाल में फ्रांस को तीव्र वाणिज्य की उन्नति और देश में शान्ति व्यवस्था की स्थापना के उद्देय से सर्व साधारण जनता, विशेषकर मध्यम वर्ग ने सामंतों के विरूद्ध राजतंत्र का समर्थन किया। अतः लुई ने व्यावहारिक बुद्धि, कुशलता तथा सफल कूटनीति द्वारा सामंतों की शक्तियों एवं जागीरों को छीन लिया। साथ ही, उसने सामन्तीय न्यायालयों को समाप्त कर राजकीय न्यायालयों की प्रभुता कायम की। उसने चर्च पर भी अंकुश लगाया। लुई ने कई ऐसे कदम उठाये जिनमें फ्रांस शक्तिशाली बना। इन कदमों में उद्योग धन्धों के विकास हेतु संरक्षण प्रदान करना, जहाजों का निर्माण, बन्दरगाहों को विकसित करना, समस्त राज्य में एक सी मुद्रा, नाप-तौल कानून इत्यादि व्यवस्थाएं शामिल थी। फ्रांस के इतिहास में लुई ग्यारहवें का शासनकाल एक युगान्तकारी घटना समझी जाती है, क्योंकि उसने फ्रांसीसी राज्य सीमाएं विस्तृत की एवं निरंकुश राजतंत्र तथा सुदृढ़ राष्ट्र की नींव डाली। जब लुई मरा तब फ्रांस का मानचित्र बहुत कुछ वैसा ही था, जैसा आज दिखायी पड़ता है। सोलहवीं शताब्दी में धार्मिक युद्ध से उत्पन्न अव्यवस्था ने निरंकुश राजतंत्र को और अधिक मान्यता, समर्थन एवं बल प्रदान किया। हेनरी चतुर्थ (1589-1610) का उल्लेख फ्रांसीसी राजाओं के इतिहास में महान राजा के रूप में ही नहीं, लोकप्रिय राजा के रूप में भी होता रहा है। उसने एक नये राजवंश की शुरूआत की जो दो सौ वर्षो तक फ्रांस पर शासन करता रहा। वह बूर्वो वंश का संस्थापक था, जिसने फ्रांस को ही नहीं यूरोप को भी सबसे शक्तिशाली राजा प्रदान किये। उसके सबसे महत्वपूर्ण कार्यो में एक था - राजाओं की शक्ति की प्रभुता को पुनः स्थापित करना।

हेनरी चतुर्थ के बाद 1617 ई0 में बालिग होने पर लुई तेरहवें ने राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले ली। लुई तेरहवें में प्रशासकीय क्षमता एंव योग्यता का अभाव था, किन्तु सौभाग्य से उसे कार्डिनल रिशलू नामक एक असाधारण व्यक्ति की अमूल्य सेवाएं प्राप्त की, जिसे उसने 1624 ई0 में प्रधानमंत्री बनाया। वह मृत्यु पर्यन्त (1642 ई0) इस पद पर बना रहा। योग्य और ओजस्वी रिशलू के अपनी सरकार के सम्बन्ध में दो लक्ष्य थे-

1- राजा को फ्रांस में सम्प्रभु बनाना।

2- फ्रांस को यूरोप में सर्वश्रेष्ठ बनाना।

रिशलू ने ऐसी तमाम गढ़ियों को बर्बाद कर दिया जो राष्ट्र के लिए आवश्यक नही थी तथा चालबाजों को गुप्तचरों द्वारा ठिकाने लगा दिया। राजा की शक्ति का विरोध करने वाला दूसरा वर्ग काल्विनदायी प्रोस्टेन्टों का था, जिन्हें ''ह्यूगनाट'' कहा जाता था। रिशलू ने ह्यूगनाटों को दबा दिया। रिशलू ने एस्टेट्स जनरल की बैठकें बुलाने से इंकार कर दिया। इस बात से राजा मनमाना काम करने को स्वतंत्र हो गया। राजा कानून बनाने और उन्हें लागू करने लगा। वह कर लगाने और उन्हें खर्च करने लगा। इस तरह रिशलू निरंकुश राजतंत्र का प्रमुख निर्माता था।

रिशलू की मृत्यु के बाद अगले राजा लुई चौदहवें (1643-1715 ई0) की अल्प- वयस्कता के समय, कार्डिनल मेजारिन ने सन् 1661 तक फ्रांस का कार्यभार संभाला। उसने रिशलू की नीतियों को जारी रखा और जन विरोध (फ्रोंदे) के बावजूद लुई के निरंकुश राजतंत्र को दृढ़ किया। उसने विरोध को दबा दिया तथा राजनीतिक एवं वित्तीय मामलों में न्यायिक संस्था पार्लेमा के हस्तक्षेप का अधिकार छीन लिया। इस तरह राजतंत्र शक्तिशाली हो गया। रिशलू एवं मेजारिन के कायो ने ही लुई चौदहवें के निरंकुश राजतंत्र को सम्भव बनाया।

लुई 16वें (1774-1793 ई0) के समय फ्रांसीसी क्रांति ने फ्रांस में निरंकुशता का अन्त किया। अस्तु अब तक फ्रांस एक शक्तिशाली राष्ट्र-राज्य बन चुका था।

9.5.3 स्पेन

पिरेनीज पहाड़ के दक्षिण में भूमध्य सागर, अटलांटिक सागर और पुर्तगाल से घिरा पठारी इलाका स्पेन है। स्पेन आधुनिक काल के प्रारम्भ में यूरोप के सबसे शक्शिाली एवं उन्नत देशों में से एक था। स्पेन का अतीत स्वर्णिम रहा, किन्तु यह अल्पकालीन ही रहा, क्योकि स्पेन की महानता के भौतिक स्त्रोत उस देश में नहीं थे। दीर्घकालीन एकीकरण के प्रयासों के पश्चात् सोलहवीं सदी के प्रारम्भ में स्पेन में राष्ट्रीय राजतंत्र का उत्कर्ष सम्भव हुआ।

1469 ई0 में अरागान के युवराज फर्डिनेण्ड एवं कास्तील की उत्तराधिकारिणी इसाबेला के मध्य विवाह सम्पन्न हो गया। विवाहोपरान्त दोनो राज्यों - अरागान एवं कास्तील का एकीकरण स्वभाविक था। यह एक महत्वपूर्ण घटना थी। इनकी संयुक्त सेनाओं ने मूरो को परास्त किया एवं ग्रेनेडा पर 1492 ई0 में अधिकार कर लिया। इसी के साथ स्पेन को पूर्ण धार्मिक एवं राष्ट्रीय एकता प्राप्त हुई। अब स्पेन एक पूर्ण स्वतंत्र राष्ट्र बन गया।

यह उल्लेखनीय तथ्य है कि 14वीं एवं 15वीं शताब्दी में तुर्को के बढ़ते प्रभाव से आक्रान्त ईसाई जगत में जहाँ पूर्व में मुसलमानों का प्रभाव बढ़ता जा रहा था और साम्राज्य की राजधानी वियना भी सुरक्षित नहीं थी, वहाँ पश्चिम में स्पेन के सैनिकों ने मुसलमानों के सदियों पुराने प्रभाव का अन्त कर दिया और ईसाई प्रभाव की पुर्नस्थापना की। कोई भी अन्य वस्तु स्पेनिस राजतन्त्र के लिए इससे बढ़कर गौरव और उन्नति नहीं ला सकती थी। पोप अलेक्जेण्डर षष्ठ ने फर्डिनेन्ड एवं ईसाबेला को कैथोलिक राजाओं की उपाधि प्रदान की। किन्तु इस महत्वपूर्ण समय में स्पेन के राजा अपनी राजवंशी महात्वाकांक्षाओं में फंस गये, जिसने अगली दो शताब्दियों तक थका देने वाले संघर्षो में स्पेन को व्यस्त रखा।

स्पेन ने यूरोपीय राजनीति में अपनी महत्वपूर्ण स्थिति बनाने के लिए अपना ध्यान वैदेशिक तथा औपनिवेशिक विस्तार की ओर आकृष्ट किया। कोलम्बस की खोज ने अमेरिका में वृहत्तर स्पेनिस साम्राज्य स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त किया। शीघ्र ही अमेरिका के अधिकांश भाग पर स्पेन का प्रभुत्व स्थापित हो गया। इन प्रदेशों में सोने-चाँदी की बहुलता थी। इस प्रकार स्पेन को एक ऐसा कल्पवृक्ष प्राप्त हुआ जिसने उसको आधुनिक काल के प्रारम्भ में यूरोप के सबसे शक्तिशाली एवं उन्नति देशों की श्रेणी में ला खड़ा करने में उल्लेखनीय योगदान दिया।

फर्डिनेन्ट एवं ईसाबेला ने राज्य के समस्त राजनीतिक अधिकारों को केन्द्रित करने तथा समस्त राज्य में धार्मिक एकता स्थापित करने की नीति अपनायी। उन्होंने राजपद की गौरव वृद्धि के लिए एक शक्तिशाली केन्द्रित शासन स्थापित

किया। उदण्ड स्वतन्त्र सामन्तों को दबाकर राज्य में शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित की एवं लुटेरों का दमन कर व्यापार वाणिज्य तथा आवागमन के साधनों में वृद्धि की।

स्पेन के एकीकरण व राष्ट्रीयकरण के मार्ग में अन्तिम महत्वपूर्ण कदम सन् 1512 ई0 में उठाया गया, जब स्पेन ने फ्रांस को परास्त कर नैवारे पर अधिकार स्थापित कर लिया। ईसाबेला और फर्डिनेन्ड के संयुक्त प्रयासों के परिणामस्वरूप आधुनिक एवं शक्तिशाली स्पेन राष्ट्र का निर्माण संभव हुआ।

फर्डिनेंड की मृत्यु के बाद उसकी बड़ी पुत्री का पुत्र चार्ल्स प्रथम (1516-1556 ई0) के नाम से स्पेन की गद्दी पर बैठा। 1519 ई0 में चार्ल्स-। पवित्र रोमन साम्राज्य का सम्राट चुना गया। पवित्र सम्राट के रूप में वह चार्ल्स पंचम कहलाया। उसने स्पेन के अतिरिक्त पवित्र रोमन साम्राज्य, नीदरलैण्ड्स, बर्गडी, नेपल्स, सिसली, सार्डीनिया, सम्पूर्ण स्पेनिश अमेरिका, फिलिपाइन्स और अफ्रीका के कुछ भागों पर शासन किया। निःसन्देह उसने दुनिया के सबसे बड़े भू-भाग पर शासन किया। चार्ल्स के शासनकाल में स्पेन अपने गौरव की पराकष्ठा पर पहुँचा। किन्तु यह पराकष्ठा स्थायी नहीं रह सकी।

9.5.4 रूस

आधुनिक काल की पूर्व संध्या पर रूस का राज्य एक सुदृढ़ केन्द्रीय शक्ति से रहित था और वह आन्तरिक सामन्तीय संघर्षो, डेनमार्क, नार्वे द्वारा रूस पर आक्रमणों एवं तातारों की विजय के कारण एक कमजोर एवं प्रभावहीन राज्य था। सोलहवीं शताब्दी में पुनर्जागरण की जो लहरे पश्चिमी यूरोप में प्रवाहित हो रही थी, रूस उन परिवर्तनों से अछूता रहा। उसका यूरोप के देशों में कोइ्र सम्बन्ध न था। वह लम्बे समय तक पिछड़ा हुआ राज्य रहा। किन्तु सोलहवीं सदी के आरम्भ में, ईवान महान (1492-1505 ई0) ने रूस की यथास्थिति को समाप्त किया। उसने सर्वप्रथम तातार प्रमुख का अंत किया एवं रूप में मस्कोवी निरंकुश साम्राज्य की स्थापना की। उसने ही पहले-पहल जार की उपाधि धारण की, जिसका रूसी भाषा में अर्थ है - सर्वोच्च सत्ताधारी स्वतंत्र शासक। ईवान महान् के पश्चात् ईवान भयंकर (1505-1584) ने जारशाही की शक्ति में पर्याप्त वृद्धि के साथ ही रूसी सीमा का विस्तार किया।

ईवान भयंकर की मृत्यु (1584 ई0) के पश्चात् रूस में 1613 ई0 तक का काल गृह-युद्ध एवं अराजकता का रहा। 1613 ई0 में इस दुर्व्यवस्था का अन्त करने के उद्देश्य से रूसी समान्तों ने परस्पर सहमति से सोलह वर्षीय माइकेल रोमानोम को जार पद पर नियुक्त किया। इस वंश का शासन रूसी क्रांति (1917 ई0) तक चलता रहा।

पीटर महान का शासनकाल (1682-1725 ई0) रूस के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इतिहासकार हेजन के शब्दों में पीटर की गणना विश्व इतिहास के अत्यधिक कर्मठ और शक्तिशाली शासकों में है।पीटर रूस को एक बड़ी शक्ति बनाना चाहता था। पीटर का कहना था कि ''पश्चिम के साथ स्वतंत्रता पूर्वक और सरलता से मिलने-जुलने के लिए यह आवश्यक है कि रूस कहीं एक खिड़की खोले, तभी उसमें बाहर से प्रकाश आ सकेगा।'' अर्थात् रूस के पास यूरोपीय समुद्रों में स्थित एक ऐसा बन्दरगाह होना चाहिए जो पूरे वर्ष जहाजों के उपयोग में आ सके। इसलिए पीटर की विदेश नीति का मुख्य उद्देश्य रूस के लिए पश्चिम की ओर ''खुली खिड़की'' या समुद्रतट प्राप्त करना था।

सन् 1697 में पीटर पश्चिमी यूरोप की यात्रा पर गया। इस यात्रा में उसका उद्देश्य तुर्की के विरूद्ध यूरोप के ईसाई राज्यों से सहायता प्राप्त करना था। यात्रा का असर जबरदस्त हुआ, क्योंकि पीटर इस इरादें को मन में भर कर लौटा व अपने देश को पश्चिम प्रणाली के अनुरूप ढालेगा। सदियों से बाकी दुनिया से कटा मस्कवी राज्य अपने द्वार यूरोप के लिए खोल देने की तैयारी में खड़ा था। पीटर ने अनुभव किया कि पश्चिम यूरोप रूस की अपेक्षा कहीं ज्यादा समृद्ध, शिक्षित और शक्तिशाली था। पीटर ने स्वदेश लौटकर किया। नूसी विचारों एवं प्रथाओं का खण्डन किया। उसने समाज में सभ्य आचार-व्यवहार पर जोर दिया। स्त्रियों को प्रेरित किया कि वे पर्दा प्रथा छोड़ कर पाश्चात्य वेशभूषा में बाहर आएं। बड़े-बड़े सामन्तों को यूरोपीय सभ्यता सिखाई गयी। उसने अपने दरबारियों को लम्बा रूसी चोंगा पहनने बन्द करने और छोटे यूरोपीय वस्त्र पहनने एवं दाढ़ी साफ करने का हुक्म दिया, जो लोग दाढ़ी रखना चाहते थे, उन्हें कर देने के लिए विवश किया।

पीटर ने रूस में यूरोपीय शिक्षा पद्धति को लागू किया। नगरों में स्कूल खोले गये, इंजीनियरिंग और चिकित्सा विद्यालयों की स्थापना की गयी और फ्रेंच शिक्षा का माध्यम बनी। पीटर के द्वारा एक विज्ञान अकादमी की स्थापना के लिए 1724 ई0 में निर्देश दिये गये थे, जिन्हें उसकी मृत्यु के बाद पूरा किया गया। उसके शासनकाल में ही सर्वप्रथम रूसी समाचार-पत्र का प्रकाशन शुरू हुआ और सार्वजनिक थियेटर खोला गया। देश में यूरोपीय पंचाग लागू किया गया। पीटर रूस का ऐसा पहला शासक था, जिसने आर्थिक श्रोत में एक संगठित नीति अपनायी। उसने कृषि का महत्व समझा और उसे प्रोत्साहित किया। उसके प्रोत्साहन से उद्योगों का विकास हुआ।

पीटर ने नियमित सेना की स्थापना की और उसके समुचित प्रशिक्षण की व्यवस्था की। किसानों के हष्ट-पुष्ट लड़के रूस की स्थायी सेना में भर्ती किये जाने लगे। सैनिकों के लिए यूनीफार्म की व्यवस्था की गयी, जर्मनी का अनुसरण करके उसने सेना एवं नौसेना में वृद्धि की, उसे अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित किया और नये ढंग की शिक्षा दी। इस तरह पीटर के तीनों उद्देश्य प्रथम - एक तंत्र की स्थापना, द्वितीय - पाश्चात्यीकरण और तृतीय - पश्चिम तथा दक्षिण में विस्तार लगभग पूर्ण हुए।

इतिहासकार हेज ने लिखा है - ''रूस के सैन्यवादी शासन का निर्माण, रूसी चर्च की स्वतन्त्रता व सत्ता का अन्त, रूसी समाज का कायाकल्प, रूसी रहन-सहन, व्यवहार एवं परम्पराओं का यूरोपीयकरण, सुदृढ़, निरंकुश जारशाही की स्थापना, साम्राज्यवादी विस्तार, इत्यादि कार्यो का श्रेय पीटर महान को ही प्राप्त है।

9.5.5 प्रशा

प्रशा का उत्थान भी सत्रहवीं एवं अट्ठारहवीं सदी में हुआ। ब्रैण्डनवर्ग की डची के आधार पर इसका विकास हुआ और एक साम्राज्य के रूप में परिवर्तित हो गया। सत्रहवीं सदी में फ्रेडरिक विलियम (1640-1688 ई0) प्रशा का शासक बना। उसे ''इलेक्टर महान्'' भी कहा जाता था। उसने प्रशा की स्थिति को सुदृढ़ करने का निश्चय किया। उसने निरंकुश राजतंत्र स्थापित कर प्रशासनिक सुधार की शुरूआत की। निरंकुश राजतंत्र हेतु उसने एक विशाल सेना का संगठन किया। उसने स्थानीय प्रशासन को चलाने के लिए अपने मनोनीत व्यक्ति नियुक्त किये। प्रान्तीय प्रशासन में लोकप्रिय एस्टेट्स को धीरे-धीरे नष्ट किया। उसने आर्थिक सुधारों की तरफ भी ध्यान दिया। उसने कृषकों को ऐसी

जमीनों पर काम करने के लिए छः वर्ष तक करों से मुक्ति दी जो तीस वर्षीय युद्ध के कारण बंजर हो गयी थी। उसने सरकारी नियंत्रण के अन्तर्गत कारखानों को बढ़ावा दिया।

प्रशा के शासकों में फेडरिक महान (1740-1786 ई0) सर्वाधिक उल्लेखनीय है। उसके समय प्रशा का विकास चरम सीमा पर पहुँच गया। अपने शासन के प्रारम्भ से ही वह युद्धरत हो गया था, लेकिन उसने कृषि एवं उद्योग को भुलाया नहीं। किसानों और जमींदारों को वैज्ञानिक ढंग से खेती करने के लिए प्रोत्साहित किया। पहली बार आलू की खेती बड़े पैमाने पर शुरू की और आज भी जर्मन लोगों का मुख्य भोजन है। पशुपालन को बढ़ावा दिया गया। वह कर वसूल करने वाले कर्मचारियों पर कड़ी नजर रखता था, वह स्वयं एक-एक पैसे का हिसाब रखता था, चाहे उसका निजी खर्चा हो या राज्य का, इसलिए दूसरे भी अपव्यय करने से डरते थे। सांस्कृतिक विषयों में उसकी सहज रूचि थी। उसके अनुरोध पर ही बाल्तेयर उसके दरबार में मित्र की भाँति रहने लगा, यद्यपि बाद में दोनो में बन न सकी। खाने की मेज पर वह राजनीति से अधिक साहित्य की चर्चा करना पसन्द करता था। राजधानी बर्लिन में अकादमियाँ स्थापित हुई, और लेखकों, कलाकारों को संरक्षण दिया जाने लगा। विज्ञान में उसकी विशेष रूचि थी, इसलिए ऐसी परम्पराएं डाली गयी जिनका विकास होने पर दुनिया के सबसे बड़े वैज्ञानिक देशों में प्रशा का नाम गिना जाने लगा।

विदेश नीति के मामलों में फेडरिक का उद्देश्य प्रशा की सीमाओं का विस्तार करना था। फ्रेडरिक ने साइलेशिया को आस्ट्रिया से बलात् छीन लिया। प्रशा की समृद्धि के लिए साइलेशिया का प्रदेश बहुत महत्वपूर्ण हो सकता था। सप्तवर्षीय युद्ध की समाप्ति के नौ वर्ष पश्चात् पोलैण्ड का प्रथम विभाजन प्रशा, आस्ट्रिया और रूस के मध्य हो गया। फेडरिक को इस विभाजन से पश्चिमी पोलैण्ड का क्षेत्र मिला और प्रशा की सीमाएं पूर्व में रूस के करीब पहुँच गयी।

यह तथ्य है कि फ्रेडरिक दुनिया के कुछ सबसे प्रसिद्ध शासकों में है। जर्मनी को एक राष्ट्रीय शक्ति के रूप में विकसित करने के कारण जर्मन इतिहासकारों ने इसकी अत्यधिक प्रशंसा की है। वह एक कुशल सैनिक, दक्ष सेनानायक, चतुर राजनीतिज्ञ, महान् सुधारक और प्रबद्ध निरंकुश शासक था। फेडरिक ने सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह किया कि उसने यह सिद्ध कर दिया कि जर्मनी में आस्ट्रिया का एकाधिकार नहीं चल सकता। यह खेद ही रहा कि उसने देश में कट्टर निरंकुशता स्थापित करके लोगों में राजनीतिक चेतना को विकसित नहीं होने दिया।

9.6 समीक्षा

दुर्भाग्य से राष्ट्रीय राज्यों का उदय यूरोप में शांति स्थापित नहीं कर सका। मध्यम वर्ग द्वारा समर्पित राष्ट्रीय राजाओं ने सामन्ती युद्धों को समाप्त करने तथा आंतरिक शान्ति और व्यवस्था के नाम पर युद्ध किया। परन्तु सामन्ती युद्धों के बाद राष्ट्रीय और वंशानुगत युद्धों की शुरूआत हुई। आधुनिक काल के प्रारम्भ में चार शक्तिशाली राष्ट्रीय राजतंत्र- स्पेन, पुर्तगाल, फ्रांस और इंग्लैण्ड का उदय हुआ और इन्होंने यूरोपीय राजनीति पर प्रधान्य कायम किया।

सोलहवीं एवं सत्रहवीं शताब्दियों में यूरोप में उदीयमान राष्ट्रीय शासकों ने राष्ट्रीय चेतना की नींव रखी। यही चेतना राष्ट्रीय राज्यों के निर्माण में सहायक सिद्ध हुई। युद्धों में बढ़ते व्यय ने सभी देशों में कर को अधिकाधिक बढ़ा दिया था एवं इस प्रश्न को लेकर राजतंत्रीय राज्यों का समाज की नवोदित शक्तियों के साथ संघर्ष आरम्भ हुआ। नवोदित वर्ग कर की सीमा सीमित रखना चाहते थे। करारोपण के प्रश्न को लेकर सभी जगह शासकों का विरोध हो रहा था। किन्तु

लगभग सभी स्थानों पर विरोध का संगठित रूप देने की सुविधाएं उपलब्ण न थी। इंग्लैण्ड एक अपवाद था। वहाँ नवोदित वर्ग जिसमें व्यापारी, पढ़ा-लिखा मध्यम वर्ग, कुछ भू-स्वामी आदि थे, ने राजतंत्र पर अन्य देशों की तुलना में शीघ्र ही नियंत्रण स्थापित कर लिया। राष्ट्रीय राज्यों के उदय से कुछ सुपरिणाम भी निकलें। सामन्तवाद समाप्त हुआ। आर्थिक विकास के कारण उत्पादन बढ़ा। तकनीकी क्षेत्र में नवीन प्रणालियाँ खोजी गयी। अब राष्ट्रों की सीमाएं भी अधिकाधिक निश्चित और तर्क संगत हो गयी। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि आज की राष्ट्रीय चेतना कल के निरंकुशवाद की देन है।

9.7 निरंकुशता का पतन

अतः अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लोकप्रिय सरकारों की माँग ने निरंकुशता की जड़े कमजोर कीं। कालान्तर में जनता ने निरंकुशता पर सीधा प्रहार करना शुरू कर दिया। जनता ने अनुचित कानूनों तथा राजा के असीमित अधिकारों का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। विरोध करने वालों में समाज के वे हिस्से भी शामिल थे, जिन्होंने पहले शक्तिशाली राजाओं का समर्थन किया था। जनता ने शासकों के निरंकुश अधिकारों में कटौती तथा राजसत्ता में हिस्सा देने की माँग शुरू की। शासकों और जनता का परस्पर विरोध सबसे पहले इंग्लैण्ड में सामने आया। इसके बाद अमेरिका की क्रांति एवं फ्रांस की क्रांति ने निरंकुशता को एक जोरदार धक्कता पहुँचाया।

9.8 सारांश

रोमन साम्राज्य एवं पोपशाही की अवनति के परिणामस्वरूप यूरोप राजनैतिक पटल पर महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे। सामन्तवाद के पतन, पुर्नजागरण एवं धर्म सुधार की कड़ी में ही नवीन निरंकुश राजतन्त्र का बीज भी छुपा है। सामन्तों के पतन एवं धर्म सुधार आन्दोलन में राजाओं की शक्ति को बढ़ाया। राजाओं ने अपनी शक्ति को बढ़ाने के लिए राष्ट्रीयता को साधन के रूप में अपनाया तथा सैनिक शक्ति बढ़ाकर राष्ट्रीय सीमा का विस्तार किया।

9.9 शब्दावली

गुलाबों का युद्ध - यार्क लोगों का प्रतीक सफेद गुलाब था और लंकास्टर लोगों का ला गुलाब। इसी कारण यह युद्ध ''गुलाबों का युद्ध'' कहलाता है।

धर्मयुद्ध - चौदहवीं सदी के आरम्भ में स्पेन में तीन प्रमुख ईसाई राज्य थे - पूर्व में अरागान मध्य में कास्तील, उत्तर में नैवारे, दक्षिण में सिर्फ एक मुसलमान (मूर) राज्य ग्रेनेडा था। यद्यपि इन ईसाई राज्यों में प्रतिद्वन्दिता थी, परन्तु ग्रेनेडा में मुस्लिम राज्य कें विरूद्ध इनका संघर्ष जारी था।

वैवाहिक सम्बन्ध - इन वैवाहिक सम्बन्धों में सबसे महत्वपूर्ण उसकी लड़की का आस्ट्रिया के राजघराने के साथ सम्बन्ध स्थापित करना है। उसकी ज्येष्ठ पुत्री जोआना एवं आस्ट्रिया के हैप्सबर्ग युवराज फिलिप प्रथम (सम्राट मैक्सीमिलयन एवं साम्राज्ञी मेरी का पुत्र) का वैवाहिक सम्बन्ध यूरोपीय इतिहास एवं हैप्सवर्ग राजवंश के उत्थान एवं प्राधान्य में महत्वपूण्र सिद्ध हुआ। युवराज फिलिप की माता नीदरलैण्ड्स की उत्तराधिकारिणी थी और पिता सम्पूर्ण आस्ट्रियन साम्राज्य एवं पवित्र रोमन साम्राज्य का अधिपति था। अतः उत्तराधिकारी के रूप में फिलिप सम्पूर्ण नीदरलैण्ड्स आस्ट्रियन साम्राज्य तथा पवित्र रोमन साम्राज्य का अधिकारी था। फिलिप और जोआना से 1500 ई0 में

चार्ल्स का जन्म हुआ, यही चार्ल्स कालान्तर में चार्ल्स पंचम के नाम से प्रद्धि हुआ। यह संयोग ही था कि चार्ल्स को निकटतम उत्तराधिकारी के रूप में अपने पिता, माता, नाना और पितामह की क्रमशः मृत्यु से उनका सम्पूर्ण विशाल साम्राज्य हाथ लग गया।

इन्क्वीजिशन - धर्म विरोधियों के दमन हेतु स्पेन में 1480 ई0 में इन्क्वीजिशन ;प्दुनपेपजपवदद्ध नामक विशेष धार्मिक न्यायालय स्थापित किये गये।

स्टेट्स जनरल - फ्रांस की राष्ट्रीय सभा।

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1- ए हिस्ट्री आफ वर्ल्ड सिविलाइजेशन - जे0ई0 स्वेन

2- द आउट लाइन आफ हिस्ट्री - एच0जी0 वेल्स

3- विश्व इतिहास - जैन एवं माथुर

4- आधुनिक पश्चिम का उदय - पार्थसारथि गुप्ता

9.11 बोध प्रश्न

निम्न प्रश्नों में सही और गलत का निशान लगायें -

प्र01- शतवर्षीय युद्ध इंग्लैण्ड एवं फ्रांस के मध्य हुआ था। ( )

प्र02- ईसाबेला एवं फर्डिनेन्ड स्पेन के शासक थे। ( )

प्र03- लुई चौदहवाँ प्रशा का शासक था। ( )

प्र04- पीटर महान को आधुनिक रूस का जन्मदाता कहा जाता है। ( )

प्र05- रिशलू एवं मेजारिन ने फ्रांस में निरंकुश राजतंत्र बनाने में सर्वाधिक भूमिका निभाई ( )

निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए -

प्र06- निरंकुश वाद की क्या विशेषताऐं हैं?

प्र07- निरंकुश राजतंत्र के उदय के कारणों की समीक्षा करें?

प्र08- निरंकुशता का पतन क्यों हुआ? कारण बताऐं।

प्र09- आधुनिक रूस के निर्माण में पीटर महान की भूमिका की जाँच करें?

प्र010- फ्रेडरिक महान की नीतियों एवं कार्यो ने प्रशा को आधुनिक यूरोप का एक शक्तिशाली राष्ट्र बनाया? इस कथन की समीक्षा करें।

9.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र01- सही (□)

प्र02- सही (□)

प्र03- गलत (ग्)

प्र04- गलत (✗)

प्र05- सही (✓)

प्र06- देखें बिन्दु-3

प्र07- देखें बिन्दु-4

प्र08- देखें बिन्दु-7

प्र09- देखें बिन्दु-5.4

प्र010- देखें बिन्दु-5.5

9.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. निरंकुश राष्ट्रीय राज्यों के उदय पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

भौगोलिक खोजें ,प्रारंभिक औपनिवेशिक साम्राज्य, वाणिज्यिक क्रान्ति

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 भौगोलिक खोजें

10.3.1 भौगोलिक खोजों की तत्कालीन आवश्यकता एवं उनके लिए अनुकूल परिस्थितियां

10.3.2 भौगोलिक खोजों में पुर्तगाल व स्पेन की भूमिका

10.3.3 भौगोलिक खोजों में नीदरलैण्ड, फ्रांस, इंग्लैण्ड तथा रूस की भूमिका

10.3.4 भौगोलिक खोजों के परिणाम

10.3 प्रारम्भिक औपनिवेशिक साम्राज्य

10.4.1 यूरोपीय राज्यों की साम्राज्य विस्तार की महत्वाकांक्षा

10.4.2 पुर्तगाल तथा स्पेन के औपनिवेशिक साम्राज्य -

10.4.3 डच तथा फ्रांसीसी औपनिवेशिक साम्राज्य

10.4.4 ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्य

10.5 औपनिवेशिक शासन के सामान्य लक्षण

10.5.1 धर्म-परिवर्तन

10.5.2 दास-व्यापार एवं दास प्रथा

10.5.3 विजित जाति का दमन

10.5.4 औपनिवेशिक शासकों द्वारा उपनिवेशों का दोहन तथा वहां अपने सामाजिक, धार्मिक,सांस्कृतिक, शैक्षिक एवं प्रशासनिक मूल्यों की स्थापना

10.5.5 यूरोप में पूंजीवाद, वाणिज्यवाद का उदय और परवर्ती काल में औद्योगिक क्रान्ति के लिए अनुकूल परिस्थितियां

10.5.6 यूरोपीय देशों में निरंकुश राजतन्त्र को बढ़ावा

10.5.7 यूरोप में कला का विकास

10.5.8 यूरोपीय देशों के मध्य पारस्परिक स्पर्धा में वृद्धि

10.5.9 उपनिवेशों में सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक और राजनीतिक जागृति का सूत्रपात

10.6 वणिकवाद (Mercantilism)

10.6.1 वणिकवाद की प्रमुख विशेषताएँ

10.6.2 वणिकवाद के मुख्य सिद्धांत:

10.6.3 वणिकवाद के प्रभाव

10.6.4 वणिकवाद की आलोचना

10.7 वाणिज्यवाद (Commercialism)

10.7.1 वाणिज्यवाद की मुख्य विशेषताएँ

10.7.2 वाणिज्यवाद के प्रभाव

10.7.3 वणिकवाद और वाणिज्यवाद में अंतर

10.8 वाणिज्यिक क्रान्ति

10.8..1 वाणिज्यिक क्रान्ति का उद्भव एवं उसकी परिभाषा

10.8.2 वाणिज्यिक क्रान्ति का विकास

10.8.3 वाणिज्यिक क्रान्ति के परिणाम

10.9 सारांश

10.10 पारिभाषिक शब्दावली

10.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

10.13 उपयोगी पाठ्य सामग्री

10.14 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

इतिहास को गति, दिशा एवं अर्थ प्रदान करने में भौगोलिक उपकरणों तथा भौगोलिक खोजों ने अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। नवीन भौगोलिक खोजें आने वाले परिवर्तनों का वाहक बनीं। यूरोपीय देशों में पुर्तगाल ने भौगोलिक खोजों के क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभाई थी। आगे चलकर स्पेन, नीदरलैण्ड, फ्रांस और इंग्लैण्ड ने भी नई खोजें करने में अपना योगदान दिया था। 1453 में तुर्कों द्वारा कॉन्स्टैन्टिनोपल पर अधिकार करने के बाद पश्चिमी यूरोपीय देशों के लिए यूरोप और पूर्व के मध्य एशिया माइनर और सीरिया से होकर जाने वाला भू-क्षेत्रीय मार्ग अवरुद्ध हो चुका था। बार्तोलोम्यू डियाज, कोलम्बस, वास्कोडिगामा, वोराज़ानो, हॅरमन कोर्टेस, जे0 कार्तियर, जॉन स्मिथ आदि ने अफ्रीका, एशिया तथा अमेरिका में अज्ञात क्षेत्रों की खोज की।

भौगोलिक खोजों से यूरोपीय देशों को अफ्रीका, एशिया तथा अमेरिका में सैनिक दृष्टि से कमज़ोर किन्तु प्राकृतिक संसाधनों में समृद्ध क्षेत्रों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर अपने-अपने औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित करने का अवसर मिला। प्रारम्भिक औपनिवेशिक साम्राज्यों के काल को हम औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व तक का काल मान सकते हैं। उपनिवेशवाद ने यूरोपीय राज्यों के संसाधनों में अपार वृद्धि की। राजनीतिक दृष्टि से इसने शासकों को अधिक साधन-सम्पन्न बनाकर यूरोप में निरंकुश राजतन्त्र को सुदृढ़ बनाया। पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क में आने से

औपनिवेशिक प्रजा को भी भौतिक प्रगति का महत्व समझ में आने लगा और धीरे-धीरे उपनिवेशों में सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक चेतना का विकास होने लगा।

यूरोप में वाणिज्यिक क्रान्ति का सूत्रपात भौगोलिक खोजों के दौर से पहले ही हो चुका था किन्तु भौगोलिक खोजों ने वाणिज्यिक क्रान्ति को और सशक्त व व्यापक बना दिया था। 16 वीं एवं 17 वीं शताब्दी में वाणिज्यिक क्रान्ति अपनी उन्नति और विकास के चरम शिखर पर पहुँच गई। वाणिज्यिक क्रान्ति के दौर में व्यापक स्तर पर व्यापार-वाणिज्य का संगठन विकसित हुआ। यह वाणिज्यिक क्रान्ति, सामान्य व्यावसायिक गतिविधियों में, तथा वित्तीय सेवाओं (बैंकिंग, बीमा, निवेश आदि) की वृद्धि में परिलक्षित हुई। वाणिज्यवाद ने उपनिवेशवाद को बढ़ावा दिया। वाणिज्यिक क्रान्ति के प्रमुख परिणामों में सामन्तवाद का पतन, पूंजीवाद का उदय, यूरोपीय सभ्यता का प्रसार, दास-प्रथा का पुनर्प्रचलन थे किन्तु इसका सबसे प्रमुख परिणाम औद्योगिक क्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार करना था।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको मध्यकाल के उत्तरार्ध व पुनर्जागरण काल के दौरान यूरोपीय देशों के आर्थिक, भौगोलिक तथा राजनीतिक विकास से, विशेषकर, भौगोलिक खोजों, प्रारम्भिक औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना, तथा वाणिज्यिक क्रान्ति से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- पन्द्रहवीं शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी के दौरान हुई भौगोलिक खोजों के कारणों तथा उनके परिणामों के विषय में।

2. यूरोपीय देशों द्वारा सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक एशिया, अफ्रीका तथा अमेरिका में औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना तथा उसके परिणामों के विषय में।

3- वाणिज्यिक क्रान्ति के उद्भव, विकास, परिणाम तथा भौगोलिक खोजों व उपनिवेशवाद से उसके घनिष्ठ सम्बन्ध के विषय में।

10.3 भौगोलिक खोजें

10.3.1 भौगोलिक खोजों की तत्कालीन आवश्यकता एवं उनके लिए अनुकूल परिस्थितियां

लॉर्ड एक्टन ने इतिहास में नई दुनिया की खोज को, विश्व को मध्यकाल से आधुनिक काल में प्रविष्ट कराने की दिशा में एक निर्णायक कारण माना है। अब यूरोपीय अपनी आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक महत्वाकांक्षाओं को साकार कर सकते थे। 13 वीं शताब्दी के अन्त में दिशासूचक यन्त्र 'कुतुबनुमा' तथा बाद में एस्ट्रोलोव (अक्षांश जानने का यन्त्र) तथा सैक्सटैन्ट के आविष्कार, उन्नत मानचित्रों के निर्माण, अधिक पाल वाले और चप्पू से चलने वाले जहाजों के निर्माण से अब यह सम्भव हो गया कि लम्बी समुद्र यात्रा द्वारा पश्चिम से पूर्व की ओर पहुंचा जाए। भौगोलिक ज्ञान तथा नौ-संचालन में पूर्वी देशवासियों की उपलब्धियों ने महान भौगोलिक खोजों को सम्भव बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। वाइकिंग्स तथा वेनीशियन व्यापारी मार्कोपोलो के अनुभवों ने पन्द्रहवीं व सोलहवीं शताब्दी में यूरोपीयों को नई भौगोलिक खोजों के लिए प्रेरित किया था। यूरोपीय देशों में माल के उत्पादन में वृद्धि, सोने और चाँदी

जैसी बहुमूल्य धातुओं की कमी, सोने, चाँदी,मसाले, मछली, लकड़ी, सूती एवं रेशमी वस्त्र, हाथी दाँत, कालीन, फ़र (लोम), विलासिता की सामग्री आदि मिलने की आशा में नए भू-क्षेत्रों की तलाश और यूरोप से भारत तथा पूर्वी एशिया के लिए नए समुद्री मार्गों खोजने की आकांक्षा ने पश्चिमी यूरोप के प्रतिस्पर्धी व्यापारियों को व्यापार-बिचौलियों के शोषण से बचने के लिए और एशिया के देशों से खुद सीधे सम्पर्क स्थापित करने के उद्देश्य, नाविक अभियानों के भेजे जाने के प्रमुख कारण थे।

10.3.2 भौगोलिक खोजों में पुर्तगाल व स्पेन की भूमिका

यूरोपीय देशों में पुर्तगाल ने भौगोलिक खोजों के क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभाई थी। 1415 में अफ्रीका के समुद्री तट स्यूटा पर पुर्तगाल का अधिकार हो जाने के बाद भौगोलिक खोजों के लिए अनुकूल वातावरण विकसित हो गया था। 'हेनरी दि नेवीगेटर' के नाम से प्रसिद्ध पुर्तगाल के राजकुमार हेनरी (1399-1460) ने सैग्रेस के तट पर एक अनुसन्धान केन्द्र की स्थापना की और वहां से खगोलशास्त्रियों, पोत निर्माताओं, मानचित्र विशेषज्ञों आदि की सहायता से नाविक अभियान भेजने प्रारम्भ किए। उसके प्रयासों का सुपरिणाम अज़ोर और मडेरिया द्वीपों की खोज के रूप में दिखाई पड़ा। राजकुमार हेनरी के इन अभियानों का उद्देश्य धर्म-प्रचार, वैज्ञानिक खोज और देश की प्रतिष्ठा व उसके अधीन भू-क्षेत्रों की वृद्धि करना था।1453 में तुर्कों द्वारा कॉन्स्टैन्टिनोपल पर अधिकार करने के बाद पश्चिमी यूरोपीय देशों के लिए यूरोप और पूर्व के हेनरी दि नेविगेटर मध्य एशिया माइनर और सीरिया से होकर जाने वाला भू-क्षेत्रीय मार्ग अवरुद्ध हो चुका था। सन् 1488 में पुर्तगाली नाविक बार्तोलोम्यू डियाज़ ने केप ऑफ़ गुड होप की खोज की थी। डियाज़, डी कैम आदि ने इसी वर्ष में अफ्रीकी महाद्वीप के समूचे पश्चिमी और दक्षिणी तटीय क्षेत्र की खोज कर ली थी। 'मैनुअल दि फ़ॉर्चुनेट' के संरक्षण में 1498 में पुर्तगाली नाविक वास्कोडिगामा ने अरब मार्गदर्शकों की सहायता से दक्षिण अफ्रीका होते हुए पश्चिमी यूरोप से भारत के लिए समुद्री मार्ग की खोज की थी। कालीकट के समुद्री तट पर पहुँचकर उसने भारत में औपनिवेशिक शासन की नींव का पहला पत्थर रखा। वास्कोडिगामा ने कहा था कि वह मसालों की प्राप्ति और ईसाई धर्म के प्रसार हेतु भारत पहुँचा है। वास्कोडिगामा द्वारा भारत के लिए समुद्री मार्ग की खोज से उत्साहित होकर पुर्तगाली 16 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में श्री लंका व सुदूर पूर्व में जावा व सुमात्रा तक पहुँच गए। 1517 में उन्होंने चीन के कैंटन में अपनी स्थायी बस्ती स्थापित की और 1542 तक वह जापान भी पहुँच गए।

10.3.3 भौगोलिक खोजों में नीदरलैण्ड, फ्रांस, इंग्लैण्ड तथा रूस की भूमिका

नीदरलैण्ड के नाविकों - विलेम जैन्सज़ून तथा एबेल टस्मन ने सत्रहवीं शताब्दी में ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड तथा पैसिफ़िक आइलैण्ड्स की खोज की थी। 'डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी' की ओर से ब्रिटिश नाविक हडसन ने वर्तमान काल के न्यूयॉर्क की खोज की थी। फ्रांसीसी नाविकों - वोराज़ानो तथा जे0 कार्तियर ने उत्तरी अमेरिका के पूर्वी तट तथा सेंट लारेन्स नदी की खोज की थी। इटालियन नाविक जॉन कैबॉट ने इंग्लैण्ड के शासक हेनरी सप्तम की ओर से 1499 में न्यू फ़ाउण्डलैण्ड की खोज की थी। सोलहवीं शताब्दी में रूसी खोजकर्ताओं ने साइबेरिया की खोज की थी।

10.3.4 भौगोलिक खोजों के परिणाम

1. यूरोपीय खोजों ने पूर्व पर पश्चिम की श्रेष्ठता स्थापित कर दी।

2. व्यापारिक गतिविधियों के साथ यूरोपीय देशों ने नए खोजे हुए क्षेत्रों में ईसाई धर्म-प्रचार कोभी अपना लक्ष्य बनाया। जेसुइट मिशन के फ्रांसिस ज़ेवियर ने मलक्का, मलाकू द्वीप, अम्बोनिया,टीमाटे, जापान, चीन और विशेषकर भारत के गोआ में ईसाई धर्म का व्यापक प्रचार किया।

3. भौगोलिक खोजों के बाद यूरोपीय व्यापार समस्त विश्व में फैल गया। इससे यूरोप में सामन्तवाद के पतन की प्रक्रिया तीव्र हो गई और पश्चिमी यूरोप में पूंजीवाद उभर कर आने लगा। सोने-चाँदी का अतुलित भण्डार आ जाने से यूरोप में आवश्यक वस्तुओं के दामों में अत्यधिक वृद्धि हो गई। व्यापार में भू-मध्यसागर के स्थान पर अटलान्टिक महासागर की महत्ता बढ़ जाने से इटली और जर्मनी जैसे देश आर्थिक दृष्टि से पिछड़ने लगे और नीदरलैण्ड व इंग्लैण्ड जैसे देश आगे बढ़ने लगे। अब भू-मध्य सागर व बाल्टिक सागर के बन्दरगाहों से अधिक महत्व लिस्बन, लन्दन व एम्सटर्डम के बन्दरगाहों का हो गया।

4. भौगोलिक खोजों ने ज्ञान की अन्य विधाओं जैसे वनस्पतिशास्त्र, जन्तुशास्त्र, मानव-जाति विज्ञान आदि में नई खोजों के अवसर उपलब्ध कराए। यूरोपीयों ने आलू, मक्का, टमाटर और तम्बाकू की खेती करना शुरू कर दिया। राष्ट्रीय संसाधनों में वृद्धि के कारण कला की विभिन्न विधाओं को शासक वर्ग तथा धनाढ्य वर्ग द्वारा प्रोत्साहन दिया जाने लगा और वैज्ञानिक आविष्कारों के लिए समुचित धन भी उपलब्ध कराया जाने लगा जिसका कि परिणाम कला व विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति के रूप में दिखाई दिया।

5. भौगोलिक खोजों ने यूरोपीय देशों के मध्य प्रतिस्पर्धा को बढ़ाया जिसकी परिणति अनेक बार भीषण युद्धों में हुई।

6. भौगोलिक खोजों के फलस्वरूप व्यापारिक गतिविधियों में अप्रत्याशित वृद्धि ने पूंजीवाद व राष्ट्रीय वाणिज्यवाद को बढ़ावा दिया और अनेक व्यापारिक बैंकों की स्थापना हुई। वाणिज्यिक व्यवस्था के उत्थान के कारण सभी यूरोपीय शक्तियों ने निर्यात को बढ़ावा देने और आयात को घटाने के प्रयास किए।

7. भौगोलिक खोजों ने उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद के उदय को सम्भव बनाया।

10.4 प्राम्भिक औपनिवेशिक साम्राज्य

10.4.1 यूरोपीय राज्यों की साम्राज्य विस्तार की महत्वाकांक्षा

पन्द्रहवीं शताब्दी तथा सोलहवीं शताब्दी तक यूरोपीय देशा ने समुद्री मार्ग द्वारा दुनिया के एक बड़े भाग की खोज कर ली थी । पुनर्जागरण के दौरान वैज्ञानिक व तकनीकी प्रगति के परिणाम स्वरूप यूरोपीय देशों ने न केवल नौ-चालन के क्षेत्र में बहुत प्रगति कर ली थी अपितु अस्त्र-शस्त्र के क्षेत्र में भी समान रूप से प्रगति कर ली थी। अब यूरोपीय शक्तियों के पास दुनिया के शेष सभी देशों की तुलना में अधिक मारक शक्ति के हथियार थे और आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित उनकी थल सेनाएं व नौ-सेनाए भी सबसे सुगठित व आधुनिक रणनीति में पारंगत थीं। इन अनुकूल परिस्थितियों में अनेक यूरोपीय देशों में **'ग्रीड ऑफ़ गोल्ड एण्ड लस्ट फ़ॉर ग्लोरी'** (धन का लोभ और यश की लालसा) की भावना के वशीभूत होकर औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना की महत्वाकांक्षा उत्पन्न हुई। इसके अतिरिक्त अपने-अपने विजित क्षेत्रों में अपने धर्म अर्थात् ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार की आकांक्षा ने भी यूरोपीय देशों

को अपने-अपने औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित करने की प्रेरणा दी थी। वास्तव में औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना के प्रारम्भिक दौर में यूरोपीय देशों का प्रमुख प्रेरक कारण धर्म-प्रचार था न कि विजित क्षेत्रों में अपना राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करना। परन्तु बाद में आर्थिक कारणों से, विशेषकर व्यापारिक लाभ हेतु उपनिवेशों की स्थापना की जाने लगी। अपने देश में उत्पादित माल की बिक्री के लिए नए बाज़ारों की तलाश और अपने यहां तैयार उत्पादों के लिए आवश्यक कच्चे माल की सस्ते में और नियमित एवं निर्बाध आपूर्ति की समस्या, इन दोनों का ही समाधान अधिक से अधिक और बड़े से बड़े उपनिवेशों की स्थापना में मिल सकता था।

10.4.2 पुर्तगाल तथा स्पेन के औपनिवेशिक साम्राज्य

आधुनिक काल में औप्निवेशिक साम्राज्य की स्थापना का इतिहास पुर्तगाल तथा स्पेन के साहसिक प्रयासों से प्रारम्भ होता है। पूर्वी गोलार्ध एवं पश्चिमी गोलार्ध, दोनों में ही यूरोपीय उपनिवेशवाद के मूल में भौगोलिक अन्वेषण के क्षेत्र में पुर्तगाली व स्पेनिश उपलब्धियां थीं। अपने व्यापारिक लाभ और धर्म-प्रचार अभियान को स्थायित्व देने के लिए पुर्तगालियों ने अफ़्रीका, एशिया और अमेरिका में अपने उपनिवेश स्थापित करने के प्रयास किए किन्तु इसमें उनका सामना स्पेन से हो गया। स्पेन और पुर्तगाल के मध्य औपनिवेशिक साम्राज्य के विस्तार विषयक प्रतिस्पर्धा को समाप्त करने के लिए पोप ने हस्तक्षेप कर दोनों राज्यों के मध्य 7 जून, 1494 को क्रिस्टोफ़र कोलम्बस टार्डिसिलास की सन्धि हुई जिसके अन्तर्गत खोज की गई नई दुनिया को स्पेन और पुर्तगाल (इबेरियन राज्यों) के मध्य बांट दिया गया। इस नई दुनिया का पूर्वी भाग (अफ्रीका, सुदूर पूर्व, श्री लंका आदि) पुर्तगाल के अधीन और पश्चिमी भाग (उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका) स्पेन के अधीन रखा गया। परन्तु 1500 में पुर्तगाली नाविक कैबराल अपने भारतीय अभियान में गल्ती से ब्राज़ील पहंुच जाने से पश्चिमी गोलार्ध में पुर्तगाल के अधिकार में ब्राज़ील आने का मार्ग प्रशस्त हो गया। पूर्वी गोलार्ध में पुर्तगाली औपनिवेशिक साम्राज्य का विस्तार अफ़्रीका में मोज़ाम्बीक तथा मैडागास्कर में, तथा एशिया में श्री लंका, मलेशिया (मलक्का को शामिल कर), इण्डोनेशिया, मकाउ, पूर्वी तिमोर, गोआ, दमन, दिउ, बॉम्बे (बाद में अंग्रेज़ो के अधीन) और चीन व जापान के कुछ भागों तक हो गया।

कोलम्बस द्वारा 1492 में नई दुनिया की खोज के बाद स्पेन ने पश्चिमी गोलार्ध में न्यू स्पेन, पेरू, अर्जेन्टिना, कोलम्बिया, वैस्टइंडीज़, मैक्सिको में अपने उपनिवेश स्थापित किए। सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक दक्षिणी अमेरिका का अधिकांश भाग स्पेन के औपनिवेशिक साम्राज्य का अंग बन गया। हॅरमन कोर्टेस ने मैक्सिकों में औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित किया। स्पेन के औपनिवेशिक शासन में अमानवीयता की सभी पराकाष्ठाओं को पार कर इण्डियन अमेरिकन्स का समूल विनाश कर दिया गया। स्पेन को अपने उपनिवेशों से इतना धन प्राप्त हुआ कि वहां के शासकों ने दीर्घकालीन धर्म-युद्ध किए जो आगे चलकर स्पेनिश शक्ति के पतन का कारण बने।

10.4.3 डच तथा फ़्रांसीसी औपनिवेशिक साम्राज्य

सोलहवीं शताब्दी में अपनी नौ-सैनिक शक्ति के उत्थान के फलस्वरूप सत्रहवीं शताब्दी तक नीदरलैण्ड व्यापारिक गतिविधियों में विश्व का एक अग्रणी देश बन गया था और एम्सटर्डम जहाजरानी, बैंकिंग तथा बीमा के क्षेत्र में यूरोप का सबसे प्रमुख केन्द्र बन गया था। 1594 में 'कम्पनी फ़ॉर फ़ारलैण्ड' तथा 1602 में 'डच ईस्ट इण्डिया

कम्पनी' तथा 1621 में 'डच वैस्ट इण्डीज़ कम्पनी' की स्थापना के बाद डच औपनिवेशिक साम्राज्य के विस्तार का मार्ग प्रशस्त हो गया। 1619 में डचों ने जकार्ता पर अधिकार कर लिया। 1638 में उन्होंने मॉरिशस पर अधिकार कर लिया। 1641 में उन्होंने मलक्का से पुर्तगालियों को निकाल कर उस पर अधिकार कर लिया। 1658 तक उनका श्री लंका पर अधिकार हो गया। भारत वास्कोडिगामा में 1662 में उन्होंने नागपट्टम, केरांगनोर, ट्रैवनकोर, तथा कोचीन पर अधिकार कर लिया। 1688 के बाद डच विलियम ऑफ़ औरैन्ज के ब्रिटिश सिंहासन पर बैठने के बाद यह निश्चित किया गया कि पूर्व में कपड़ा व्यापार पर अंग्रेज़ों का और मसाला व्यापार में डचों का वर्चस्व रहेगा। फ्रांसीसी औपनिवेशिक साम्राज्य का विस्तार उत्तरी अमेरिका में कैनाडा, मिसीसिपी नदी की घाटी, वैस्ट इण्डीज़ में - सेन्ट किट्स तथा फ्रेन्च गुयाना तथा भारत (पॉण्डिचेरी, चन्द्रनगर) तक हो गया था। भारत में आंग्ल-फ्रांसीसी प्रतिद्वन्द्विता में रॉबर्ट क्लाइव ने बंगाल और दक्षिण भारत में फ्रांसीसी शक्ति को अपंग बनाने में पूर्ण सफलता प्राप्त फ्रांसिस ज़ेवियर की थी।

10.4.4 ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्य

ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना की प्रक्रिया ट्यूडर काल में एलिज़ाबेथ प्रथम के शासन के अन्तिम वर्षों में प्रारम्भ हुई किन्तु स्टुअर्ट काल में सम्राट जेम्स प्रथम और विशेषकर, चार्ल्स द्वितीय के शासनकाल में यह गतिमान हो गई। 1583 में न्यू फ़ाउण्डलैण्ड में ब्रिटिश उपनिवेश स्थापित हुआ। प्रारम्भिक काल में व्यापारिक कम्पनियों तथा संयुक्त सार्वजनिक एवं निजी उपक्रमों ने ब्रिटिश उपनिवेशों की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इंग्लैण्ड की दृष्टि सोने-चाँदी की लालसा, व्यापारिक लाभ, गर्म मसालों, तम्बाकू और चीनी आदि के लिए अपना औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित करने पर थी किन्तु अमेरिका में इसके लिए स्पेन के औपनिवेशिक साम्राज्य के विस्तार के बाद ब्रिटेन को उत्तरी अमेरिका, मध्य अमेरिका व कैरिबियन में छोटे द्वीपों में तथा दक्षिणी अमेरिका में स्पेन से छूटे हुए क्षेत्र में ही सम्भावनाए बची थीं। सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में वर्जीनिया, बाल्टीमोर, मैरीलैण्ड, जेम्सटाउन, हॉण्ड्स आइलैण्ड, मैसाचुसेट्स, न्यू जेरेसी, जॉर्जिया, जॉर्जिया, अल्बानी, कॉनेक्टिकस, न्यू नीदरलैण्ड (बाद में इसका नाम न्यूयॉर्क रखा गया), पेन्सिलवेनिया, नॉर्थ तथा साउथ कैरोलिना में ब्रिटिश कॉलोनियां स्थापित हुईं।

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत में यूरोपीय उपनिवेशों की स्थापना के लिए अनुकूल परिस्थितियां बन गई थीं। आंग्ल-फ्रांसीसी प्रतिद्वन्द्विता में अंग्रेज़ों को विजय दिलाकर रॉबर्ट क्लाइव ने भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना की नींव डाली।

10.5 औपनिवेशिक शासन के सामान्य लक्षण

10.5.1 धर्म-परिवर्तन

पुर्तगाल तथा स्पेन के औपनिवेशिक साम्राज्य-विस्तार में रोमन कैथालिक चर्च ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इनमें एशिया में फ्रांसिस ज़ेवियर तथा उत्तरी अमेरिका में जैनिपैरो की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी। ईसाई धर्म का प्रचार सभी यूरोपीय उपनिवेशों में ईसाई धर्म का व्यापक प्रचार किया गया और इस धर्म प्रचार कार्यक्रम को औपनिवेशिक शासकों का संरक्षण प्राप्त था। लाखों--करोड़ों स्थानीय प्रजा को ईसाई धर्म में दीक्षित किया गया।

10.5.2 दास-व्यापार एवं दास प्रथा

यूरोप के अधिकांश शक्तिशाली देश - पुर्तगाल, स्पेन, नीदरलैण्ड, फ्रांस, ब्रिटेन आदि दास-व्यापार में लिप्त थे। नए उपनिवेशों को बसाने में तथा खेती सहित कठिन श्रम के सभी कार्यों के लिए न्यूनतम मज़दूरी पर कार्य करने वाले दासों से अधिक उपयोगी और कोई नहीं हो सकता था। 16 वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में फ्रांसिस ड्रेक तथा जॉन हॉकिन्स ने दास-व्यापार द्वारा इंग्लैण्ड के लिए प्रचुर मात्रा में धन कमाया था। अफ्रीका से लाकर लाखों दासों का अमेरिका में निर्यात करने के कारण इंग्लैण्ड के शहर ब्रिस्टल व लिवरपूल अत्यन्त समृद्ध हो गए थे। अश्वेत दासों के साथ उनके मालिकों द्वारा जो अमानवीय व्यवहार किया जाता था उसका शब्दों में वर्णन कर पाना असम्भव है। स्पेनवासी, अमेरिकन इण्डियन्स को गुलाम बनाना अपना अधिकार समझते थे। सेपुवेदा ने कहा था - 'अमेरिकी इण्डिन्स प्राकृतिक रूप से गुलाम होते हैं।'

10.5.3 विजित जाति का दमन

उपनिवेशवाद का अर्थ है - किसी सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली राष्ट्र द्वारा अपने विभिन्न हितों को साधने के लिए किसी सैनिक दृष्टि से निर्बल किन्तु प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण राष्ट्र पर अपनी शक्ति के बल पर अधिकार कर उसके संसाधनों का अपने हित में उपयोग करना। औपनिवेशिक शक्तियों ने जातीय श्रेष्ठता के सिद्धान्त का पालन करते हुए विजित जाति को कभी भी अपने समकक्ष नहीं समझा और न स्थानीय प्रजाजनों को प्रशासन, न्याय-व्यवस्था व सेना में उच्च पद प्रदान किए। स्थानीय व्यक्तियों की निर्मम हत्या, स्त्रियों के बलात्कार के लिए भी शासक जाति को प्रायः दण्डित नहीं किया जाता था। स्पेन के औपनिवेशिक शासकों ने अमेरिकन इन्डियन्स का समूल विनाश कर दिया। इस प्रकार की अमानुषिक बर्बरता का कोई अन्य उदाहरण मिल पाना असम्भव है।

10.5.4 औपनिवेशिक शासकों द्वारा उपनिवेशों का दोहन तथा वहां अपने सामाजिक, धार्मिक,सांस्कृतिक, शैक्षिक एवं प्रशासनिक मूल्यों की स्थापना

औपनिवेशिक शासन - अनवरत दमन, दोहन, शोषण, जातिभेद, रंगभेद और धर्मभेद की निर्मम गाथा है। उपनिवेशवाद के निहितार्थों में उपनिवेश के प्राकृतिक संसाधनों का दोहन, उपनिवेशों के लिए अपने उत्पादों के लिए नए बाज़ारों का निर्माण, और उपनिवेश (अधीनस्थ देश) में अपने धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व शैक्षिक मूल्यों का विस्तार करना सम्मिलित है।

10.5.5 यूरोप में पूंजीवाद, वाणिज्यवाद का उदय और परवर्ती काल में औद्योगिक क्रान्ति के लिए अनुकूल परिस्थितियां

औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना के कारण यूरोपीय देशों में अथाह समृद्धि आई और व्यापार-संतुलन सदैव उनके पक्ष में रहने के कारण उनकी व्यापारिक गतिविधियां अपने शिखर पर पहुंच गईं। अतुलित धन-सम्पदा ने पूंजीवाद के विकास में सहयोग किया और राष्ट्रीय जीवन में व्यापार की महत्ता बढ़ने के कारण स्वाभाविक रूप से वाणिज्यवाद को भी बढ़ावा मिला। अब यूरोपीय देश अपना तैयार माल अपने उपनिवेशों के बाज़ारों में ही खपा सकते थे और अपने यहां अनुपलब्ध कच्चा माल खोजने के लिए उन्हें अपने उपनिवेशों के अतिरिक्त किसी और पर निर्भर

भी नहीं रहना था। धन-सम्पदा के आधिक्य ने अधिक उन्नत औद्योगिक उपकरणों के आविष्कार के लिए अनुकूल वातावरण विकसित कर दिया था। इन अनुकूल परिस्थितियों में 18 वीं शताब्दी के अन्त में यूरोप में, विशेषकर सबसे बड़े औपनिवेशिक साम्राज्य के स्वामी इंग्लैण्ड में, औद्योगिक क्रान्ति होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी।

10.5.6 यूरोपीय देशों में निरंकुश राजतन्त्र को बढ़ावा

प्रारम्भिक काल में उपनिवेशों से प्राप्त धन एवं अन्य संसाधनों से यूरोपीय शासकों की शक्ति में अपार वृद्धि हुई जिसके फलस्वरूप उनके लिए अपने-अपने राज्यों में निरंकुश राजतन्त्र (इंग्लैण्ड को छोड़कर जहां 1688 में संवैधानिक राजतन्त्र स्थापित हुआ था) स्थापित करना सम्भव हो सका।

10.5.7 यूरोप में कला का विकास

अतुलित धन-सम्पदा आ जाने से यूरोपीय देशों में कला की हर विधा के विकास के लिए पर्याप्त धन उपलब्ध होने लगा। औपनिवेशिक शासनकाल में यूरोपीय देशों में स्थापत्यकला, चित्रकला, मूर्तिकला का विकास हुआ, अनेक सुनियोजित सुन्दर नगरों का निर्माण हुआ। संगीत और साहित्य और दर्शन के क्षेत्र में भी इस काल को यूरोपीय इतिहास का स्वर्ण युग कहा जा सकता है।

10.5.8 यूरोपीय देशों के मध्य पारस्परिक स्पर्धा में वृद्धि

औपनिवेशिक साम्राज्य विस्तार की होड़ ने यूरोपीय देशों के मध्य कटुता और पारस्परिक स्पर्धा को जन्म दिया जिसके कारण एशिया और अमेरिका में यूरोपीय देशों के मध्य अनेक युद्ध हुए। इन युद्धों में स्पेन, नीदरलैण्ड, इंग्लैण्ड, फ्रांस सभी सम्मिलित थे।

10.5.9 उपनिवेशों में सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक और राजनीतिक जागृति का सूत्रपात

औपनिवेशिक शासन में शिक्षा, सामाजिक, सांस्कृतिक, तकनीकी व राजनीतिक चेतना के क्षेत्र में अपने शासक राष्ट्रों[a] की तुलना में अपेक्षाकृत पिछड़े हुए उपनिवेशों में नए परिवेश और सुधार हेतु अनुकूल वातावरण में जागृति आई जिसको कि हम नवजागरण का नाम देते हैं। इसी नवजागरण ने आगे चलकर उपनिवेशों में राष्ट्रीय आन्दोलन का विकास किया।

10.6 वणिकवाद (Mercantilism)

पंद्रहवीं से अठारहवीं शताब्दी के मध्य यूरोप में एक नवीन आर्थिक चेतना का उदय हुआ, जिसे "वणिकवाद" (Mercantilism) कहा गया। यह काल उस समय का है जब यूरोपीय राष्ट्र—स्पेन, पुर्तगाल, इंग्लैंड, फ्रांस और नीदरलैंड—नवीन भौगोलिक खोजों में संलग्न थे और उपनिवेश स्थापित करने के साथ ही आर्थिक समृद्धि के नए स्रोतों की खोज कर रहे थे। इस विचारधारा का उद्देश्य था- एक राष्ट्र की शक्ति को उसके कीमती धातुओं के भंडार, विशेषतः सोने-चाँदी, से आँका जाए। यह अवधारणा केवल आर्थिक प्रणाली न होकर एक राजनीतिक, उपनिवेशवादी और वाणिज्यिक दृष्टिकोण भी थी। इसी क्रम में वाणिज्यवाद (Commercialism) का विकास हुआ, जो आधुनिक पूँजीवाद की पूर्वपीठिका बना। इन अवधारणाओं ने न केवल यूरोपीय समाज को प्रभावित किया बल्कि उपनिवेशों में सामाजिक-आर्थिक ढांचे को भी बदल दिया।

कुल मिलाकर कहा जाए तो वणिकवाद एक आर्थिक सिद्धांत है जो इस विचार पर आधारित है कि एक राष्ट्र की समृद्धि मुख्यतः उसके सोने-चाँदी के भंडार पर निर्भर करती है। यह संपन्नता मुख्यतः उसकी विदेशी व्यापार नीति पर निर्भर करती है जो कि अधिक से अधिक निर्यात तथा न्यूनतम आयात के माध्यम से विदेशी मुद्रा (सोना-चाँदी) को एकत्रित करने का ध्येय रखती है। वणिकवाद का जन्म पुनर्जागरण काल के उत्तरार्द्ध में हुआ, जब व्यापारिक क्रांतियाँ, समुद्री यात्राएँ और उपनिवेशवाद ने ज़ोर पकड़ा। इसका सर्वाधिक प्रभाव स्पेन, पुर्तगाल, फ्रांस, इंग्लैंड और नीदरलैंड जैसे यूरोपीय देशों में देखने को मिला। उदाहरण के लिए स्पेन ने अमेरिका से सोना-चाँदी प्राप्त किया और वैश्विक व्यापार में दबदबा बनाया और वहीं पुर्तगाल ने समुद्री मार्गों और मसाला व्यापार को नियंत्रण में लिया। इंग्लैंड ने Navigation Acts (1651, 1660) जैसे कानूनों द्वारा वाणिज्य पर नियंत्रण कर वणिकवाद को लागू किया, इस एक्ट के माध्यम से इंग्लैंड ने कानून बनाकर विदेशी जहाजों के प्रयोग पर रोक लगाई। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी इसकी ही उपज थी। फ्रांस में जीन-बैप्टिस्ट कोल्बर्ट (Jean-Baptiste Colbert) ने सरकारी संरक्षणवादी नीतियाँ अपनाईं और यह 'कोल्बर्टवाद' के नाम से जाना गया।

10.6.1 वणिकवाद की प्रमुख विशेषताएँ

- धातु संचयवाद (Bullionism) - कीमती धातुओं को संपत्ति का स्रोत मानना।
- सरकारी नियंत्रण - व्यापार, उत्पादन और उपनिवेशों पर कठोर नियंत्रण।
- उपनिवेशों का शोषण - उपनिवेशों को कच्चे माल के स्रोत और तैयार माल के बाज़ार के रूप में उपयोग।
- व्यापार संतुलन - अधिक निर्यात, कम आयात की नीति।
- राष्ट्रीय हितों की प्राथमिकता - निजी व्यापार भी राज्य हित में लाया गया।

10.6.2 वणिकवाद के मुख्य सिद्धांत:

1. धातु संचयवाद (Bullionism) – आर्थिक समृद्धि का प्रमुख स्रोत कीमती धातुओं को माना गया।
2. सकारात्मक व्यापार संतुलन – निर्यात को बढ़ावा और आयात पर नियंत्रण।
3. उपनिवेशवाद का समर्थन – उपनिवेशों को कच्चे माल और बाज़ार के स्रोत के रूप में विकसित करना।
4. राज्य का नियंत्रण– व्यापार, उद्योग और श्रम पर सरकारी नियंत्रण।
5. राष्ट्रीय हित सर्वोपरि – निजी हित को राष्ट्रीय हित में समाहित करना।

10.6.3 वणिकवाद के प्रभाव

वणिकवाद ने आधुनिक यूरोप के आर्थिक एवं राजनीतिक परिदृश्य को गहराई से प्रभावित किया। इसने राष्ट्रवाद, उपनिवेशवाद, औद्योगिक विकास एवं वैश्विक व्यापार की नींव रखी। इसके प्रभावों को हम निम्न बिंदुओं के माध्यम से समझ सकते हैं।

1. राष्ट्र-राज्य की अवधारणा को बल

वणिकवाद ने संगठित राष्ट्र-राज्यों को विकसित करने में सहायता की। व्यापार और राजस्व के नियंत्रण हेतु केंद्रीकृत शासन की आवश्यकता महसूस की गई, जिससे आधुनिक राष्ट्र-राज्य की नींव रखी गई।

2. उपनिवेशवाद का विस्तार

वणिकवादी नीति के तहत यूरोपीय शक्तियों ने अपने व्यापार को सुरक्षित रखने और संसाधनों की आपूर्ति हेतु उपनिवेशों की स्थापना की। भारत, अफ्रीका, अमेरिका आदि क्षेत्रों में उपनिवेशवाद का विस्तार इसी नीति की देन था।

3. व्यापारिक प्रतिस्पर्धा और युद्ध

वणिकवाद के कारण विभिन्न राष्ट्रों के बीच व्यापारिक प्रतिस्पर्धा तीव्र हो गई। यह प्रतिस्पर्धा कई बार युद्धों में परिवर्तित हो गई, जैसे ब्रिटेन और नीदरलैंड के बीच एंग्लो-डच युद्ध।

4. औद्योगिक विकास को प्रारंभिक प्रेरणा

घरेलू उद्योगों को संरक्षण देने की नीति के कारण कुछ देशों में वस्त्र, जहाज निर्माण आदि क्षेत्रों में औद्योगिक विकास की शुरुआत हुई।

5. पूंजीवाद की नींव

यद्यपि वणिकवाद पूंजीवाद का प्रारंभिक रूप था, परंतु इससे बाजार, उत्पादन, निवेश और लाभ की अवधारणाओं को आधार मिला, जिसने आगे चलकर आधुनिक पूंजीवादी व्यवस्था को जन्म दिया।

6. कृषि की उपेक्षा

राज्यों ने व्यापार और उद्योग को प्राथमिकता दी, जिससे कृषि क्षेत्र की उपेक्षा हुई और ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

7. आर्थिक असमानता में वृद्धि

वणिकवाद ने व्यापारी वर्ग को अत्यधिक लाभ पहुँचाया जबकि किसान, कारीगर एवं उपनिवेशों की जनसंख्या का शोषण हुआ, जिससे सामाजिक और आर्थिक विषमता बढ़ी।

10.6.4 वणिकवाद की आलोचना

यह सही है कि वणिकवाद की नीति औपनिवेशिक विस्तार और व्यापारिक प्रतिस्पर्धा का मुख्य आधार बनी। हालांकि वणिकवाद ने प्रारंभिक राष्ट्र-निर्माण, औद्योगिक विकास और उपनिवेशवाद को बल दिया, फिर भी इसके कई पहलुओं की इतिहासकारों और अर्थशास्त्रीयों द्वारा आलोचना की गई है, विशेषतः शास्त्रीय अर्थशास्त्रियों द्वारा। नीचे हम वणिकवाद की प्रमुख आलोचनाओं का विवेचन कर रहे हैं।

1. सीमित संपदा की धारणा की आलोचना

वणिकवाद की आधारभूत धारणा यह थी कि संसार में संपदा सीमित है और एक राष्ट्र की समृद्धि दूसरे राष्ट्र की कीमत पर ही संभव है। एडम स्मिथ जैसे शास्त्रीय अर्थशास्त्रियों ने इस विचार को खारिज किया। उन्होंने कहा कि संपदा का सृजन उत्पादन, श्रम और विनिमय से होता है, न कि केवल स्वर्ण संचय से।

2. सरकारी हस्तक्षेप की अधिकता

वणिकवाद में राज्य को व्यापार पर अत्यधिक नियंत्रण का अधिकार दिया गया, जैसे – निर्यात प्रोत्साहन, आयात प्रतिबंध, एकाधिकार अधिकार देना आदि। इससे उद्यमिता और बाजार-स्वतंत्रता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। शास्त्रीय अर्थशास्त्री 'अदृश्य हाथ' (invisible hand) के सिद्धांत द्वारा बाजार की स्वतंत्रता के पक्षधर रहे।

3. उपनिवेशवाद को बढ़ावा देना

वणिकवाद का एक नकारात्मक पहलू यह था कि इस नीति ने उपनिवेशों को केवल संसाधनों के स्रोत और बाज़ार के रूप में देखा। इससे उपनिवेशों में आर्थिक दोहन, सामाजिक विषमता और राजनीतिक अधीनता उत्पन्न हुई। भारत, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका में इसके गंभीर परिणाम देखे गए।

4. घरेलू उपभोग की उपेक्षा

वणिकवाद में निर्यात को अत्यधिक महत्व दिया गया और घरेलू उपभोग को गौण माना गया। इससे घरेलू बाजारों में वस्तुओं की उपलब्धता प्रभावित हुई और सामान्य जनजीवन में असंतुलन उत्पन्न हुआ।

5. दीर्घकालिक विकास में बाधा

वणिकवाद उत्पादन की गुणवत्ता एवं नवाचार के बजाय स्वर्ण संचय और व्यापारिक अधिशेष को ही विकास का मापदंड मानता था। इससे दीर्घकालिक आर्थिक विकास की संभावनाएं सीमित हो गईं। शास्त्रीय अर्थशास्त्र ने उत्पादन, तकनीकी विकास और पूंजी निर्माण को विकास का आधार माना।

6. व्यापार युद्ध एवं वैश्विक तनाव

वणिकवादी राष्ट्रों के बीच व्यापारिक प्रतिस्पर्धा इतनी तीव्र हो गई कि यह कई बार युद्ध का कारण बनी। जैसे – 17वीं शताब्दी के एंग्लो-डच युद्ध। अतः इस नीति ने अंतरराष्ट्रीय सहयोग के बजाय टकराव को जन्म दिया।

कुल मिलकर यह कहा जा सकता है कि वणिकवाद ने आधुनिक अर्थव्यवस्था के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यद्यपि इसकी नीतियाँ आज अप्रासंगिक प्रतीत होती हैं, परंतु इसके प्रभाव ने पूँजीवाद और उपनिवेशवाद की बुनियाद रखी।

10.7 वाणिज्यवाद (Commercialism)

वाणिज्यवाद वह आर्थिक दृष्टिकोण है जिसमें वाणिज्य और व्यापार की प्राथमिकता होती है अर्थात यह व्यापार और वाणिज्य को आर्थिक विकास का मूल आधार मानता है। वाणिज्यवाद 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और 19वीं शताब्दी में वणिकवाद के पतन और औद्योगिक क्रांति के विकास के साथ उभरा। यह पूंजीवाद की एक पूर्व

अवस्था कही जा सकती है। यह मूलतः उत्पादन, खपत, विनिमय और बाज़ार में प्रतिस्पर्धा की स्वतंत्रता को मान्यता देता है। यह विचार वणिकवाद की प्रतिक्रियास्वरूप विकसित हुआ, और इसमें व्यापार की स्वतंत्रता, निजी पूँजी का प्रवाह, और बाजार की माँग की पूर्ति जैसे तत्व केंद्र में आए। इसमें व्यापार की स्वतंत्रता, उपभोक्ता हित, और प्रतियोगिता को प्रमुख माना जाता है। यह मुख्यतः उपभोक्तावाद और भौतिक लाभ की प्रवृत्ति को दर्शाता है, जहाँ नैतिक मूल्यों, सांस्कृतिक मूल्यों अथवा सामाजिक जिम्मेदारियों की अपेक्षा मुनाफा कमाना प्राथमिक लक्ष्य होता है। यह 18वीं सदी में ब्रिटेन, फ्रांस और नीदरलैंड जैसे देशों में पूँजीवादी औद्योगिक संरचना के साथ उभरा। इसमें 'मुक्त व्यापार', 'प्रतिस्पर्धा', और 'उपभोक्ता की मांग' पर बल दिया गया।

10.7.1 वाणिज्यवाद की मुख्य विशेषताएँ

वाणिज्यवाद (Commercialism) एक आधुनिक आर्थिक व्यवस्था है, जो मुख्यतः निजी स्वामित्व, लाभ की प्रवृत्ति और मुक्त प्रतिस्पर्धा पर आधारित होती है। इसका उद्भव यूरोप में औद्योगिक क्रांति के साथ हुआ और यह आज वैश्विक अर्थव्यवस्था का प्रमुख ढाँचा बन चुका है। नीचे वाणिज्यवाद की प्रमुख विशेषताओं को विस्तार से प्रस्तुत किया गया है।

1. निजी स्वामित्व:- वाणिज्यवाद में उत्पादन के साधनों, जैसे भूमि, पूंजी, कारखाने, उपकरण आदि का स्वामित्व व्यक्तिगत या निजी कंपनियों के पास होता है। इसमें सरकार का हस्तक्षेप सीमित होता है।

2. लाभ की प्रवृत्ति:- इस व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है। प्रत्येक उत्पादन प्रक्रिया का संचालन लाभ कमाने की दृष्टि से किया जाता है।

3. प्रतिस्पर्धा:- वाणिज्यवाद में मुक्त प्रतिस्पर्धा को बहुत महत्व दिया जाता है। विभिन्न उत्पादक और विक्रेता उपभोक्ताओं को आकर्षित करने हेतु गुणवत्ता, मूल्य और सेवाओं में प्रतिस्पर्धा करते हैं।

4. बाजार-व्यवस्था:- पूरी अर्थव्यवस्था माँग और आपूर्ति के आधार पर संचालित होती है। कीमतें स्वतंत्र रूप से तय होती हैं और यह बाजार में संतुलन बनाए रखने में मदद करती हैं।

5. उपभोक्ता की प्रधानता:- उपभोक्ता इस व्यवस्था का केंद्र होता है। उत्पादन वही वस्तुएँ होती हैं जिनकी माँग उपभोक्ता द्वारा की जाती है। उपभोक्ता की पसंद उत्पादकों को दिशा देती है।

6. पूंजी संचय:- वाणिज्यवाद में उत्पादन हेतु निरंतर पूंजी निवेश आवश्यक माना जाता है। लाभ को पुनः उत्पादन में लगाया जाता है जिससे आर्थिक विकास होता है।

7. न्यूनतम सरकारी हस्तक्षेप:- इस व्यवस्था में सरकार का हस्तक्षेप अत्यंत सीमित होता है। राज्य केवल विधि-व्यवस्था बनाए रखने, अनुबंधों की रक्षा करने और बाह्य सुरक्षा हेतु सक्रिय रहता है।

8. सामाजिक असमानता की प्रवृत्ति:- वाणिज्यवाद में आय और संसाधनों का असमान वितरण देखा जाता है। अमीर और गरीब के बीच की खाई बढ़ती है, क्योंकि पूंजी पर नियंत्रण सीमित वर्ग के हाथ में होता है।

वणिज्यवाद आधुनिक विश्व की सबसे प्रमुख आर्थिक प्रणाली है, जिसने तकनीकी नवाचार, उत्पादकता और उपभोक्ता सुविधाओं में क्रांति ला दी है। यद्यपि इसमें सामाजिक विषमता और श्रमिक शोषण जैसे दोष भी हैं, फिर भी इसकी लचीलापन और नवाचार की क्षमता के कारण यह आज भी प्रासंगिक बनी हुई है।

10.7.2 वाणिज्यवाद के प्रभाव

- **औद्योगीकरण और तकनीकी प्रगति:-** वाणिज्यवाद ने आधुनिक औद्योगीकरण को गति दी। निजी पूंजी निवेश और लाभ कमाने की प्रवृत्ति ने मशीनों, फैक्ट्रियों और उत्पादन की तकनीकों में तेजी से बदलाव लाए। इससे उत्पादन की मात्रा, गुणवत्ता और गति में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। औद्योगिक क्रांति इसी पूंजीवादी प्रवृत्ति का परिणाम थी, जिसने विश्व को कृषि आधारित अर्थव्यवस्था से औद्योगिक समाज में रूपांतरित किया।
- **वैश्विक व्यापार और पूंजी का संचय:-** वाणिज्यवाद के कारण अंतरराष्ट्रीय व्यापार का विस्तार हुआ। निजी व्यापारियों और कंपनियों ने पूंजी एकत्र कर विभिन्न देशों में निवेश किया। इससे पूंजी का संचय और विश्व व्यापारिक नेटवर्क का विकास संभव हुआ। पूंजी का संचय न केवल उत्पादन को बढ़ाता है, बल्कि आधुनिक बैंकिंग, बीमा और शेयर बाज़ार की नींव भी रखता है।
- **सामाजिक विषमता और श्रमिक शोषण:-** हालाँकि वाणिज्यवाद ने आर्थिक विकास को बढ़ावा दिया, लेकिन इसके साथ-साथ सामाजिक विषमता भी बढ़ी। उत्पादन के साधनों पर कुछ लोगों का नियंत्रण होने से आय का असमान वितरण हुआ। श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी पर काम करना पड़ा, जिससे पूंजीपतियों और श्रमिकों के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई। मार्क्सवादी विचारधारा इसी पूंजीवादी व्यवस्था की प्रतिक्रिया के रूप में उभरी।
- **उपभोक्तावाद और जीवन शैली में परिवर्तन:-** वाणिज्यवाद ने उपभोक्तावादी संस्कृति को जन्म दिया। प्रतिस्पर्धा के कारण उत्पादन में विविधता आई, जिससे उपभोक्ता को अधिक विकल्प और सुविधाएँ प्राप्त हुईं। इससे जीवन स्तर में सुधार हुआ लेकिन साथ ही मितव्ययिता की परंपरा में कमी आई और भौतिकवाद को बल मिला।

10.7.3 वणिकवाद और वाणिज्यवाद में अंतर

वणिकवाद (Mercantilism) और वाणिज्यवाद (Commercialism) दोनों ही आर्थिक प्रणालियाँ हैं, जिनका विकास अलग-अलग ऐतिहासिक कालखंडों में हुआ। वणिकवाद मुख्यतः 16वीं से 18वीं शताब्दी के मध्य यूरोपीय राष्ट्र-राज्यों की आर्थिक नीति के रूप में सामने आया, जबकि वाणिज्यवाद 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध और 19वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रांति के साथ विकसित हुआ। दोनों के लक्ष्यों, साधनों और प्रभावों में स्पष्ट अंतर है।

आधार	वणिकवाद (Mercantilism)	वाणिज्यवाद (Commercialism)
कालखंड	16वीं से 18वीं शताब्दी	18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से वर्तमान तक
मुख्य उद्देश्य	राष्ट्र की समृद्धि हेतु स्वर्ण-संचय और व्यापार अधिशेष	व्यक्तिगत लाभ और पूंजी का अधिकतम उपयोग
स्वामित्व	राज्य का नियंत्रण और एकाधिकार की प्रवृत्ति	निजी स्वामित्व एवं उद्यमिता की स्वतंत्रता
व्यापार नीति	संरक्षणवाद – आयात प्रतिबंध और निर्यात प्रोत्साहन	मुक्त व्यापार और प्रतिस्पर्धा पर आधारित नीति
उपनिवेश नीति	उपनिवेशों का शोषण और संसाधनों का दोहन	उपनिवेशवाद का आर्थिक रूपांतरण; निवेश और बाज़ार की खोज
राज्य की भूमिका	अत्यधिक हस्तक्षेप; व्यापार पर पूर्ण नियंत्रण	सीमित हस्तक्षेप (Laissez-faire), केवल विधिक और नीतिगत भूमिका
संपत्ति की धारणा	संपदा सीमित है – दूसरे राष्ट्रों से छीननी होगी	संपदा असीमित है – उत्पादन और नवाचार से बढ़ाई जा सकती है
उदाहरण	ब्रिटेन की ईस्ट इंडिया कंपनी, फ्रांस का कोल्बर्टवाद	आधुनिक उद्यम: टाटा, रिलायंस, एप्पल, अमेज़न आदि

वणिकवाद एक ऐसी नीति थी जिसमें राज्य की सक्रिय भूमिका और विदेशी व्यापार को नियंत्रित करने पर बल दिया गया, जबकि वाणिज्यवाद एक उदार आर्थिक व्यवस्था है जिसमें निजी उद्यम, लाभ की प्रवृत्ति और मुक्त बाजार का बोलबाला होता है। दोनों व्यवस्थाओं ने अपने-अपने समय में आर्थिक संरचनाओं को प्रभावित किया, किंतु वर्तमान समय में वाणिज्यवाद आधुनिक वैश्विक अर्थव्यवस्था का प्रमुख ढाँचा बन गया है।

10.8 वाणिज्यिक क्रान्ति

10.8..1 वाणिज्यिक क्रान्ति का उद्भव एवं उसकी परिभाषा

'वाणिज्यिक क्रान्ति' का काल 13 वीं शताब्दी के अन्त से लेकर औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व तक (अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक) का माना जाता है। यह वह समय था जब यूरोपीय अर्थ-व्यवस्था, उपनिवेशवाद तथा

वाणिज्यवाद का विस्तार हुआ। 'वाणिज्यिक क्रान्ति' (कॉमर्शियल रिवोल्यूशन) शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख, 20 वीं शताब्दी के मध्य में, आर्थिक इतिहासकार रॉबर्तो सैबितानो लोपेज़ ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दि कॉमर्शियल रिवोल्यूशन ऑफ़ दि मिडिल एजेज़' में किया था। लोपेज़ के अनुसार वाणिज्यिक अर्थ-व्यवस्था का प्रारम्भ 13 वीं शताब्दी के अन्त में कुन्सतुनतुनिया के रास्ते इटली के भू-मध्यसागरीय व्यापार में हुआ था जिसका कि आगे चलकर इटली के नगर राज्यों (वेनिस, पीसा, वेरोना, जेनोआ, फ़्लोरेन्स) में, और उसके बाद शेष यूरोप में भी विस्तार हो गया था। यहूदी तथा मुस्लिम व्यापारियों ने 11वीं शताब्दी से भी पहले व्यापारी-संघ स्थापित कर लिए थे। वो बहुत पहले ही 'वाणिज्यिक क्रान्ति' में प्रयुक्त की जाने वाली ऋण-सुविधा व मुद्रा-विनिमय की प्रणाली का विकास कर चुके थे। ईसाई शक्तियों को अपने जल-मार्गीय धर्म-युद्ध (11 वीं शताब्दी से प्रारम्भ) अभियानों के दौरान मसाले, रेशम तथा यूरोप में अन्य दुर्लभ वस्तुओं की प्राप्ति हुई जिसने मध्यकाल के उत्तरार्ध में उन्हें अपने व्यापार का विस्तार करने के लिए प्रेरित किया।

10.8.2 वाणिज्यिक क्रान्ति का विकास

1. हैन्सियाटिक लीग

जर्मनी के व्यापारियों ने 1300 में एक व्यापारिक संघ के रूप में 'हैन्सियाटिक लीग' की स्थापना की जिसमें कि लगभग 100 नगरों के व्यापारी सम्मिलित थे। इस लीग ने उत्तरी यूरोप तथा बाल्टिक सागर क्षेत्र में व्यापक स्तर पर व्यापारिक गतिविधियां की। इस लीग का उद्देश्य व्यापारियों के आर्थिक हितों की अपने-अपने शहर, देश और व्यापार-मार्गों पर रक्षा करना था। 'हैन्सियाटिक लीग' के अन्तर्गत शहरों के अपने कानून और अपनी सेनाएं थीं। सैक्सोनी तथा वैस्टफ़ेलिया के लिए ल्यूबेक सबसे बड़ा व्यापारिक केन्द्र बना। लगभग दो सौ वर्षों तक यह लीग यूरोपीय व्यापार में प्रभावशाली भूमिका निभाने में सफल रही।

2. भौगोलिक खोजें

एशिया, अफ़्रीका व अमेरिका में नए क्षेत्रों की खोज और तदन्तर उन पर यूरोपीय देशों के अधिकार के कारण यूरोपीय, एशियायी, अफ़्रीकी तथा अमेरिकी देशों का आर्थिक दृष्टि से बहु-आयामीय सम्बन्ध स्थापित हो गया।

3. पूर्वी गोलार्ध में ऑटोमन साम्राज्य के व्यापारिक एकाधिकार की समाप्ति

वाणिज्यिक क्रान्ति के परिणाम स्वरूप यूरोप की आर्थिक गतिविधियों का केन्द्र मुस्लिम भू-मध्यसागरीय क्षेत्र से हटकर पश्चिमी यूरोप (पुर्तगाल, स्पेन, नीदरलैण्ड और इंग्लैण्ड) में स्थापित हो गया। पश्चिमी यूरोप से भारत के लिए जल-मार्ग की खोज ने ओटोमन साम्राज्य और उनके सहयोगी इटली के नगर राज्यों के पूर्वी देशों में व्यापारिक एकाधिकार को समाप्त कर दिया।

4. वित्तीय सेवाओं में वृद्धि

नयी परिस्थितियों में व्यापार की आधारभूत संस्थाओं का विकास, परिष्कार और उनमें परिवर्तन किया जाना आवश्यक हो गया। वाणिज्यिक क्रान्ति के इस दौर में व्यापक स्तर पर व्यापार-वाणिज्य का संगठन विकसित हुआ। यह वाणिज्यिक क्रान्ति, सामान्य व्यावसायिक गतिविधियों में, तथा वित्तीय सेवाओं (बैंकिंग, बीमा, निवेश आदि) में वृद्धि

में परिलक्षित हुई। एन्टवर्प में यूरोप का पहला मुद्रा-विनमय केन्द्र स्थापित हुआ और एम्सटर्डम में 'बैंक ऑफ़ एम्सटर्डम' की स्थापना हुई। डचों ने जॉइन्ट स्टॉक कम्पनियों की स्थापना की। 1602 में 'डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी' ने 'एम्सटर्डम स्टॉक एक्सचेंज में अपने शेयर निर्गत किए। अब इंग्लैण्ड में 'लॉयड ऑफ़ लन्डन' जैसी बीमा कम्पनियों ने सुदूर व्यापार को सुरक्षित बनाने में अपना योगदान देना प्रारम्भ किया। फ्रांस के वित्तमन्त्री कोलबर्ट ने 1681 में व्यापार-बीमा के लिए नए नियम जारी किए। वाणिज्यिक क्रान्ति ने प्रभावी मुद्रा प्रणाली के प्रचलन को सम्भव बनाया। अब अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में एक मानक मुद्रा का प्रचलन हुआ।

5. वाणिज्यवाद को बढ़ावा

अब यह विश्वास दृढ़ होता जा रहा था कि जो राष्ट्र जितना धनी होगा, वह उतना ही शक्तिशाली होगा। इस विचार के प्रतिपादकों में टॉमस मन तथा फ़िलिप वॉन हॉर्निक प्रमुख थे। अब व्यापार-सन्तुलन को स्थयी रूप से अपने पक्ष में रखने के लिए तैयार माल के निर्यात को और उपनिवेशों से कच्चे माल के आयात को बढ़ावा दिया जाने लगा।

6. उपनिवेशवाद को बढ़ावा

वाणिज्यवाद ने उपनिवेशवाद को बढ़ावा दिया। यह सिद्धान्त कि - उपनिवेश का अस्तित्व शासक राज्य के लाभ के लिए है' उपनिवेशों के दोहन का मूल मन्त्र बन गया। शासक राष्ट्रों ने अपने उपनिवेशों को स्वतन्त्र रूप से व्यापार करने की अनुमति नहीं दी, उन्हें अपना तैयार माल खरीदने का खरीदार और कच्चे माल की आपूर्ति करने वाला बनाकर छोड़ दिया। उपनिवेशों में शासक राष्ट्र के निवेशकों के लिए लाभकारी और सुरक्षित निवेश के अवसर प्रदान करना भी उपनिवेशवाद का एक प्रमुख लक्षण था। इस काल में व्यापारिक कम्पनियो ने ताज के प्रतिनिधि की भूमिका निभाई। उत्तरी अमेरिका और भारत में 'ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी', 'डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी', 'हडसन बे कम्पनी', 'प्लाईमाउथ कम्पनी' तथा 'लन्डन कम्पनी' जैसी व्यापारिक कम्पनियों ने औपनिवेशिक साम्राज्य के विस्तार में निर्णायक भूमिका निभाई।

10.8.3 वाणिज्यिक क्रान्ति के परिणाम

1. **पूंजीवाद का उदय**

सामन्तवाद का पतन और मध्यमवर्ग से सम्बद्ध पूंजीपतियों (व्यापारी, बैंकर्स, पूंजी-निवेशक, उद्योगपति, जहाज-मालिक आदि) की देश के आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका वाणिज्यिक क्रान्ति का परिणाम थी।

2. **यूरोपीय सभ्यता का प्रसार**

वाणिज्यिक क्रान्ति का एक परिणाम समस्त विश्व का यूरोपीकरण था। यूरोपीय धर्म (ईसाई धर्म), अर्थ-व्यवस्था, शैक्षिक, कलात्मक व सांस्कृतिक मूल्य, राजनीतिक आदर्श, प्रशासनिक एवं न्यायिक-व्यवस्था को एशिया, अफ़्रीका, अमेरिका तथा ऑस्ट्रेलिया में स्थापित किया गया।

3. **दास-प्रथा का पुनर्प्रचलन**

यूरोप में लगभग 500 साल तक लुप्तप्राय दास-प्रथा को उपनिवेशों में नई बस्तियां बसाने और श्रम-साध्य कार्यों से स्वयं को मुक्ति दिलाने के लिए अमानुनिषिक दास-प्रथा का पुनर्प्रचलन वाणिज्यिक क्रान्ति का एक दुखद परिणाम था।

4. **औद्योगिक क्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार करना**

वाणिज्यिक क्रान्ति ने यूरोपीय देशों में धन-सम्पदा का अतुलित भण्डार का संय कराने में उलेखनीय भूमिका निभाई। लगभग समूची दुनिया के व्यापार पर नियन्त्रण स्थापित कर और अपने उपनिवेशों की औद्योगिक प्रगति पर भारी चोट लगा कर अब यूरोपीय राज्य अपने उद्योग के आधुनिकीकरण के लिए प्रयास कर सकते थे। वैज्ञानिक प्रगति ने और शोध के लिए आवश्यक पूंजी की उपलब्धता ने औद्योगिक क्रान्ति के लिए अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न कर दी थीं। वाणिज्यिक क्रान्ति ने आधुनिक कारखानों में वृहद मात्रा में उत्पादित माल की खपत के लिए उपनिवेशों के बाज़ार पहले ही तैयार कर दिए थे। इन अनुकूल परिस्थितियों में औद्योगिक क्रान्ति यूरोपीय इतिहास में कोई आश्चर्यजनक नहीं अपितु नितान्त स्वाभाविक घटना बनकर प्रकट हुई थी।

अभ्यास अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. 15 वीं शताब्दी में भौगोलिक खोजों की आवश्यकता।
2. स्पेन का औपनिवेशिक साम्राज्य।
3. वणिज्यिक क्रान्ति के परिणाम।

10.9 सारांश

भौगोलिक खोजों, औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना तथा वाणिज्यिक क्रान्ति का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। इन सबने मिलकर मनुष्य के संकुचित दृष्टिकोण को व्यापक बनाने में तथा विश्व इतिहास को मध्य युग से आगे बढ़ाकर आधुनिक युग में प्रविष्ट कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। नवीन भौगोलिक खोजें आने वाले परिवर्तनों का वाहक बनीं। 13 वीं शताब्दी के अन्त में दिशासूचक यन्त्र 'कुतुबनुमा' तथा बाद में एस्ट्रोलोव, सैक्सटैन्ट आदि के आविष्कार, उन्नत मानचित्रों के निर्माण, अधिक पाल वाले और चप्पू से चलने वाले जहाजों के निर्माण से अब यह सम्भव हो गया कि लम्बी समुद्र यात्रा द्वारा पश्चिम से पूर्व की ओर पहुंचा जाए। यूरोपीय देशों में माल के उत्पादन में वृद्धि, सोने और चाँदी जैसी बहुमूल्य धातुओं की कमी, सोने, चाँदी,मसाले, मछली, लकड़ी, सूती एवं रेशमी वस्त्र, हाथी दाँत, कालीन, फ़र (लोम), विलासिता की सामग्री आदि मिलने की आशा में नए भू-क्षेत्रों की तलाश और यूरोप से भारत तथा पूर्वी एशिया के लिए नए समुद्री मार्गों खोजने की आकांक्षा ने पश्चिमी यूरोप के प्रतिस्पर्धी व्यापारियों को व्यापार-बिचौलियों के शोषण से बचने के लिए और एशिया के देशों से खुद सीधे सम्पर्क स्थापित करने के उद्देश्य, नाविक अभियानों के भेजे जाने के प्रमुख कारण थे। बार्तोलोम्यू डियाज, कोलम्बस, वास्कोडिगामा, वोराज़ानो, जे0 कार्तियर, जॉन स्मिथ आदि ने अफ़्रीका, एशिया तथा अमेरिका में अज्ञात क्षेत्रों की खोज की। भौगोलिक खोजों के परिणामस्वरूप पूर्व पर पश्चिम की श्रेष्ठता स्थापित हो गई। यूरोपीय देशों ने नए खोजे हुए क्षेत्रों में ईसाई धर्म का व्यापक प्रचार किया। भौगोलिक खोजों के बाद यूरोप में सामन्तवाद के पतन की प्रक्रिया तीव्र हो गई और पश्चिमी यूरोप में पूंजीवाद उभर कर आने

लगा। भौगोलिक खोजों ने ज्ञान की अन्य विधाओं जैसे वनस्पतिशास्त्र, जन्तुशास्त्र, मानव-जाति विज्ञान आदि में नई खोजों के अवसर उपलब्ध कराए। भौगोलिक खोजों के फलस्वरूप व्यापारिक गतिविधियों में अप्रत्याशित वृद्धि ने पूंजीवाद व राष्ट्रीय वाणिज्यवाद को बढ़ावा दिया।

पन्द्रहवीं शताब्दी तथा सोलहवीं शताब्दी तक यूरोपीय देशा ने समुद्री मार्ग द्वारा दुनिया के एक बड़े भाग की खोज कर ली थी। यूरोपीय शक्तियों की थल सेनाएं व नौ-सेनाए सबसे सुगठित व आधुनिक रणनीति में पारंगत थीं। इन अनुकूल परिस्थितियों में अनेक यूरोपीय देशों में धन-लिप्सा, शक्ति-विस्तार और ईसाई धर्म के प्रचार हेतु औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना की महत्वाकांक्षा उत्पन्न हुई। अपने देश में उत्पादित माल की बिक्री के लिए नए बाज़ारों की तलाश और अपने यहां तैयार उत्पादों के लिए आवश्यक कच्चे माल की सस्ते में और नियमित एवं निर्बाध आपूर्ति की समस्या, इन दोनों का ही समाधान अधिक से अधिक और बड़े से बड़े उपनिवेशों की स्थापना में मिल सकता था। आधुनिक काल में औप्निवेशिक साम्राज्य की स्थापना का इतिहास पुर्तगाल तथा स्पेन के साहसिक प्रयासों से प्रारम्भ होता है। प्रारम्भिक काल में पूर्वी गोलार्ध में पुर्तगाल ने और पश्चिमी गोलार्ध में स्पेन ने सबसे बड़े औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना की। बाद में डच, फ्रांसीसी, अंग्रेज़ और रूसी भी अपने-अपने औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित करने में सफल रहे। औपनिवेशिक शासकों ने ईसाई धर्म का व्यापक प्रसार किया। यूरोप के अधिकांश शक्तिशाली देश - पुर्तगाल, स्पेन, नीदरलैण्ड, फ्रांस, ब्रिटेन आदि दास-व्यापार में लिप्त थे क्योंकि नए उपनिवेशों को बसाने में तथा खेती सहित कठिन श्रम के सभी कार्यों के लिए न्यूनतम मज़दूरी पर कार्य करने वाले दासों से अधिक उपयोगी और कोई नहीं हो सकता था। औपनिवेशिक शक्तियों ने जातीय श्रेष्ठता के सिद्धान्त का पालन करते हुए विजित जाति को कभी भी अपने समकक्ष नहीं समझा। औपनिवेशिक शासन - अनवरत दमन, दोहन, शोषण, जातिभेद, रंगभेद और धर्मभेद की निर्मम गाथा है। औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना के फलस्वरूप यूरोप में पूंजीवाद व वाणिज्यवाद के उदय, कला के विकास और परवर्ती काल में औद्योगिक क्रान्ति के लिए अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न हो गईं किन्तु औपनिवेशिक साम्राज्य विस्तार की होड़ ने यूरोपीय देशों के मध्य कटुता और पारस्परिक स्पर्धा को जन्म दिया। औपनिवेशिक शासन में उपनिवेशों में नवजागरण का सूत्रपात हुआ जिसने आगे चलकर कई अधीनस्थ देशों में राष्ट्रीय आन्दोलन का विकास किया।

'वाणिज्यिक क्रान्ति' का काल 13 वीं शताब्दी के अन्त से लेकर औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व तक (अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक) का माना जाता है। यह वह समय था जब यूरोपीय अर्थ-व्यवस्था, उपनिवेशवाद तथा वाणिज्यवाद का विस्तार हुआ। ईसाई शक्तियों को अपने जल-मार्गीय धर्म-युद्ध अभियानों के दौरान मसाले, रेशम तथा यूरोप में अन्य दुर्लभ वस्तुओं की प्राप्ति हुई जिसने मध्यकाल के उत्तरार्ध में उन्हें अपने व्यापार का विस्तार करने के लिए प्रेरित किया था। 'वाणिज्यिक क्रान्ति' के प्रारम्भिक दौर में स्थापित हैन्सियाटिक लीग का उद्देश्य व्यापारियों के आर्थिक हितों की अपने-अपने शहर, देश और व्यापार-मार्गों पर रक्षा करना था। 'वाणिज्यिक क्रान्ति' ने यूरोपीय, एशियायी, अफ्रीकी तथा अमेरिकी देशों का आर्थिक दृष्टि से बहु-आयामीय सम्बन्ध स्थापित किया। वाणिज्यिक क्रान्ति वित्तीय सेवाओं, जैसे बैंकिंग, बीमा, निवेश आदि की वृद्धि में परिलक्षित हुई। मुद्रा-विनमय केन्द्रों, जॉइन्ट स्टॉक कम्पनियों, की स्थापना

हुई। बीमा कम्पनियों ने सुदूर व्यापार को सुरक्षित बनाने में अपना योगदान देना प्रारम्भ किया। वाणिज्यिक क्रान्ति ने प्रभावी मुद्रा प्रणाली के प्रचलन को सम्भव बनाया। अब अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में एक मानक मुद्रा का प्रचलन हुआ। अब यह विश्वास दृढ़ होता जा रहा था कि जो राष्ट्र जितना धनी होगा, वह उतना ही शक्तिशाली होगा। वाणिज्यवाद ने उपनिवेशवाद को बढ़ावा दिया। यह सिद्धान्त कि - उपनिवेश का अस्तित्व शासक राज्य के लाभ के लिए है' उपनिवेशों के दोहन का मूल मन्त्र बन गया। वाणिज्यिक क्रान्ति के प्रमुख परिणामों में सामन्तवाद का पतन, पूंजीवाद का उदय, यूरोपीय सभ्यता का प्रसार, दास-प्रथा का पुनर्प्रचलन थे किन्तु इसका सबसे बड़ा योगदान औद्योगिक क्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार करना था।

10.10 पारिभाषिक शब्दावली

वित्तीय सेवाएं - बैंकिंग, बीमा, पूंजी-निवेश आदि

सैक्सटैन्ट - कोणमापक यन्त्र

फ़ार्चुनेट - भाग्यशाली

अमेरिकन इण्डियन्स - अमेरिका के मूल निवासी

मिडिल एज - मध्यकाल

बाल्टिक सागर - मध्य तथा उत्तर यूरोप के बीच का भू-मध्यसागर

10.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 10.3.1 भौगोलिक खोजों की तत्कालीन आवश्यकता एवं उनके लिए अनुकूल परिस्थितियां।
2. देखिए 10.4.2 पुर्तगाल तथा स्पेन के औपनिवेशिक साम्राज्य।
3. देखिए 10.6.3 वाणिज्यिक क्रान्ति के परिणाम।

10.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

मैरीमैन, जॉन एम0 - 'हिस्ट्री ऑफ़ मॉडर्न यूरोप' (बुक 1), न्यूयॉर्क, 2009

मुखर्जी, एल0 - 'ए स्टडी ऑफ़ यूरोपियन हिस्ट्री' कोलकाता, 2000

सिपोला, कार्लो - 'यूरोपियन कल्चर एण्ड ओवरसीज़ एक्सपेंशन, लन्दन, 1970

लव, रोनाल्ड, एस0 - 'मैरीटाइम एक्सप्लोरेशन इन दि एज ऑफ़ डिस्कवरी 1415-1800, ग्रीनवुड, 2006

10.13 उपयोगी पाठ्य सामग्री

मैकॉले, टी0 बी0 - 'दि हिस्ट्री ऑफ़ इंग्लैण्ड फ़्रॉम दि एक्सेशन ऑफ़ जेम्स सेकेन्ड, न्यूयॉर्क, 2009

जेनकिन्स, सिमोन - 'ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ़ इंग्लैण्ड', लनदन, 2012

लिवरमोर, एच0 वी0 - ए न्यू हिस्ट्री ऑफ़ पोर्चुगाल, लन्दन, 1969

Adam Smith, The Wealth of Nations, 1776.

Mun, Thomas. England's Treasure by Forraign Trade, 1664.

Bipin Chandra et al., India's Struggle for Independence, Penguin, 1989.

IGNOU, MHI-02: Modern World, Block-3 & Block-4.

Samuelson, Paul A., Economics, McGraw-Hill Education.

EEC-11: Fundamentals of Economics, IGNOU, Unit-3.

EHI-05: India From Mid-18th Century to Mid-19th Century

Dutt, R.C., Economic History of India under Early British Rule, Routledge.

Marc Bloch, Feudal Society - प्रारंभिक यूरोपीय समाज की आर्थिक-सामाजिक पृष्ठभूमि के लिए

10.14 निबंधात्मक प्रश्न

भौगोलिक खोजों, उपनिवेशवाद तथा वाणिज्यिक क्रान्ति के अन्तः सम्बन्ध पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

इकाई ग्यारह

इंग्लैंण्ड में संसदीय संस्थाओं का विकास

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 प्राचीन काल से लेकर 'मैग्नाकार्टा' तक इंग्लैण्ड में संसदीय संस्थाओं का विकास

11.3.1 मैग्नाकार्टा' से पूर्व इंग्लैण्ड में राजतन्त्र का स्वरूप

11.3.2 मैग्नाकार्टा'

11.3.3 मैग्नाकार्टा' के बाद से लेकर 1625 तक इंग्लैण्ड में पार्लियामेन्ट के स्वरूप और उसकी भूमिका में परिवर्तन

11.3.3.1 मैग्नाकार्टा' से लेकर 17 वीं शताब्दी तक पार्लियामेन्ट के स्वरूप और उसकी भूमिका में परिवर्तन

11.4. गौरवपूर्ण क्रान्ति से पूर्व सत्रहवीं शताब्दी में शासक तथा पार्लियामेन्ट के मध्य संघर्ष

11.4.1 जेम्स प्रथम के शासनकाल में शासक व पार्लियामेन्ट के मध्य विवाद

11.4.2 चार्ल्स प्रथम के शासनकाल में शासक तथा पार्लियामेन्ट के मध्य संघर्ष

11.4.3 गणतन्त्र युग (1649-1660)

11.4.4 राजतन्त्र की पुनर्स्थापना (1660-1688)

11.5 गौरवपूर्ण क्रान्ति (1688)

11.5.1 गौरवपूर्ण क्रान्ति के कारण

11.5.2 गौरवपूर्ण क्रान्ति की घटना

11.5.3 बिल ऑफ़ राइट्स अथवा डिक्लेरेशन ऑफ़ राइट्स (दिसम्बर, 1689)

11.5.4 गौरवपूर्ण क्रान्ति के परिणाम

11.6 सारांश

11.7 पारिभाषिक शब्दावली

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

11.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

11.11 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

आदिम सभ्यता में और प्राचीनकालीन सभ्यताओं में लोकतन्त्रात्मक एवं गणतन्त्रात्मक प्रणाली के तत्व मिलते हैं किन्तु राजत्व के दैविक सिद्धान्त के विकास के बाद राज्य में व्यक्तियों और संस्थाओं की भूमिका केवल परामर्श देने तक सीमित रह गई क्योंकि शासक उनकी किसी भी बात अथवा सलाह को मानने के लिए बाध्य नहीं था। विश्व इतिहास में इंग्लैण्ड को संसद की जन्म भूमि कहा जाता है। इंग्लैण्ड में सन् 1066 में विलि संस्थाओंयम ऑफ़ नॉर्मन्डी ने एक सामन्ती व्यवस्था का प्रचलन किया था जिसमें उसने 'टैनेन्ट-इन-चीफ़' (भू-स्वामी) तथा चर्च के प्रतिनिधियों की एक समिति गठित कर कानून बनाने से पहले उसकी सलाह लेने की व्यवस्था की थी। सन् 1100 में हेनरी प्रथम ने 'चार्टर ऑफ़ लिबर्टीज़' के द्वारा विशिष्ट क्षेत्रों में अपनी शक्तियों को सीमित कर दिया था। 1215 में 'मैग्ना कार्टा' ने नागरिक अधिकार, लोकतन्त्र, शासक की सीमित शक्ति और समानता के अधिकार के सिद्धान्तों को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 13 वीं शताब्दी से लेकर 16 वीं शताब्दी तक शासन में आभिजात्य वर्ग एवं चर्च के प्रतिनिधियों की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई, लोअर हाउस में प्रतिनिधियों के चुनाव के लिए सीमित मताधिकार का प्रावधान किया गया और पार्लियामेन्ट के दो सदन - हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स तथा हाउस ऑफ़ कॉमन्स स्थापित हुए। किन्तु सत्रहवीं शताब्दी में जेम्स प्रथम, चार्ल्स प्रथम, चार्ल्स द्वितीय व जेम्स द्वितीय के शासनकाल में पार्लियामेन्ट और शासक के मध्य सर्वोच्चता हेतु संघर्ष में अन्ततः पार्लियामेन्ट की जीत हुई। 1688 की गौरवपूर्ण क्रान्ति के फलस्वरूप इंग्लैण्ड में संवैधानिक राजतन्त्र की स्थापना हुई जिसने कि आगे चलकर समस्त विश्व में लोकतान्त्रिक मूल्यों के विकास और उनकी स्थापना में मार्ग-दर्शक की भूमिका निभाई।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको इंग्लैण्ड में 11 वीं शताब्दी से लेकर 17 वीं शताब्दी के अन्त तक, संसदीय संस्थाओं के विकास के विभिन्न चरणों से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- प्राचीनकाल से लेकर 'मैग्नाकार्टा' तक इंग्लैण्ड में संसदीय संस्थाओं के प्रारम्भिक विकास के विषय में।

2. 'मैग्नाकार्टा' के बाद से लेकर 1625 तक इंग्लैण्ड में पार्लियामेन्ट के स्वरूप एवं शासन में उसकी भूमिका के विषय में।

3- सत्रहवीं शताब्दी में शासक और पार्लियामेन्ट के मध्य अधिकारों के प्रश्न को लेकर छिड़े संघर्ष में पार्लियामेन्ट की जीत और अन्ततः इंग्लैण्ड में संवैधानिक राजतन्त्र की स्थापना के विषय में।

11.3 प्राचीन काल से लेकर 'मैग्नाकार्टा' तक इंग्लैण्ड में संसदीय संस्थाओं का विकास

11.3.1 'मैग्नाकार्टा' से पूर्व इंग्लैण्ड में राजतन्त्र का स्वरूप

वास्तव में प्रारम्भिक काल में इंग्लैण्ड के शासक के पास अपनी कोई स्थायी सेना नहीं थी और न ही उसके पास पर्याप्त आर्थिक साधन थे। इसलिए राज्य संचालन के लिए उसे आभिजात्य वर्ग और चर्च के प्रतिनिधियों के सहयोग पर निर्भर रहने के लिए बाध्य होना पड़ता था। इंग्लैण्ड में सन् 1066 में विलियम ऑफ़ नॉर्मन्डी ने एक सामन्ती व्यवस्था का

प्रचलन किया था जिसमें उसने 'टैनेन्ट-इन-चीफ़' (भू-स्वामी) तथा चर्च के प्रतिनिधियों की एक समिति गठित कर कानून बनाने से पहले उसकी सलाह लेने की व्यवस्था की थी। सन् 1100 में हेनरी प्रथम ने 'चार्टर ऑफ़ लिबर्टीज़' के द्वारा विशिष्ट क्षेत्रों में अपनी शक्तियों को सीमित कर दिया था।

11.3.2 'मैग्नाकार्टा'

अत्यधिक करों के बोझ, असफल युद्धों और पोप से विवाद के कारण इंग्लैण्ड के शासक जॉन से क्रुद्ध होकर उसके कुछ महत्वपूर्ण बैरन उसके विरुद्ध विद्रोह करने को तत्पर हो गए। अपनी कमज़ोर स्थिति को सुधारने के उद्देश्य से जॉन ने प्रभावशाली बैरन और अपने फ्रांसीसी व स्कॉटिश मित्र राज्यों से भेंट की और तत्पश्चात उसने लन्दन के निकट रनीमेड नामक स्थान पर 15 जून, 1215 को 'मैग्ना कार्टा' पर हस्ताक्षर किए जिसके अनुसार शासक को कर लगाने और कर एकत्र करने से पहले अपनी रॉयल काउन्सिल (जिसमें कि सामन्तवादी व्यवस्था के स्तम्भ - आर्क बिशप, अबॉट, बैरन तथा अर्ल सम्मिलित थे) की सहमति लेना आवश्यक हो गया। इसी रॉयल काउन्सिल ने बाद में विकसित होते

-होते पार्लियामेन्ट का रूप धारण कर लिया। यह उल्लेख करना आवश्यक है कि नागरिक अधिकार विषयक यह ऐतिहासिक दस्तावेज़ आम आदमी के लिए नहीं अपितु केवल प्रभावशाली वर्ग तक सीमित था। 'मैग्ना कार्टा' में प्रदत्त नागरिक अधिकारों का शासकों ने कभी निष्ठापूर्वक क्रियान्यन नहीं किया किन्तु इसने सामान्य तथा संवैधानिक कानून और साथ ही राजनीतिक प्रतिनिधित्व व संसदीय प्रणाली की विकास-प्रक्रिया को अत्यधिक प्रभावित किया है।

मैग्नाकार्टा पर हस्ताक्षर

'मैग्ना कार्टा' ने लोकतन्त्र, शासक की सीमित शक्ति और समानता के अधिकार के सिद्धान्तों को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। लैटिन तथा फ्रेंच भाषाओं में विचार-विमर्श तथा भाषण के लिए प्रयुक्त 'पार्लियामेन्ट' शब्द का ब्रिटिश इतिहास में उल्लेख, सर्वप्रथम 13 वीं शताब्दी में हुआ है।

11.3.3 'मैग्नाकार्टा' के बाद से लेकर 1625 तक इंग्लैण्ड में पार्लियामेन्ट के स्वरूप और उसकी भूमिका में परिवर्तन

11.3.3.1 'मैग्नाकार्टा' से लेकर 17 वीं शताब्दी तक पार्लियामेन्ट के स्वरूप और उसकी भूमिका में परिवर्तन

1258 में 7 अग्रणी बैरनों ने तत्कालीन शासक हेनरी तृतीय को 'प्रॉविज़न्स ऑफ़ ऑक्सफ़ार्ड' स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। इस व्यवस्था ने निरंकुश एंग्लो-नॉर्मन राजतन्त्र की व्यवस्था समाप्त कर दी गई और अब राज्य-संचालन की शक्ति 15 बैरनों की एक समिति के हाथ में आ गई। इंग्लैण्ड, वेल्स तथा स्कॉटलैण्ड के एकीकरण के उद्देश्य से एडवर्ड प्रथम (शासन काल 1272-1307) ने प्रभावशाली वर्ग का सहयोग प्राप्त करने के लिए और विद्रोहों की सम्भावना को समाप्त करने के लिए पार्लियामेन्ट को एक संस्था के रूप में विकसित होने का अवसर प्रदान किया। उसने समाज के सभी वर्गों को अपनी शिकायतों से सम्बन्धित याचिकाएं प्रस्तुत करने का अधिकार दिया। एडवर्ड प्रथम के काल से शासक की शक्ति अथवा उसकी दुर्बलता के अनुपात में पार्लियामेन्ट की शक्ति घटती या बढ़ती रही परन्तु

वित्तीय मामलों में अब शासक के लिए पार्लियामेन्ट का अनुमोदन लिया जाना आवश्यक हो गया। एडवर्ड द्वितीय को अपदस्थ करने और एडवर्ड तृतीय को सिंहासनारूढ़ करने में पार्लियामेन्ट की निर्णायक भूमिका रही। एडवर्ड तृतीय के शासनकाल में पार्लियामेन्ट की शक्ति में वृद्धि हुई। 1341 में अपर चैम्बर (आभिजात्य वर्ग तथा पादरी वर्ग) तथा लोअर चैम्बर (नाइट्स तथा बर्जेज़) का गठन किया गया। 1376 में लोअर चैम्बर (तदन्तर हाउस ऑफ़ कॉमन्स) के प्रिसाइडिंग ऑफ़ीसर (तदन्तर स्पीकर) सर पीटर डी ला मारे ने शाही व्यय का हिसाब मांगा था और शासक की सैनिक नीति की आलोचना की थी। 1430 में लोअर चैम्बर के लिए सम्पत्ति विषयक न्यूतम योग्यता के आधार पर सदस्यों के चुनाव हेतु नागरिकों को मताधिकार (सीमित मताधिकार) प्रदान किया गया। 1535-42 में वेल्श पर ब्रिटिश अधिकार हो जाने के बाद वेल्श के प्रतिनिधि भी पार्लियामेन्ट में आने लगे। 1544 के बाद पार्लियामेन्ट के दोनों सदनों को क्रमशः हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स तथा हाउस ऑफ़ कॉमन्स कहा जाने लगा। पैलेस ऑफ़ वैस्ट मिनिस्टर में पार्लियामेन्ट बनाई गई। पार्लियामेन्ट के किसी भी सदन का कोई भी सदस्य संसद में बिल प्रस्तुत कर सकता था। शासक द्वारा अनुमोदित बिलों को प्रायः प्रिवी काउन्सिल के सदस्य पार्लियामेन्ट में रखते थे। किसी बिल को कानून बनाए जाने के लिए पहले उसका दोनों सदनों में बहुमत द्वारा अनुमोदन आवश्यक था और इसके बाद अन्त में उसे शासक के पास भेज दिया जाता था जिसे उसका अनुमोदन कर उसे कानून बनाने अथवा अपनी वीटो पावर का प्रयोग कर उसे रद्द करने का अधिकार था। 16 वीं तथा 17 वीं शताब्दी में कई बार शासकों ने अपनी वीटो पावर का प्रयोग कर बिलों को रद्द किया था।

एलिज़ाबेथ प्रथम ने स्वयं शक्तिशाली होते हुए भी पार्लियामेन्ट की महत्ता व उपयोगिता को स्वीकार किया था। ट्यूडर काल में पार्लियामेन्ट ने भी शासक की सर्वोच्चता को स्वीकार करने में संकोच नहीं किया था।

11.4.गौरवपूर्ण क्रान्ति से पूर्व सत्रहवीं शताब्दी में शासक तथा पार्लियामेन्ट के मध्य संघर्ष

11.4.1 जेम्स प्रथम के शासनकाल में शासक व पार्लियामेन्ट के मध्य विवाद

महारानी एलिज़ाबेथ प्रथम की मृत्यु के बाद जेम्स प्रथम के सिंहासनारूढ़ होते ही संसद तथा शासक के मध्य सर्वोच्चता के लिए संघर्ष प्रारम्भ हो गया। जेम्स प्रथम राजत्व के दैविक सिद्धान्त में विश्वास करता था और उसकी दृष्टि में राजा की आलोचना करने, उसका विरोध करने अथवा उसकी नीतियों को नियन्त्रित करने का किसी को अधिकार नहीं था। प्रतिनिधि सभाओं की उपयोगिता पर उसका कोई विश्वास नहीं था। जेम्स प्रथम के शासनकाल में इंग्लैण्ड के राष्ट्रीय चर्च का स्वरूप प्रोटैस्टैन्ट हो गया था जिससे एक ओर जहां इंग्लैण्ड में अल्पसंख्यक रोमन कैथोलिक कुपित थे वहीं दूसरी ओर प्रोटैस्टैन्टों का एक वर्ग (प्यूरिटन्स) इसलिए कुपित था कि चर्च का स्वरूप पूरी तरह प्रोटैस्टैन्ट क्यों नहीं हुआ था। जेम्स प्रथम ने प्यूरिटन्स को आंग्ल-चर्च विरोधी घोषित कर राज्य की ओर से उन्हें दी जाने वाली सुविधाएं समाप्त कर दीं। पार्लियामेन्ट में प्रोटैस्टैन्ट्स का बहुमत था जिन्होंने जेम्स के इस निर्णय का विरोध किया। 1618 में यूरोप में 30 वर्षीय युद्ध प्रारम्भ हुआ जिसको कि रोमन कैथोलिकों व प्रोटैस्टों (लूथरवादी तथा काल्विनवादी) के मध्य धार्मिक संघर्ष की पराकाष्ठा के रूप में देख सकते हैं। इस युद्ध के दौरान जेम्स प्रथम आर्थिक लाभ की सम्भावना देखकर अपने बेटे चार्ल्स का विवाह स्पेन की रोमन कैथालिक मतावलम्बी राजकुमारी मारिया अन्ना से करना चाहता

था जिसका कि बहुसख्यक प्रोटैस्टैन्ट सदस्यीय ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने खुलकर विरोध किया। इसके जवाब में जेम्स ने फ़रवरी, 1622 में पार्लियामेन्ट को भंग कर दिया। विवाह की आकांक्षा हेतु राजकुमार चार्ल्स की स्पेन यात्रा के बावजूद यह विवाह नहीं हो सका। इस समाचार को पार्लियामेन्ट ने अपनी जीत माना। 1624 में जेम्स प्रथम को वित्तीय समस्याओं के समाधान हेतु फिर पार्लियामेन्ट की बैठक बुलानी पड़ी। अपने शासनकाल (1603-1625) के दौरान जेम्स प्रथम को लगातार पार्लियामेन्ट की आलोचना अथवा उसके विरोध का सामना करना पड़ा। 1625 में जब जेम्स प्रथम की मृत्यु हुई तो उसने अपने उत्तराधिकारी चार्ल्स प्रथम के लिए विरासत में शासक और पार्लियामेन्ट के मध्य शाश्वत संघर्ष और पारस्परिक अविश्वास छोड़ा था।

11.4.2 चार्ल्स प्रथम के शासनकाल में शासक तथा पार्लियामेन्ट के मध्य संघर्ष

चार्ल्स प्रथम (1625 से 1649 तक शासनकाल) भी अपने पिता जेम्स प्रथम की भांति राजत्व के दैविक सिद्धान्त में विश्वास रखता था और उसकी दृष्टि में शासक की इच्छा के विरुद्ध पार्लियामेन्ट की आलोचना अथवा उसका विरोध कोई महत्व नहीं रखता था। उसने अपने पिता की प्यूरिटन्स तथा पार्लियामेन्ट के दमन की नीति को जारी रखा। पार्लियामेन्ट के विरोध के बावजूद चार्ल्स प्रथम ने फ्रांस की रोमन कैथोलिक मतावलम्बी राजकुमारी के साथ अपना विवाह रचा लिया। यद्यपि चार्ल्स प्रथम प्रोटैस्टैन्ट विरोधी नहीं था किन्तु रोमन कैथोलिकों के प्रति उसकी उदारता को पार्लियामेन्ट ने सहन नहीं किया और राज्य की नीतियों को प्रोटैस्टैन्ट मतावलम्बियों के पक्ष में करने के लिए उस पर दबाव डाला। 1628 में चार्ल्स प्रथम द्वारा अपनी शक्ति के निरंकुश प्रयोग से सशंकित हाउस ऑफ़ कॉमन्स ने 'पेटीशन ऑफ़ राइट' प्रस्तुत की जिसमें उनकी स्वतन्त्रता की पुनर्स्थापना की मांग रखी गई थी और यह चेतावनी भी दी गई थी कि सम्राट द्वारा उनकी मांग को स्वीकार न किए जाने की स्थिति में पार्लियामेन्ट किसी भी मामले में उसके साथ सहयोग नहीं करेगी। सम्राट को इस याचिका को स्वीकार करना पड़ा। पार्लियामेन्ट की याचिका को स्वीकार किए जाने को हम चार्ल्स प्रथम-पार्लियामेन्ट विवाद में पार्लियामेन्ट की पहली जीत के रूप में देख सकते हैं। परन्तु इसके बाद भी चार्ल्स व पार्लियामेन्ट के मध्य अपने-अपने अधिकारों को लेकर संघर्ष जारी रहा। पार्लियामेन्ट ने चार्ल्स को चुंगी कर (टनेज एण्ड पाउण्ड्स) वसूल करने का आजीवन अधिकार देने से इंकार कर दिया। कुपित चार्ल्स ने मार्च, 1629 में पार्लियामेन्ट को भंग कर दिया और अगले 11 वर्ष तक पार्लियामेन्ट के भंग रहते हुए ही उसने शासन किया। 11 वर्ष तक पार्लियामेन्ट के भंग रहते हुए भी चार्ल्स प्रथम को कोई राहत नहीं मिली। नौ-सेना को अधिक शक्तिशाली बनाने के उद्देश्य से चार्ल्स प्रथम द्वारा पार्लियामेन्ट की स्वीकृति के बिना लगाए गए 'शिपमनी टैक्स' का आम जनता ने खुलकर विरोध किया। 'स्कॉटिश बिशप्स वार' (1639-40) की वित्तीय आपदा के कारण उसे नए कर लगाने के लिए 13 अप्रैल, 1628 में पार्लियामेन्ट को दुबारा बुलाना पड़ा। इस सत्र में भी पार्लियामेन्ट ने चार्ल्स प्रथम के साथ किसी भी प्रकार का सहयोग नहीं किया और उसकी वित्तीय एवं विदेश नीति की कटु आलोचना की। पार्लियामेन्ट के असहयोग से कुपित होकर एक महीने से भी कम समय में 5 मई, 1628 को उसने उसे फिर भंग कर दिया। इस लघु-अवधि की पार्लियामेन्ट को 'शॉर्ट पार्लियामेन्ट' कहा गया। 3 नवम्बर, 1640 में उसने फिर पार्लियामेन्ट बुलवाई जो उसके शेष शासनकाल तथा उसके बाद 1660 तक कार्यरत रही। इसे लौंग पार्लियामेन्ट कहा गया। 'लौंग पार्लियामेन्ट' ने

सर्वप्रथम चार्ल्स प्रथम के दोनों सलाहकारों - लाड तथा बेंडबर्थ को प्राणदण्ड दिलवाया। इसके पश्चात सम्राट से पार्लियामेन्ट को भंग करने का अधिकार छीन लिया गया। सम्राट और पार्लियामेन्ट में खटास आ जाने के बाद पार्लियामेन्ट समर्थक 'राउण्डहैड्स' के द्वारा अक्टूबर, 1642 में ओलिवर क्रॉमवेल के नेतृत्व में 'बैटिल ऑफ़ एजहिल' से 'इंग्लिश सिविल वार' प्रारम्भ हुई। पार्लियामेन्ट के समर्थन में मध्यम वर्ग तथा पंूजीपति वर्ग खड़ा था जब कि सम्राट के पक्ष में सामन्ती वर्ग था। क्रॉमवेल के नेतृत्व में 'आइरन साइड्स' कही जाने वाली सेना ने मॉन्सटनमूर में 1644 में तथा नेजबी में 1645 में चार्ल्स प्रथम की सेना को करारी हार दी। पराजित चार्ल्स प्रथम ने स्कॉटलैण्ड में आत्मसमर्पण कर दिया। एक समझौते के अन्तर्गत स्कॉटलैण्ड के निवासियों ने चार्ल्स प्रथम को ब्रिटिश पार्लियामेन्ट को सौंप दिया। 'आइरनसाइड्स' के दबाव में पार्लियामेन्ट ने एक न्यायालय गठित किया जिसने चार्ल्स प्रथम को प्राणदण्ड सुनाया। यह उल्लेखनीय है कि पार्लियामेन्ट के निर्वाचित सदस्यों का बहुमत चार्ल्स प्रथम को प्राणदण्ड दिए जाने के पक्ष में नहीं था। क्रॉमवेल ने 'न्यू मॉडल आर्मी' द्वारा अपने विरोधियों का दमन किया। इसको 1648 का 'प्राइड पर्ज' (दल-शोधन) का नाम दिया जाता है। 30 जनवरी, 1649 को चार्ल्स प्रथम को प्राणदण्ड दे दिया गया। शताब्दियों से इंग्लिश पार्लियामेन्ट शनैः-शनैः जिस प्रकार इंग्लिश राजतन्त्र की शक्तियों को सीमित करने का जो प्रयास कर रही थी वह अन्ततः अपने निष्कर्ष तक 'सिविल वार' तथा चार्ल्स प्रथम के मृत्यु दण्ड के रूप में दृष्टिगोचर हुआ।

11.4.3 गणतन्त्र युग (1649-1660)

आयरलैण्ड व स्कॉटलैण्ड में चार्ल्स द्वितीय को चार्ल्स प्रथम का उत्तराधिकारी घोषित किया गया परन्तु क्रॉमवेल के कुशल सैन्य-नेतृत्व में राजतन्त्र के समर्थकों की पराजय के बाद उसे अपनी जान बचाने के लिए इंग्लैण्ड छोड़कर यूरोप के अन्य देशों में दर-दर भटकना पड़ा। पार्लियामेन्ट से अपने विरोधियों को हटाकर 1649 से 1653 तक क्रॉमवेल ने इस 'रम्प पार्लियामेन्ट' शासन का दायित्व 'काउन्सिल ऑफ़ स्टेट' को सौंपा जिसके सदस्य के रूप में उसने पार्लियामेन्ट का नेतृत्व किया। अब इंग्लैण्ड को कॉमनवेल्थ (इंग्लैण्ड, स्कॉटलैण्ड तथा आयरलैण्ड) बना दिया गया। 'रम्प पार्लियामेन्ट' के युग में ही सदस्यों को 'मेम्बर ऑफ़ पार्लियामेन्ट' कहा जाने लगा था। पार्लियामेन्ट के सदस्य चार्ल्स प्रथम के पतन को अपनी सफलता मानकर अनुशासनहीनता व उद्दण्डता की सीमा लांघने लगे थे जो कि क्रॉमवेल को स्वीकार्य नहीं था। 20 अप्रैल, 1653 को उसने पार्लियामेन्ट पर सैनिक आक्रमण करके अपने विरोधियों को वहां से निकाल बाहर किया और 'रम्प पार्लियामेन्ट' को भंग कर दिया। अब क्रॉमवेल ने मनोनीत सदस्यों की अल्पजीवी, एक सदनीय 'बेयरबोन्स पार्लियामेन्ट' का गठन किया। बाद में 16 दिसम्बर, 1653 को उसके सहयोगी नेताओं ने उसे 'लॉर्ड प्रोटैक्टर ऑफ़ कॉमनवेल्थ ऑफ़ इंग्लैण्ड, स्कॉटलैण्ड एण्ड आयरलैण्ड' के रूप में शासन करने के लिए आमन्त्रित किया। क्रॉमवेल ने 1653 से लेकर मृत्यु पर्यन्त (3 सितम्बर, 1658) तक 'लॉर्ड प्रोटैक्टर ऑफ़ कॉमनवेल्थ ऑफ़ इंग्लैण्ड, स्कॉटलैण्ड एण्ड आयरलैण्ड' के रूप में शासन किया। यद्यपि गणतन्त्र युग (1649-1660) को हम सैनिक तानाशाही का युग मानते हैं पर इसी अवधि में पार्लियामेन्ट के भविष्य का निर्धारण भी हुआ था। निम्न सदन अर्थात् 'हाउस ऑफ़ कॉमन्स' में निर्वाचित सदस्य होते थे जब कि उच्च सदन अर्थात् 'हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स के

सदस्य - 'लॉर्ड्स स्प्रिचुअल' तथा लॉर्ड्स टैम्पोरल' (अधिकांश पीयर्स) होते थे जिनकी कि नियुक्ति प्रधान मन्त्री की अथवा 'हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स अपॉइन्टमेन्ट कमीशन' की सलाह पर शासक द्वारा की जाती थी।

3 सितम्बर, 1658 को ओलिवर क्रॉमवेल की मृत्यु के बाद सम्पूर्ण व्यवस्था चरमरा गई। उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र रिचर्ड क्रॉमवेल ने लगभग आठ महीने तक 'लॉर्ड प्रोटैक्टर ऑफ़ कॉमनवेल्थ ऑफ़ इंग्लैण्ड, स्कॉटलैण्ड एण्ड आयरलैण्ड' के रूप में शासन का संचालन किया परन्तु मई, 1659 को उसे अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा और इसके साथ ही 'लॉर्ड प्रोटैक्टर' का पद भी समाप्त हो गया। इसके बाद जॉर्ज मॉन्क ने 'लौंग पार्लियामेन्ट' को पुनर्जीवित किया और उसकी देखरेख में 1660 में नवीन संसद में वह आवश्यक संवैधानिक परिवर्तन किए गए जिससे कि राजतन्त्र को पुनर्स्थापित किया जा सके और निर्वासित चार्ल्स द्वितीय को सिंहासनारूढ़ किया जा सके।

11.4.4 राजतन्त्र की पुनर्स्थापना (1660-1688)

1660 में चार्ल्स द्वितीय के सिंहासनारूढ़ होने के बाद इस परम्परागत सिद्धान्त को पुनः स्वीकार किया गया कि सरकार को राजा, हाउस ऑफ़ लॉडर्् तथा हाउस ऑफ़ कॉमन्स, इन तीनों के द्वारा संचालित किया जाना चाहिए। चार्ल्स द्वितीय का शासनकाल (1660-1685) एक ओर जहां अराजकता का काल था वहीं इस काल में राजा की शक्ति को निरंकुश बनाने में नवीन पार्लियामेन्ट (कैवेलियर पार्लियामेन्ट) में उसके समर्थक सदस्यों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। केवल आंग्ल चर्च समर्थकों को छोड़कर शेष सभी प्रोटैस्टैन्ट मतावलम्बियों (डिसेन्टर्स) के विरुद्ध कठोर नीति अपनाई गई। 'डिसेन्टर्स' के कट्टर विरोधी 'टोरी' (अनुदार दलीय) कहलाए और जो धार्मिक सहिष्णुता के समर्थक थे वह 'व्हिग' (उदार दलीय) कहलाए। चार्ल्स द्वितीय ने छुपकर रोमन कैथोलिक मत अपना लिया था और साथ ही उसने फ्रांस के शासक लुई चतुर्दश का अंधानुकरण करना प्रारम्भ कर दिया।

11.5 गौरवपूर्ण क्रान्ति (1688)

11.5.1 गौरवपूर्ण क्रान्ति के कारण

1. 1685 में चार्ल्स द्वितीय की मृत्यु के उपरान्त उसका भाई जेम्स द्वितीय सिंहासनारूढ़ हुआ। जेम्स द्वितीय कैथोलिक था और वह वह अपने मत के प्रचार-प्रसार हेतु कटिबद्ध था। उसका राजत्व के दैविक सिद्धान्त में अटूट विश्वास था। यह बातें पार्लियामेन्ट को स्वीकार्य नहीं थीं। इंग्लैण्ड में उभरता हुआ और समाज में एक सीमा तक अपना प्रभाव स्थापित कर चुका शिक्षित मध्यम वर्ग शासक की निरंकुशता सहन करने को तैयार नहीं था।

2. 'व्हिग' दल जेम्स द्वितीय का विरोधी था। इसी दल ने जेम्स द्वितीय के अवैध पुत्र मन्मथ को विद्रोह करने के लिए प्रेरित किया। मन्मथ ने विद्रोह करके स्वयं को इंग्लैण्ड के सिंहासन का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। जेम्स द्वितीय ने मन्मथ के विद्रोह को कुचल दिया और न्यायालय ने उसे प्राणदण्ड दिया। जनता ने इस न्यायालय को 'ब्लडी कोर्ट्स' कहा। इस प्रसंग के कारण जेम्स द्वितीय इंग्लैण्ड, स्कॉटलैण्ड व आयरलैण्ड की जनता और पार्लियामेन्ट की घृणा का पात्र बन गया।

3. चार्ल्स द्वितीय के काल में पारित 'टेस्ट अधिनियम' के अन्तर्गत केवल एंग्लिकन चर्च के अनुयायी ही सरकारी पदों पर नियुक्त किए जा सकते थे किन्तु जेम्स द्वितीय ने इस अधिनियम को स्थगित कर मन्त्रिमण्डल, न्यायालय, नगर

निगम और सेना के अनेक उच्च पदों पर कैथोलिकों की नियुक्ति कर दी। पार्लियामेन्ट ने इस कृत्य को संविधान का अपमान बताया किन्तु जेम्स द्वितीय ने इस आलोचना की कोई परवाह नहीं की।

4. जेम्स द्वितीय शिक्षा के क्षेत्र में भी कैथोलिक आधिपत्य स्थापित करना चाहता था और इसीलिए उसने अपनी नीतियों के विरोधी कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के कुलपति को अपदस्थ कर दिया और परिणामतः जनता में उसके प्रति आक्रोश में और वृद्धि हुई।

5. जेम्स द्वितीय की विदेश नीति, विशेषकर उसका फ्रांस के शासक लुई चौदहवें

6. जेम्स द्वितीय की एंग्लिकन चर्च के विरुद्ध नीतियों का कैण्टरबरी के आर्कबिशप तथा अन्य 6 पादरियों ने खुलकर विरोध किया। जेम्स ने उन सभी को राजद्रोह के आरोप में टॉवर ऑफ़ लन्दन में कैद कर लिया। जनता के दबाव में न्यायधीशों ने उन सभी को आरोप-मुक्त कर दिया।

7. जेम्स द्वितीय की पुत्री मैरी को, जिसका कि विवाह हालैण्ड के शासक प्रोटैस्टैन्ट मतावलम्बी विलियम से हुआ था, सभी लोग उसका उत्तराधिकारी मानते थे किन्तु 10 जून, 1688 को जेम्स द्वितीय को अपनी दूसरी रानी मैडोना से एक पुत्र हुआ और अब यह निश्चित हो गया कि उसका यह पुत्र ही उसका उत्तराधिकारी होगा जिसका कि लालन-पालन एक कैथोलिक की भांति होगा। पार्लियामेन्ट को यह स्वीकार्य नहीं था कि भविष्य में भी इंग्लैण्ड का शासक कैथोलिक ही हो। इन परिस्थितियों में शासक और पार्लियामेन्ट के मध्य संघर्ष हुआ और यही गौरवपूर्ण क्रान्ति का तात्कालिक कारण बना।

11.5.2 गौरवपूर्ण क्रान्ति की घटना

इंग्लैण्ड के सिंहासन पर फिर से कैथोलिक शासक के आरूझ होने की सम्भावना समाप्त करने के उद्देश्य से पादरी वर्ग, टोरी तथा व्हिग दल ने जेम्स द्वितीय को अपदस्थ कर उसके स्थान पर उसकी बड़ी बेटी मैरी के पति, प्रोटैस्टैन्ट मतावलम्बी विलियम ऑफ़ ऑरेन्ज (हॉलैण्ड का शासक) को इंग्लैण्ड के सिंहासन पर अपना अधिकार करने के लिए आमन्त्रित किया। विलियम ऑफ़ औरैन्ज ने इस निमन्त्रण स्वीकार करते हुए इंग्लैण्ड की ओर कूच किया। जेम्स द्वितीय के सैन्य अधिकारी व उसकी अपनी छोटी पुत्री एन भी विद्रोहियों के साथ हो गए। युद्ध से पूर्व ही अपनी सैनिक असमर्थता देखकर जेम्स द्वितीय 23 दिसम्बर, 1688 को इंग्लैण्ड छोड़कर फ्रांस भाग गया और बिना रक्त की एक बूंद बहे इंग्लैण्ड में सत्ता परिवर्तन (मैरी तथा विलियम ऑफ़ ऑरेन्ज के संयुक्त रूप से सिंहासनारूढ़ होने से) हो गया जिसको हम गौरवपूर्ण क्रान्ति के नाम से जानते हैं।

11.5.3 'बिल ऑफ़ राइट्स अथवा डिक्लेरेशन ऑफ़ राइट्स (दिसम्बर, 1689)

मैरी तथा विलियम ऑफ़ ऑरेन्ज द्वारा संयुक्त रूप से इंग्लैण्ड की सत्ता सम्भाले जाने से यह स्पष्ट हो गया कि पार्लियामेन्ट के निर्णयों की अवज्ञा करके कोई भी शासक अपने पद पर बना नहीं रह सकता है। इसके साथ ही राजत्व के दैविक सिद्धान्त की अवधारणा, इंग्लैण्ड के सन्दर्भ में अर्थहीन हो गई। दिसम्बर, 1689 में पार्लियामेन्ट ने 'बिल ऑफ़ राइट्स' पारित किया जिसके अनुसार भूतकालीन 'डिक्लेरेशन ऑफ़ राइट्स' के प्रावधानों की पुनः पुष्टि की गई। इसमें शासक के विशेषाधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाया गया। इसने यह व्यवस्था की कि शासक -

1. न तो पार्लियामेन्ट द्वारा पारित कानूनों को स्थगित कर सकता है,
2. न ही पार्लियामेन्ट के अनुमोदन के बिना नए कर लगा सकता है,
3. न ही याचिका प्रस्तुत करने के अधिकार का उल्लंघन कर सकता है,
4. न ही शान्तिपूर्ण काल के दौरान पार्लियामेन्ट की सहमति के बिना स्थायी सेना खड़ी कर सकता है,
5. न ही प्रोटैस्टैन्ट प्रजा-जनों का हथियार रखने का अधिकार छीन सकता है,
6. न ही संसदीय चुनावों में अनावश्यक हस्तक्षेप कर सकता है,
7. न ही पार्लियामेन्ट में बहस के दौरान दोनों सदनों में से किसी के भी सदस्य की कही हुई किसी भी बात के आधार पर उससे ज़मानत के रूप में एक बड़ी रकम की मांग कर सकता है और न उसे कठोर दण्ड दे सकता है।

11.5.4 गौरवपूर्ण क्रान्ति के परिणाम

अब इंग्लैण्ड में संवैधानिक राजतन्त्र की स्थापना हो गई। इंग्लैण्ड का शासक अब केवल प्रोटैस्टैन्ट ही हो सकता था। शासक की शक्तियों पर, राज्य के खर्च पर और शासक के निजी खर्च पर पार्लियामेन्ट का नियन्त्रण स्थापित हो गया। प्रति वर्ष पार्लियामेन्ट का अधिवेशन होना अनिवार्य हो गया। अब शासन में शासक के स्थान पर पार्लियामेन्ट की सर्वाच्चता स्थापित हो गई। अब राज-परिवार में होने वाले विवाहों के लिए भी पार्लियामेन्ट का अनुमोदन आवश्यक हो गया। अब इंग्लैण्ड उदार एवं संवैधानिक राजतन्त्र का मुख्य केन्द्र बन गया। गौरवपूर्ण क्रान्ति के उदार विचारों ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अमेरिकी और फ़्रांसीसी क्रान्ति को प्रभावित किया और आगे चल कर समस्त विश्व में लोकतान्त्रिक व्यवस्था की स्थापना हेतु आन्दोलनों की पृष्ठभूमि तैयार की।

अभ्यास अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. 'मैग्नाकार्टा'।
2. चार्ल्स प्रथम का पतन।
3. 1689 का 'बिल ऑफ़ राइट्स'।

11.6 सारांश

विश्व इतिहास में इंग्लैण्ड को संसदीय संस्थाओं की जन्म भूमि कहा जाता है। इंग्लैण्ड में सन् 1066 में विलियम ऑफ़ नॉर्मन्डी ने एक सामन्ती व्यवस्था का प्रचलन किया था जिसमें उसने 'टैनेन्ट-इन-चीफ़' (भू-स्वामी) तथा चर्च के प्रतिनिधियों की एक समिति गठित कर कानून बनाने से पहले उसकी सलाह लेने की व्यवस्था की थी। सन् 1100 में हेनरी प्रथम ने 'चार्टर ऑफ़ लिबर्टीज़' के द्वारा विशिष्ट क्षेत्रों में अपनी शक्तियों को सीमित कर दिया था। 15 जून, 1215 की 'मैग्ना कार्टा' के अनुसार शासक को कर लगाने और कर एकत्र करने से पहले अपनी रॉयल काउन्सिल की सहमति लेना आवश्यक हो गया। इसी रॉयल काउन्सिल ने बाद में विकसित होते-होते पार्लियामेन्ट का रूप धारण कर लिया। 'मैग्ना कार्टा' ने लोकतन्त्र, शासक की सीमित शक्ति और समानता के अधिकार के सिद्धान्तों को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इंग्लैण्ड, वेल्स तथा स्कॉटलैण्ड के एकीकरण के उद्देश्य से एडवर्ड प्रथम (शासन

काल 1272-1307) ने प्रभावशाली वर्ग का सहयोग प्राप्त करने के लिए और विद्रोहों की सम्भावना को समाप्त करने के लिए पार्लियामेन्ट को एक संस्था के रूप में विकसित होने का अवसर प्रदान किया। वित्तीय मामलों में अब शासक के लिए पार्लियामेन्ट का अनुमोदन लिया जाना आवश्यक हो गया। एडवर्ड तृतीय के शासनकाल में पार्लियामेन्ट की शक्ति में वृद्धि हुई। 1430 में लोअर चैम्बर के लिए सम्पत्ति विषयक न्यूतम योग्यता के आधार पर सदस्यों के चुनाव हेतु नागरिकों को मताधिकार (सीमित मताधिकार) प्रदान किया गया। 1544 के बाद पार्लियामेन्ट के दोनों सदनों को क्रमशः हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स तथा हाउस ऑफ़ कॉमन्स कहा जाने लगा। ट्यूडर काल में पार्लियामेन्ट ने शासक की सर्वोच्चता को स्वीकार करने में संकोच नहीं किया था किन्तु महारानी एलिज़ाबेथ प्रथम की मृत्यु के बाद जेम्स प्रथम तथा चार्ल्स प्रथम के शासनकाल में संसद तथा शासक के मध्य सर्वोच्चता के लिए संघर्ष प्रारम्भ हो गया।

चार्ल्स प्रथम और पार्लियामेन्ट में खटास आ जाने के बाद पार्लियामेन्ट समर्थक 'राउण्डहैड्स' के द्वारा अक्टूबर, 1642 में ओलिवर क्रॉमवेल के नेतृत्व में 'बैटिल ऑफ़ एजहिल' से 'इंग्लिश सिविल वार' प्रारम्भ हुई और अन्ततः 1649 में चार्ल्स प्रथम का पतन हुआ और इंग्लैण्ड में अगले 11 वर्षों तक गणतन्त्र स्थापित रहा। 1660 में राजतन्त्र की पुनर्स्थापना से लेकर 1688 तक पार्लियामेन्ट और शासक के मध्य सर्वोच्चता हेतु संघर्ष जारी रहा। इस संघर्ष में कैथोलिक चार्ल्स द्वितीय व जेम्स द्वितीय और प्रोटैस्टैन्ट समर्थक पार्लियामेन्ट के मध्य धार्मिक विवाद भी ज़ोर पकड़ता गया। 1688 में उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर उठे विवाद ने क्रान्ति का रूप ले लिया जिसके फलस्वरूप जेम्स द्वितीय का पतन हुआ। 1689 के 'बिल ऑफ़ राइट्स' द्वारा शासक पर पार्लियामेन्ट की सर्वोच्चता स्थापित हुई और इंग्लैण्ड में संवैधानिक राजतन्त्र की स्थापना हुई। गौरवपूर्ण क्रान्ति के उदार विचारों ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अमेरिकी और फ्रांसीसी क्रान्ति को प्रभावित किया और आगे चल कर समस्त विश्व में लोकतान्त्रिक व्यवस्था की स्थापना हेतु आन्दोलनों की पृष्ठभूमि तैयार की।

11.7 पारिभाषिक शब्दावली

'मैग्नाकार्टा' - महान अधिकार पत्र

अपर चैम्बर - उच्च सदन

वीटो पावर - निषेधाधिकार

रम्प पार्लियामेन्ट - बची-खुची पार्लियामेन्ट

अपॉइन्टमेन्ट कमीशन - नियुक्ति आयोग

ब्लडी कोर्ट्स - खूनी न्यायालय

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.देखिए11.3.2 'मैग्नाकार्टा'।

2.देखिए 11.4.2 चार्ल्स प्रथम के शासनकाल में शासक तथा पार्लियामेन्ट के मध्य संघर्ष।

3.देखिए 11.5.3 'बिल ऑफ़ राइट्स अथवा डिक्लेरेशन ऑफ़ राइट्स (दिसम्बर, 1689)।

11.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

मैरीमैन, जॉन एम0 - 'हिस्ट्री ऑफ़ मॉडर्न यूरोप' (बुक 1), न्यूयॉर्क, 2009

मुखर्जी, एल0 - 'ए स्टडी ऑफ़ यूरोपियन हिस्ट्री' कोलकाता, 2000

सेल्स, जी0 ओ0 - 'दि किंग्स' पार्लियामेन्ट ऑफ़ इंग्लैण्ड', लन्दन, 1981

बट, आर0 - 'ए हिस्ट्री ऑफ़ पार्लियामेन्ट इन दि मिडिल एजेज़' लन्दन, 1989

11.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

मैकॉले, टी0 बी0 - 'दि हिस्ट्री ऑफ़ इंग्लैण्ड फ्रॉम दि एक्सेशन ऑफ़ जेम्स सेकेन्ड, न्यूयॉर्क, 2009

जेनकिन्स, सिमोन - 'ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ़ इंग्लैण्ड', लन्दन, 2012

11.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. गौरवपूर्ण क्रान्ति के महत्व पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

इकाई बारह

वैज्ञानिक क्रान्ति, कृषि क्रान्ति,औद्योगिक क्रान्ति और उसका प्रभाव

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 वैज्ञानिक क्रान्ति

- **12.3.1** वैज्ञानिक क्रान्ति की प्रमुख विशेषताएँ
- **12.3.2** प्रमुख वैज्ञानिक और उनके योगदान
- **12.3.3** वैज्ञानिक क्रान्ति का प्रभाव
- **12.3.4** वैज्ञानिक क्रांति और औद्योगिक क्रांति के मध्य संबंध

12.4 कृषि क्रान्ति

- **12.4.1** कृषि क्रान्ति के कारण
- **12.4.2** कृषि क्रान्ति की प्रमुख विशेषताएँ
- **12.4.3** कृषि क्रान्ति के प्रभाव

12.5 औद्योगिक क्रान्ति से अभिप्राय और प्रमुख परिवर्तन

12.6 पृष्ठभूमि-चार अन्य क्रान्तियां

- **12.6.1** कृषि क्रान्ति
- **12.6.2** जनांकिकीय क्रान्ति
- **12.6.3** व्यवसायिक क्रान्ति
- **12.6.4** परिवहन क्रान्ति

12.7 इंग्लैण्ड में प्रारम्भ होने के कारण

12.8 नवीन अविष्कार

- **12.8.1** वस्त्र उद्योग
- **12.8.2** वाष्प शक्ति
- **12.8.3** लोहा और कोयला उद्योग
- **12.8.4** यातायात और परिवहन में तकनीकी प्रयोग
- **12.8.5** संचार साधनों का विकास

12.9 विकास और प्रसार

12.10 औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव और परिणाम

12.11 सारांश

12.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.13 तकनीकी शब्दावली और कथन

12.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

12.15 सहायक और उपयोगी पाठ्य सामग्री

12.16 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

आधुनिक युग के प्रारम्भ से ही औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना, वैज्ञानिक प्रगति, वाणिज्यवाद और प्रारम्भिक पूंजीवाद के उदय के रूप में यूरोप की आर्थिक स्थिति में धीरे-धीरे बदलाव आ रहा था। 18वीं सदी तक आते आते यह बदलाव उत्पादन की तकनीक और स्वरूप में दिखाई देने लगा तथा इसने एक ऐसी अर्थव्यवस्था को जन्म दिया, जो कृषि पर आधारित न हो कर उद्योग प्रधान थी और जिससे हस्त एवं कुटीर उद्योगों के स्थान पर मशीनी युग का प्रारम्भ हुआ। इंग्लैण्ड से प्रारम्भ होकर यह बदलाव धीरे-धीरे यूरोप के अन्य देशों में भी होने लगे। इन बदलावों ने यूरोप के आर्थिक स्वरूप में ही परिवर्तन नहीं किया वरन् सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक स्वरूप को भी प्रभावित किया। यह बदलाव औद्योगिक क्रान्ति कहे जाते हैं।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई में आप -

- वैज्ञानिक क्रान्ति, कृषि क्रान्ति.औद्योगिक क्रान्ति का अर्थ और उन प्रमुख परिवर्तनों एवं अविष्कारों को जान सकेंगे, जिन्होंने आर्थिक क्षेत्र में क्रान्ति का रूप लिया।
- वैज्ञानिक क्रान्ति, कृषि क्रान्ति.औद्योगिक क्रान्ति के लिए उत्तरदायी कारणों एवं परिस्थितियों को जान सकेंगे, जिन्होंने इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया।
- विभिन्न उद्योगों का मशीनीकरण करने वाले प्रमुख अविष्कारों और तकनीकों को जान सकेंगे।
- औद्योगिक क्रान्ति के प्रसार और विश्व में उसके प्रभाव को जान सकेंगे।

12.3 वैज्ञानिक क्रान्ति

16वीं और 17वीं शताब्दियों के दौरान यूरोप में जो बौद्धिक और वैज्ञानिक चेतना का जागरण हुआ, उसे ही वैज्ञानिक क्रान्ति कहा जाता है। इसने न केवल प्रकृति के प्रति मानव की समझ को बदला, बल्कि ज्ञान प्राप्त करने के तरीकों, सत्ता-संस्थाओं, धर्म, तथा समाज के स्वरूप को भी चुनौती दी।यह केवल खोजों और आविष्कारों की एक श्रृंखला नहीं थी, बल्कि यह एक बौद्धिक क्रांति थी जिसने प्रकृति, ब्रह्मांड, ज्ञान की अवधारणा और मानव के स्थान को पुनर्परिभाषित किया। इस क्रांति ने शास्त्रीय ज्ञान, धार्मिक वर्चस्व और पारंपरिक विश्वासों को चुनौती दी और आधुनिक विज्ञान के सिद्धांतों-निरीक्षण, प्रयोग, और तर्कको प्रतिष्ठित किया। यह परिवर्तन केवल कुछ वैज्ञानिकों द्वारा किए गए आविष्कारों या खोजों तक सीमित नहीं था, बल्कि यह एक व्यापक बौद्धिक आंदोलन था जिसने आधुनिक विज्ञान की नींव रखी।

मध्य युग में यूरोप का बौद्धिक जीवन मुख्यतः ईसाई धर्म और चर्च की मान्यताओं पर आधारित था। अरस्तू और टॉलेमी जैसे ग्रीक दार्शनिकों की रचनाएं चर्च द्वारा अनुमोदित ज्ञान का स्रोत मानी जाती थीं। ब्रह्मांड की व्याख्या

टॉलेमी के भू-केंद्रित (Geocentric) सिद्धांत पर आधारित थी, जिसमें पृथ्वी को ब्रह्मांड का केंद्र माना गया था। ज्ञान को स्थिर और अंतिम समझा जाता था।

14वीं सदी में पुनर्जागरण (Renaissance) और 15वीं सदी में मुद्रण क्रांति ने इस बौद्धिक जड़ता को तोड़ने का कार्य किया। पुनर्जागरण ने शास्त्रों की पुनर्व्याख्या और मानवीय तर्क को महत्त्व दिया, जबकि मुद्रण ने ज्ञान को व्यापक स्तर पर प्रसारित किया। इसी काल में समुद्री खोजों और व्यापारिक क्रांतियों ने मानव को प्रकृति और समाज के नए पहलुओं से अवगत कराया और वैज्ञानिक क्रान्ति की आधारशिला रखी।

12.3.1 वैज्ञानिक क्रान्ति की प्रमुख विशेषताएँ:

1. **अनुभव और पर्यवेक्षण पर बल:**वैज्ञानिक क्रान्ति से पूर्व ज्ञान के स्रोत अरस्तू और चर्च की शिक्षाएं थीं। वैज्ञानिक क्रान्ति ने इन स्थापनाओं को चुनौती दी और अनुभवजन्य (empirical) प्रमाणों तथा वैज्ञानिक पद्धति (scientific method) पर ज़ोर दिया।
2. **संदेह और आलोचना की प्रवृत्ति:**वैज्ञानिक विचारों में पूर्व धारणाओं को आंख मूंदकर स्वीकारने के बजाय, तर्क और प्रमाणों के आधार पर जांचने की प्रवृत्ति विकसित हुई।
3. **हेलियोसेंट्रिक सिद्धांत का विकास:**निकोलस कोपरनिकस (1473–1543) ने भू-केंद्रित ब्रह्मांड की धारणा को चुनौती देते हुए यह प्रतिपादित किया कि सूर्य ब्रह्मांड का केंद्र है और पृथ्वी समेत अन्य ग्रह उसकी परिक्रमा करते हैं। यह "हेलियोसेंट्रिक थ्योरी" वैज्ञानिक क्रांति का प्रारंभिक सूत्र थी।
4. **अनुभववाद और प्रयोगवाद की प्रतिष्ठा:**फ्रांसिस बेकन (1561–1626) ने वैज्ञानिक ज्ञान को तर्क और अनुभवजन्य पद्धति पर आधारित करने का आग्रह किया। उन्होंने "इंडक्टिव मेथड" की स्थापना की – अर्थात विशेष तथ्यों से सामान्य सिद्धांत की ओर बढ़ना।
5. **गणितीयसूत्रों का प्रयोग:**वैज्ञानिक सिद्धांतों को प्रमाणित करने के लिए गणित और ज्यामिति का उपयोग किया गया। यह विज्ञान को मात्र दार्शनिक अवधारणाओं से आगे ले जाकर प्रयोगों और मापन की दुनिया में ले गया।विज्ञान में गणित के प्रयोग से अवधारणाएं अधिक सटीक और सार्वभौमिक बन सकीं।
6. **प्राकृतिक नियमों की खोज:**वैज्ञानिकों ने यह मान लिया कि प्रकृति कुछ निश्चित नियमों के अधीन कार्य करती है, जिन्हें समझा और परिभाषित किया जा सकता है।
7. **प्रकाशन और संवाद का विकास:**वैज्ञानिक खोजों को लिखित रूप में प्रकाशित करने की परंपरा ने वैज्ञानिक समुदाय का निर्माण किया, जिससे संवाद और समीक्षा की प्रक्रिया ने गति पकड़ी।

12.3.2 प्रमुख वैज्ञानिक और उनके योगदान:

- **निकोलस कोपरनिकस:** "हेलिएोसेन्ट्रिक थ्योरी" की स्थापना की -सूर्य को ब्रह्मांड का केंद्र माना, न कि पृथ्वी को।अपनी कृति*De RevolutionibusOrbiumCoelestium* (1543) में उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि पृथ्वी समेत सभी ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं। इस विचार ने चर्च के सिद्धांतों को सीधे चुनौती दी।
- **गैलिलियो गैलिली (1564–1642):**दूरबीन का प्रयोग कर खगोलीय पिंडों की यथार्थ जानकारी दी। उन्होंने गति के नियमों और जड़त्व के सिद्धांत को समझाया।उन्होंने दूरबीन का प्रयोग करके चंद्रमा की सतह, बृहस्पति के उपग्रह और शुक्र ग्रह का अवलोकन किया। उन्होंने जड़त्व, त्वरण और गति के सिद्धांतों पर कार्य किया और वैज्ञानिक पद्धति को व्यवहार में लाया। उनकी कृति*Dialogue Concerning the Two Chief World Systems* (1632) चर्च के साथ टकराव का कारण बनी।
- टाइको ब्राहे:उन्होंने खगोलीय पिंडों की विस्तृत प्रेक्षणात्मक जानकारी एकत्र की जो उनके उत्तराधिकारी जोहान्स केपलर के लिए आधार बनी।
- **जोहान्स केपलर:**केपलर ने ग्रहों की गति के तीन नियम प्रतिपादित किए। उन्होंने बताया किग्रह अण्डाकार कक्षा में सूर्य की परिक्रमा करते हैं, उनकी गति सूर्य से दूरी पर निर्भर करती है।
- **आइज़ैक न्यूटन (1643–1727):**गुरुत्वाकर्षण का सार्वभौमिक नियम तथा गति के तीन नियम दिए। उनकी कृति*PhilosophiaNaturalis Principia Mathematica* (1687) ने गुरुत्वाकर्षण का सार्वभौमिक नियम और गति के तीन नियम प्रतिपादित किए, जो कि वैज्ञानिक क्रांति का चरम बिंदु मानी जाती है। न्यूटन ने गणित, भौतिकी और खगोल विज्ञान को एकीकृत कर वैज्ञानिक क्रांति को चरम तक पहुँचाया।
- **फ्रांसिस बेकन और रेने डेसकार्तेस:**वैज्ञानिक पद्धति की नींव रखी। बेकन ने inductive reasoning पर बल दिया जबकि डेसकार्तेस ने deductive method को प्रस्तुत किया।रेने का प्रसिद्ध कथन *Cogito, ergo sum* (मैं सोचता हूँ, इसलिए हूँ) वैज्ञानिक बौद्धिकता का प्रतीक बन गया।

12.3.3 वैज्ञानिक क्रान्ति का प्रभाव:

1. **ज्ञान की अवधारणा मेंपरिवर्तन:**वैज्ञानिक क्रान्ति के उदय के पश्चात अब ज्ञान को अनुभव, प्रयोग और तर्क के आधार पर परखा जाने लगा। धार्मिक ग्रंथों की अपरिहार्यता को चुनौती मिली।
2. **धर्म और विज्ञान का टकराव:**वैज्ञानिक क्रान्ति ने चर्च की सत्ता को चुनौती दी। गैलीलियो जैसे वैज्ञानिकों को चर्च का विरोध झेलना पड़ा।चर्च द्वारा नियंत्रित शिक्षा व्यवस्था को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से चुनौती मिली। गैलीलियो का मुकदमा इसका प्रसिद्ध उदाहरण है।

3. **आधुनिक विज्ञान की नींव:**विज्ञान अब विश्लेषण, अवलोकन और परीक्षण पर आधारित अनुशासन बन गया। इसने आगे चलकर औद्योगिक क्रांति, आधुनिक चिकित्सा, इंजीनियरिंग और तकनीकी विकास को जन्म दिया।
4. **समाज और राजनीति पर प्रभाव:**वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने लोकतंत्र, मानव अधिकार, तर्क आधारित शासन, और विवेकवादी सोच को प्रोत्साहन दिया। "एनलाइटनमेंट" आंदोलन पर इसका सीधा प्रभाव पड़ा।
5. **शिक्षा और संस्थानों का विकास:**नई वैज्ञानिक खोजों के लिए शोध संस्थान, प्रयोगशालाएं और विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। रॉयल सोसाइटी (1660) और फ्रेंच एकेडमी ऑफ साइंसेज (1666) जैसी संस्थाओं ने विज्ञान को संस्थागत स्वरूप दिया।
6. **ज्ञान की स्वायत्तता:**धर्म से स्वतंत्र होकर वैज्ञानिक ज्ञान की धारणा को बल मिला।
7. **औद्योगिक क्रान्ति की भूमिका:**वैज्ञानिक सिद्धांतों ने तकनीकी विकास को प्रेरित किया जिससे औद्योगिक क्रांति संभव हुई।
8. **मानवतावाद और आधुनिकता का उदय:**वैज्ञानिक सोच ने मानव को ब्रह्मांड के केंद्र में रखने की बजाय, उसे ब्रह्मांड की समझ का साधक माना।
9. **यूरोप की श्रेष्ठता:**वैज्ञानिक क्रान्ति ने यूरोप को तकनीकी और सैन्य दृष्टि से एशिया व अन्य क्षेत्रों से श्रेष्ठ बना दिया।

12.3.4 वैज्ञानिक क्रांति और औद्योगिक क्रांति के मध्य संबंध

वैज्ञानिक क्रांति ने ही औद्योगिक क्रांति की वैचारिक, तकनीकी और बौद्धिक ज़मीन तैयार की।

❖ **वैज्ञानिक क्रांति ने तर्क और प्रयोग की संस्कृति को जन्म दिया:** वैज्ञानिक क्रांति (16वीं–17वीं शताब्दी) ने यह धारणा स्थापित की कि प्रकृति कुछ निश्चित नियमों के अधीन कार्य करती है और इन नियमों को समझकर मानव उन्हें अपने हित में प्रयोग कर सकता है। यही विचार औद्योगिक क्रांति (18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इंग्लैंड से शुरू होकर पूरे यूरोप में फैली) की प्रेरणा बना। वैज्ञानिकों ने जो "प्राकृतिक नियम" प्रतिपादित किए, जैसे न्यूटन के गति और गुरुत्वाकर्षण के नियम, उन्होंने यांत्रिक सोच को जन्म दिया। इस सोच ने मशीनों के निर्माण, संसाधनों के उपयोग और ऊर्जा के प्रबंधन को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से संभव बनाया।

❖ **तकनीकी आविष्कारों की पृष्ठभूमि तैयार हुई:** वैज्ञानिक क्रांति में हुए अनेक वैज्ञानिक अवलोकनों और नियमों ने उद्योगों में उपयोगी तकनीकों को जन्म दिया:

- वायुमंडलीय दबाव और गैस सिद्धांतों के अध्ययन (रॉबर्ट बॉयल आदि) ने भाप इंजन के विकास को संभव बनाया।

- प्रकाशिकी और लेंस की वैज्ञानिक समझ ने उपकरणों जैसे माइक्रोस्कोप, टेलीस्कोप और अंततः सटीक मशीनरी के निर्माण में मदद की।
- खगोल विज्ञान और समय मापन में वैज्ञानिक सुधारों ने नौवहन और परिवहन की दिशा में क्रांति लाई, जिसने उपनिवेशों और व्यापार को गति दी।

❖ **वैज्ञानिक संस्थाओं और शिक्षा प्रणाली का विकास:** वैज्ञानिक क्रांति के प्रभाव से यूरोप में वैज्ञानिक शिक्षा को बढ़ावा मिला। "रॉयल सोसाइटी ऑफ लंदन" (1660) और "फ्रेंच एकेडमी ऑफ साइंसेज" (1666) जैसी संस्थाओं ने विज्ञान को समाज से जोड़कर नयी खोजों के लिए मंच दिया। इन्हीं संस्थाओं ने मशीनों, उद्योगों और तकनीकों के विकास के लिए प्रयोगशालाएं और ज्ञान की संरचना का विकास किया।

❖ **वैज्ञानिक क्रांति से उपजे दृष्टिकोण ने उद्योगों में नवाचार को प्रोत्साहन दिया:**वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने यह विश्वास दिलाया कि मानव प्रकृति को नियंत्रित कर सकता है और संसाधनों का वैज्ञानिक उपयोग कर सकता है।इस विचार ने उद्योगपतियों, इंजीनियरों और व्यापारियों को प्रेरित किया कि वे अनुसंधान और तकनीक में निवेश करें।

❖ **समाज में वैज्ञानिक सोच और पूंजीवाद का समन्वय:** वैज्ञानिक क्रांति ने "कारण और प्रभाव" की वैज्ञानिक अवधारणा को स्थापित किया, जिसने व्यापार और उत्पादन को "नियोजित" और "संगठित" रूप में संचालित करने में मदद की। यही विचार पूंजीवाद के मूल में था – उत्पादन और लाभ को मापने, गणना करने और वैज्ञानिक ढंग से नियंत्रित करने की प्रवृत्ति।

❖ **ज्ञान का व्यावसायीकरण:**वैज्ञानिक क्रांति ने ज्ञान को सार्वभौमिक संपत्ति बनाने के स्थान पर उसे व्यावहारिक रूप से प्रयुक्त (Applied) बनाने की प्रक्रिया शुरू की। ज्ञान अब प्रयोगशालाओं से निकलकर फैक्ट्रियों, खेतों और बाज़ारों तक पहुँचने लगा।

❖ **मानव और प्रकृति के संबंध में बदलाव:** वैज्ञानिक क्रांति ने प्रकृति को एक "यांत्रिक प्रणाली" के रूप में देखने की परंपरा शुरू की। औद्योगिक क्रांति में यही दृष्टिकोण प्रकृति के शोषण का कारण बना- जैसे कोयला, लोहा, वनों और जल-संसाधनों का अंधाधुंध दोहन।

वास्तविक रूप में देखा जाए तो वैज्ञानिक क्रांति केवल एक युगांतरकारी बौद्धिक घटना नहीं थी बल्कि यह आधुनिक सभ्यता के संपूर्ण स्वरूप का पुनर्निर्माण थी। इससे उत्पन्न वैज्ञानिक चेतना ने न केवल भौतिक जगत की हमारी समझ को बदला, बल्कि मानवता के भविष्य की दिशा भी तय की। विज्ञान की स्वतंत्रता, प्रगति की धारणा और तर्क आधारित समाज-ये सभी वैज्ञानिक क्रांति की ही देन हैं। आज की तकनीकी दुनिया, अंतरिक्ष यात्राएं, जैविक अनुसंधान, और कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसे विषय इसी क्रांति के दूरगामी परिणाम हैं।

12.4 कृषि क्रान्ति

17वीं से 19वीं शताब्दी के मध्य यूरोप, विशेषकर इंग्लैंड में जो कृषि उत्पादन की पद्धतियों में व्यापक बदलाव आए, उन्हें आधुनिक इतिहास में **कृषि क्रांति** कहा जाता है। कृषि क्रांति का आशय उस प्रक्रिया से है जिसमें खेती पारंपरिक, परंपरा-आधारित प्रणाली से हटकर वैज्ञानिक, व्यावसायिक और बाजारोन्मुख प्रणाली में परिवर्तित हुई।यह क्रांतिऔद्योगिक क्रांति की **पूर्वपीठिका** भी बनी, क्योंकि इसी से अधिशेष उत्पादन और शहरीकरण का आधार बना।यह कृषि क्रांति परंपरागत सामूहिक खेती और खुले खेतों की व्यवस्था से निकलकर घेराबंदी (Enclosure), चक्रीय खेती (Crop Rotation), वैज्ञानिक पशुपालन और उन्नत उपकरणों के प्रयोग की ओर बढ़ी। इन परिवर्तनों ने पश्चिमी समाज के सामाजिक ढांचे और अर्थव्यवस्था पर गहरा असर डाला।कुल मिलाकर कहा जाए तो कृषि क्रान्ति एक ऐसी प्रक्रिया थी जिसमें कृषि तकनीकों, उपकरणों, बीजों और भूमि उपयोग में व्यापक सुधारों के चलते कृषि उत्पादन में क्रांतिकारी वृद्धि हुई। यह प्रक्रिया यूरोप में विशेषतः 17वीं शताब्दी के अंत से 19वीं शताब्दी तक चली और इसे कभी-कभी "ब्रिटिश एग्रीकल्चरल रिवोल्यूशन" भी कहा जाता है।

12.4.1 कृषि क्रान्ति के कारण

1. **जनसंख्या वृद्धि** – 16वीं शताब्दी के अंत और 17वीं शताब्दी में यूरोप की जनसंख्या में तेज वृद्धि हुई, जिससे खाद्यान्न की मांग बहुत बढ़ गई।
2. **बाज़ार का विस्तार** – शहरीकरण और उपनिवेशों के कारण यूरोप में बाज़ार का आकार बढ़ा, जिसने व्यावसायिक खेती को प्रोत्साहन दिया।
3. **बाजार की माँग और उपनिवेशवाद:** अटलांटिक व्यापार और उपनिवेशों से आए नए खाद्य पदार्थों तथा धन ने बाजार को विस्तारित किया। जिससे कृषि अधिशेष बेचने का आकर्षण बढ़ा।
4. **भूमि स्वामित्व में बदलाव** – सामूहिक खेतों की जगह निजी स्वामित्व और घेराबंदी की प्रवृत्ति बढ़ी, जिससे कृषि का व्यावसायिकरण संभव हुआ।*एनक्लोज़र मूवमेंट* (Enclosure Movement) ने सामूहिक चरागाहों को निजी स्वामित्व में बदला।अब भूमिहीन मजदूरों की संख्या में बढ़ोत्तरी होने लगी औरबड़े-बड़े खेतों में वैज्ञानिक ढंग से खेती करना संभव हो गया।
5. **वैज्ञानिक चेतना** – वैज्ञानिक क्रांति और पुनर्जागरण ने नए विचारों को जन्म दिया, जिनसे कृषि तकनीकों के प्रयोग में नवाचार संभव हुआ।
6. **राजनीतिक स्थिरता** – 17वीं–18वीं शताब्दी में ब्रिटेन और अन्य देशों में राजनीतिक रूप से स्थिर सरकारों ने कृषि सुधारों को प्रश्रय दिया।
7. **प्रमुख तकनीकी और विधिगत परिवर्तन:-** कृषि क्रांति के दौरान कई**नई तकनीकें और तरीके**विकसित हुए। जैसे-

    - लार्ड टाउनसेंड ने चार फसली चक्र का प्रयोग किया- गेहूँ, जौ, शलजम, तिपतिया घास। इससे मिट्टी की उर्वरता बनी रही।

- **जेथ्रोटल की बीज-बोने की मशीन का विकास हुआ, जो**बीजों को गहराई तक समान दूरी पर बोने में सक्षम थी जिससे उपज में वृद्धि हुई।
- नवीन हल और थ्रेशिंग मशीन का विकास हुआ जिसने अनाज निकालने और श्रम में कमी की।
- *पशुपालन में वैज्ञानिक पद्धति:रॉबर्ट ब्लैकवेल*ने चयनात्मक प्रजनन से नई नस्लों को जन्म दिया।

12.4.2 कृषि क्रान्ति की प्रमुख विशेषताएँ:

1. **भूमि सुधार:** "एनक्लोज़र मूवमेंट" के तहत सामूहिक भूमियों को निजी संपत्ति में बदलकर कृषि को व्यावसायिक रूप दिया गया। इन भूमि के बाड़ों ने व्यावसायिक खेती को बढ़ावा दिया। सामूहिक खेती के अधिकार खत्म होने के चलते भूमिहीन मज़दूरों की संख्या बढ़ी, जिन्होंने आगे चलकर शहरों में मजदूरी की। सामाजिक दृष्टि से यह विवादास्पद था, परंतु आर्थिक रूप से लाभकारी सिद्ध हुआ।
2. **नई फसलें और चक्रीय कृषि:** दलहन, आलू, चुकंदर, मक्का जैसी फसलें, तथा चार फसली प्रणाली का प्रचलन हुआ। चार फसली प्रणाली को **चार्ल्स टाउनशेंड** ने लोकप्रिय बनाया। इससे जहाँ एक ओर मिट्टी की उर्वरता बनी रहती वहीं दलहन (जैसे क्लोवर) और पशुपोषक घासों के कारण पशुधन में भी वृद्धि हुई इसके साथ ही खेतों को बिना खाली छोड़े लगातार उपयोग किया जा सका।
3. **नवीन उपकरणों का प्रयोग:** हल, बीज बोने की मशीन (जैसे जेथ्रोटल का "सीड ड्रिल") आदि के प्रयोग से श्रम और समय की बचत हुई। लोहे के हल, थ्रेशिंग मशीन, सिंचाई उपकरण और नए प्रकार के हार्वेस्टिंग टूल्स ने कृषि दक्षता में जबरदस्त वृद्धि की।
4. **पशुपालन में सुधार:**रॉबर्ट ब्लैकवेल जैसे वैज्ञानिकों ने पशु प्रजनन में वैज्ञानिक पद्धतियों को लागू किया, जिससे भेड़, गाय, सुअर की नस्लों में सुधार हुआ और मांस/दूध का उत्पादन बढ़ा।
5. **सिंचाई और जल प्रबंधन:** कृषि भूमि में जल का नियंत्रित प्रयोग प्रारंभ हुआ। जिससे प्रति एकड़ उपज में वृद्धि हुई और खाद्यान्न की कमी का संकट काफी हद तक समाप्त हुआ, इसके साथ ही ग्रामीण आबादी की पोषण स्थिति में सुधार हुआ। बेहतर आहार उपलब्ध होने से मृत्यु दर घटी और यूरोप की जनसंख्या में वृद्धि हुई। इससे औद्योगिक क्रांति में श्रमिकों की कमी नहीं रही।
6. **सर्वेक्षण और मापन:** भूमि के वैज्ञानिक मापन से उपज बढ़ाने की योजनाएं बनाई गईं।

12.4.3 कृषि क्रान्ति के प्रभाव

1. **कृषि उत्पादन में वृद्धि:** गेंहूँ, जौ, आलू आदि की उपज कई गुना बढ़ गई।
2. **जनसंख्या में वृद्धि:** अधिक भोजन उपलब्ध होने से मृत्यु दर कम हुई और जनसंख्या में तेज़ वृद्धि हुई।

3. **औद्योगिक क्रांति की पूर्वशर्त:** कृषि में अधिशेष उत्पादन और श्रमिकों की मुक्ति ने औद्योगिक क्षेत्रों में श्रमिक आपूर्ति सुनिश्चित की।
4. **शहरीकरण:** कृषि में सुधार के साथ-साथ लोग गांवों से शहरों की ओर पलायन करने लगे। ग्रामीण अधिशेष और व्यावसायिक कृषि ने शहरों में मांग पैदा की। इससे शहरी बाज़ार, व्यापार और सेवा क्षेत्र विकसित हुआ।
5. **सामाजिक परिवर्तन:** कृषि क्रान्ति के फलस्वरूप परंपरागत किसान वर्ग कमज़ोर हुआ और पूंजीवादी जमींदार वर्ग उभरा। छोटे किसानों का वर्ग टूटकर भूमिहीन मज़दूर में बदल गया जिससे सामूहिक ग्राम समुदायों का विघटन हुआ। अब पूरे यूरोप में जमींदार और पूंजीपति किसानों का उदय हुआ।
6. **भूमि व्यवस्था में बदलाव:** छोटी जोतों की जगह बड़ी जोतों ने ली, जिससे अधिक उत्पादकता संभव हुई।

कुल मिलकर यदि कहा जाए तो कृषि क्रान्ति केवल तकनीकी विकास नहीं थी, बल्कि यह समाज और अर्थव्यवस्था की संरचना में बुनियादी बदलाव थी जिसने सामंतवादी ग्राम व्यवस्था को तोड़कर पूंजीवादी औद्योगिक समाज की नींव रखी। इसकी वजह से खाद्यान्न अधिशेष, जनसंख्या में वृद्धि, शहरीकरण, और तकनीकी आविष्कारों का उपयोग संभव हुआ। जिसने औद्योगिक क्रान्ति को संभव बनाया और आधुनिक पूंजीवादी समाज के जन्म में भूमिका निभाई। इस क्रान्ति ने कृषि उत्पादन को एक परंपरा से बदलकर एक संगठित बाज़ार-आधारित प्रणाली में रूपांतरित किया गया। हालांकि इसके कुछ दुष्परिणाम जैसे कि भूमिहीन किसानों की बदहाली इत्यादि भी सामने आये, परंतु संपूर्ण मानव सभ्यता के विकास में इसकी भूमिका को नकारा नहीं जा सकता।

12.5 औद्योगिक क्रान्ति से अभिप्राय और प्रमुख परिवर्तन

औद्योगिक क्रान्ति से अभिप्राय 18वीं सदी में आर्थिक क्षेत्र में किए गए ऐसे प्रयोगों से है, जिन्होंने मनुष्य के आर्थिक, तकनीकी, सामाजिक और सांस्कृतिक स्वरूप में परिवर्तन कर मानव एवं पशु श्रम पर आधारित कृषि समाज को मशीनों पर आधारित औद्योगिक समाज में बदल दिया। घरेलू उद्योग और हस्तशिल्प के स्थान पर कारखाना पद्धति का विकास और शक्ति संचालित मशीनों का प्रयोग किया गया। आधुनिक व्यापार तंत्र का विकास हुआ। विशाल मात्रा में उत्पादन हुआ, जिसने मानव जीवन पर अत्यंत गहरा और स्थायी प्रभाव डाला। इसे ही औद्योगिक क्रान्ति कहा गया। औद्योगिक क्रान्ति शब्द का प्रयोग सबसे पहले 1837 में फ्रांस के समाजवादी लुई ब्लांक ने किया, परन्तु इतिहासकार अर्नाल्ड टॉयनबी द्वारा 1888 में आर्थिक परिवर्तनों के लिए इस शब्द का प्रयोग करने के पश्चात यह शब्द लोकप्रिय हो गया। अर्नाल्ड टॉयनबी ने कहा कि 18वीं शताब्दी में हुए यह परिवर्तन इतने पूर्ण थे, इतने तीव्रगामी थे कि उन्हें औद्योगिक क्रान्ति कहना उचित है। एन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज में औद्योगिक क्रान्ति की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है ''वह आर्थिक और तकनीकी विकास, जो अठारहवीं शताब्दी में अधिक सशक्त और तीव्र हो गया था तथा जिसके फलस्वरूप आधुनिक उद्योगवाद का जन्म हुआ, को औद्योगिक क्रान्ति कहा जाता है।''

औद्योगिक क्रान्ति के अन्तर्गत जो परिवर्तन हुए उनमें प्रमुख रूप से तकनीक का विकास, लोहे का निर्माण, वाष्प और जल शक्ति का प्रयोग, रसायन उद्योग का विकास, खनन उद्योग और संचार तथा परिवहन का विकास सम्मिलित है। इन

परिवर्तनों के कारण ही मशीनी युग का प्रारम्भ हुआ और औद्योगिक क्रान्ति सम्भव हो सकी। यह परिवर्तन इतने व्यापक थे कि उनके लिए क्रान्ति शब्द का प्रयोग किया गया।

तकनीकी विकास के आधार पर औद्योगिक क्रान्ति की दो अवस्थायें मानी जाती हैं-1750 से 1860 तक प्रथम औद्योगिक क्रान्ति कहा जाता है, जब इंग्लैण्ड में वस्त्र उद्योग, लौह उत्पादन और भाप शक्ति का विकास हुआ। 1860 के पश्चात बड़े पैमाने पर हुए औद्योगिक विकास को द्वितीय औद्योगिक क्रान्ति कहा जाता है। इसमें इस्पात, बिजली और ऑटोमोबाइल आदि का विकास हुआ और यूरोप के अन्य देशों के साथ-साथ अमेरिका और एशिया के देशों तक इसका विस्तार हुआ।

अभ्यास प्रश्न

1. औद्योगिक क्रान्ति से आप क्या समझते हैं?
2. औद्योगिक क्रान्ति की विभिन्न अवस्थाओं के बारे मे बताइये।

12.6 पृष्ठभूमि-चार अन्य क्रान्तियां

औद्योगिक क्रान्ति कोई सुनियोजित अथवा अचानक होने वाली घटना नहीं थी, वरन् अपने पूर्व हुई कई अन्य क्रान्तियों का परिणाम थी। इन क्रान्तियों ने औद्योगिक क्रान्ति के लिए जमीन तैयार की। यह क्रान्तियां नहीं होती तो औद्योगिक विकास इतनी तेजी से सम्भव न हो पाता।

12.6.1 कृषि क्रान्ति

कृषि क्रान्ति- 17वीं सदी में इंग्लैण्ड में कृषि प्रणाली में नए प्रयोग किए गए, जिन्होंने उत्पादन में वृद्धि की। छोटे बिखरे खेतों के स्थान पर बड़े फार्म में खेती की जाने लगी। नई फसलों की खोज की गयी और खेती में उपज बढ़ाने के लिए तकनीक का प्रयोग किया गया। पशुपालन को बढ़ावा दिया गया। इसने कृषि के क्षेत्र में क्रान्ति ला दी। इस कृषि क्रान्ति ने औद्योगिक क्रान्ति के उदय में विशेष भूमिका अदा की। इससे उद्योगों के लिए कच्चा माल प्राप्त हुआ तथा कृषि उपज से प्राप्त धन ने मशीनों के निर्माण में मदद की। खेती में तकनीक के प्रयोग के कारण बेरोजगार हुए किसानों के रूप में उद्योगों के लिए सस्ते मजदूर मिल सके तथा कृषि उत्पादन बढ़ने से नगरीय जनसंख्या के लिए पर्याप्त भोजन भी उपलब्ध हो सका।

12.6.2 जनांकिकीय क्रान्ति

यूरोप में 1700 से 1800 के मध्य जनसंख्या लगभग 45 प्रतिशत बढ़ गयी थी। इंग्लैण्ड में 1751 से 1821 के मध्य जनसंख्या दुगनी हो गयी थी। बढ़ती हुयी जनसंख्या से वस्तुओं की मांग बढ़ी, जिससे उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रयोग करने की प्रेरणा मिली। बढ़ी जनसंख्या के कारण सस्ते में उद्योगों के लिए मजदूर भी प्राप्त हुए।

12.6.3 व्यवसायिक क्रान्ति

भौगोलिक खोजों और राष्ट्र राज्यों के उदय ने व्यापार का इतना अधिक विकास किया कि उन्हें वाणिज्यिक क्रान्ति कहा गया। विदेशी व्यापार के विकास ने माल की मांग उत्पन्न की तथा उद्योगों के लिए पूंजी तथा कच्चा माल

उपलब्ध कराया। विस्तृत बाजार ने उत्पादन बढ़ाने के लिए नए साधन खोजने को प्रेरित किया। फलतः मशीनों का अविष्कार किया गया और औद्योगिक क्रान्ति ने जन्म लिया।

12.6.4 परिवहन क्रान्ति

बाजार तक पहुँचने के लिए परिवहन और संचार साधनों का विकास आवश्यक था। जल और स्थल मार्ग दोनों का विकास किया गया। इंग्लैण्ड 16वीं शताब्दी से ही सामुद्रिक शक्ति के रूप में अपना विकास कर चुका था तथा 18वीं सदी में यहां सड़कों और रेलवे का विकास किया गया। इससे कारखानों में कच्चा माल लाने और विस्तृत क्षेत्र तक तैयार माल पहुँचाने में सुविधा हुयी। यातायात के विकास ने औद्योगिक क्रान्ति की गति में वृद्धि की।

अभ्यास प्रश्न

1. कृषिगत क्रान्ति ने किस प्रकार औद्योगिक क्रान्ति के विस्तार में सहयोग दिया?
2. औद्योगिक क्रान्ति के विकास में व्यवसायिक और परिवहन क्रान्ति के योगदान को बताइये।

12.7 इंग्लैण्ड में प्रारम्भ होने के कारण

विश्व में सबसे पहले औद्योगिक क्रान्ति इंग्लैण्ड में हुयी। इस समय फ्रांस में भी उद्योग, व्यापार, जनसंख्या ,कच्चा माल और लौह तथा जल शक्ति के प्रचुर साधन थे। हॉलैण्ड में भी औद्योगिक क्रान्ति हेतु आवश्यक परिस्थितियां मौजूद थीं। परन्तु औद्योगिक क्रान्ति का प्रारम्भ इंग्लैण्ड से ही क्यों हुआ ? आपने देखा कि कृषि, व्यापार, यातायात और जनसंख्या वृद्धि के क्षेत्र में सबसे पहले इंग्लैण्ड में ही क्रान्ति हुयी। इसके अतिरिक्त आप देखेंगे कि वहां ऐसे कई अन्य कारण उत्पन्न हो गये थे, जिन्होंने उत्पादन के स्वरूप में परिवर्तन कर दिया। यह कारण निम्न हैं।

1. इंग्लैण्ड का समाज स्वतंत्र समाज था। अन्य यूरोपीय देशों की अपेक्षा प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचार रखने और कार्य करने की स्वतंत्रता थी। श्रेणी व्यवस्था और कृषि दासता समाप्त हो गयी थी। आर्थिक जीवन में भी सरकार का हस्तक्षेप नहीं था। नये प्रयोग करने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था।

2. इंग्लैण्ड की जनता में अन्य यूरोपीय देशों की अपेक्षा आर्थिक समानता भी थी। फ्रांस में अमीर-गरीब का अन्तर 1: 60 से 1: 90 था, जबकि इंग्लैण्ड में यह केवल 1:30 था। जीवन स्तर उच्च होने के कारण जनता की क्रय शक्ति भी अधिक थी। इसने वस्तुओं की मांग को बढ़ाया।

3. इंग्लैण्ड चारों ओर से समुद्र से घिरा होने के कारण बाहरी आक्रामणों से सुरक्षित रहा। अन्य यूरोपीय देशों की अपेक्षा युद्ध जनित हानियों से बचा रहने के कारण औद्योगिक क्रान्ति के विकास के लिए एक शान्तिपूर्ण माहौल मिल सका। उसके सामुद्रिक तटों में बन्दरगाह बनाने की सुविधा थी। खुला समुद्र होने के कारण उसके व्यापारिक जहाज आसानी से दूसरे देशों के साथ व्यापार कर पाते थे।

4. इंग्लैण्ड की जलवायु कपड़े के उत्पादन के लिए उपयुक्त थी। प्राकृतिक संसाधनों की अधिकता विशेषरूप से लोहा और कोयले की खानें पास-पास होने से पक्के लोहे का निर्माण सुविधा से होता था। लोहे की उपलब्धता ने मशीनों के निर्माण को आसान कर दिया।

5. इंग्लैण्ड के पास एक विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य था, जो उसके तैयार माल के लिए विस्तृत बाजार बने। इन उपनिवेशों से उसे कच्चा माल भी प्राप्त होता था।

6. इंग्लैण्ड उन वस्तुओं का उत्पादक था जिनकी बड़ी मात्रा में आवश्यकता होती थी, जबकि फ्रांस विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन करता था। औद्योगिक क्रान्ति की गति लाने के लिए यह आवश्यक था कि देश के अन्दर आम उपभोग की चीजों का निर्माण हो, जिसकी मांग निरन्तर रहे। दैनिक वस्तुओं की मांग अधिक होने के कारण इंग्लैण्ड के व्यापारी निरन्तर उत्पादन वृद्धि हेतु नये प्रयोग करते रहे।

7. व्यापार के कारण इंग्लैण्ड में अत्यधिक मात्रा में पूंजी एकत्र हो गयी थी, जिसका प्रयोग उद्योगों और कारखानों को स्थापित करने में किया गया।

8. इंग्लैण्ड में बैंकिंग प्रणाली स्थापित हो गयी थी। बैकिंग प्रणाली के विकास से इंग्लैण्ड के उद्योगपतियों को ऋण प्राप्त करने और पूंजी जमा करने में सुविधा मिली। असीमित पूंजी और असीमित बाजार और संयुक्त पूंजी कम्पनियों की स्थापना ने व्यापार पर इंग्लैण्ड का एकाधिकार स्थापित कर दिया था।

9. इंग्लैण्ड की सरकार की नीति उद्योग और व्यापार को संरक्षण प्रदान करने वाली थी। अन्य देशों में व्यापार पर अनेक कर और स्थानीय चुंगी लगाई जाती थी, लेकिन इंग्लैण्ड में इस तरह की बाधाऐं नहीं थीं।

10. इंग्लैण्ड में सामन्ती व्यवस्था खत्म होने पर बहुत से लोग, जो सामन्तों के यहां काम करते थे, कस्बों में आकर बस गये और हस्त शिल्प का कार्य करने लगे। औद्योगिक क्रान्ति प्रारम्भ हुयी तो यह लोग मशीनों में काम करने के लिए उपलब्ध हो गये।

11. उद्योग क्रान्ति का मूल कारण मशीनों का अविष्कार और उनका उद्योगों में प्रयोग था, जिसका प्रारम्भ इंग्लैण्ड से हुआ। यहां 17वीं शताब्दी के अन्त तक हस्त कौशल पर आधारित उत्पादन अपने चरम पर था। इससे अधिक उत्पादन का स्तर को बढ़ाने के लिए नए उपकरणों की आवश्यकता थी। इंग्लैण्ड में कृषि कार्यों में तकनीक का प्रयोग करके कृषिगत क्रान्ति हो चुकी थी। इससे प्रेरित होकर उद्योगों में भी उत्पादन बढ़ाने के लिए तकनीक का प्रयोग करके मशीनें बनाई गयीं। वस्त्र उद्योग से प्रारम्भ होकर तकनीक का प्रयोग धीरे-धीरे अन्य उद्योगों में भी किया गया।

इस प्रकार औद्योगिक क्रान्ति के लिए महत्वपूर्ण कारक-प्राकृतिक साधन, अत्यधिक धन और कुशल कारीगर, विस्तृत बाजार, राजनैतिक शान्ति तथा सामाजिक सहयोग, वाणिज्यवादी दृष्टिकोण और आविष्कारों के प्रति रूचि इंग्लैण्ड में मौजूद थी।

अभ्यास प्रश्न

1. इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के उदय के लिए उत्तरदायी किन्हीं पांच कारणों का वर्णन करिए।
2. इंग्लैण्ड किस प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करता था?

12.8 नवीन अविष्कार

इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति का प्रमुख आधार विभिन्न प्रकार की मशीनों का अविष्कार था। इन मशीनों का प्रयोग विभिन्न उद्योगों में किया गया। आपको बताया जा चुका है कि इंग्लैण्ड में 17वीं शताब्दी के अन्त तक उपलब्ध

साधनों का उनकी क्षमता के अनुरूप अधिकतम प्रयोग किया जा चुका था। असीमित बाजार और बढ़ती मांग के लिए उत्पादन बढ़ाने हेतु नए साधनों की जरूरत थी। प्रयोग करके नए साधनों के रूप में मशीनों का अविष्कार किया गया, जिसने उद्योगों का मशीनीकरण कर औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया। शीघ्र ही इंग्लैण्ड को 'विश्व की उद्योगशाला' कहा जाने लगा। आपको हम विभिन्न उद्योगों के लिए किए गए प्रमुख अविष्कार के विषय में बताते हैं।-

12.8.1 वस्त्र उद्योग

सर्वप्रथम सूती वस्त्र उद्योग के लिए अविष्कार किए गए।

- 1733 ई. में जोहन के ने फ्लाइंग शटल का अविष्कार किया, जिसकी सहायता से कपड़ा दोगुनी गति से बुना जा सकता था।
- 1764 ई. में जेम्स हारग्रीब्ज ने स्पिनिंग जैनी नामक यन्त्र का अविष्कार किया, जिसमें आठ तकुए लगे थे।
- इससे एक ही साथ आठ सूत के धागे काते जा सकते थे।
- 1769 ई. में रिचर्ड आर्कराइट ने स्पिनिंग जैनी में सुधार करके जल शक्ति से चलने वाली वाटर फ्रेम नामक सूत कातने की मशीन बनाई।
- 1779 ई. में सेमुअल क्राम्पटन ने म्यूल नामक यन्त्र बनाया , जिससे बारीक सूत तेज गति से काता जा सकता था। इससे अच्छा धागा काफी मात्रा में उपलब्ध हो गया।
- 1785 ई. में एडमण्ड कार्टराइट ने पावरलूम का अविष्कार किया। इस मशीन को जल और वाष्प शक्ति दोनों से चलाया जा सकता था। इसके द्वारा बढ़िया किस्म का कपड़ा शीघ्रता से बुना जाने लगा।
- 1785 ई. में वस्त्रों को छापने के लिए रोलर प्रणाली का अविष्कार हुआ, जिससे कपड़ों की प्रिन्टिंग का कार्य तेजी से और अच्छा होने लगा।
- 1793 ई. में अमेरिकी ऐली व्हिटने ने कपास से बिनौला अलग करने की मशीन बनाई , जिसे कॉटन जिन कहा गया। यह पचास मजदूरों के बराबर काम अकेले कर सकती थी।
- 1825 ई. में रिचर्ड रॉबर्ट्स ने पहली स्वचालित बुनाई मशीन बनाई।
- 1846 ई. में अमेरिका के एलियास होव ने सिलाई मशीन का अविष्कार किया, जिससे बढ़िया सिले हुए कपड़े बड़े पैमाने पर तैयार होने लगे।

12.8.2 वाष्प शक्ति

यंत्रों को चलाने के लिए जल शक्ति और पवन शक्ति का प्रयोग किया जाता था। लेकिन अब शक्ति के नए साधन के रूप में वाष्प शक्ति का विकास हुआ। 1712 ई. मे टामस न्यूकोमेन ने एक वाष्प से चलने वाले इन्जन को बनाया, जो खानों से पानी बाहर निकालने का काम करता था। लेकिन यह इन्जन ईंधन का अधिक खर्चा करता था और भारी भी था। 1769 ई. में जेम्स वाट ने न्यूकोमेन के इंजन के दोषों को दूर करके एक नया वाष्प इंजन बनाया। उसने 1775 में

एक उद्योगपति के साथ मिलकर इंजन बनाने का कारखाना भी खोला। 1776 में विलकिन्स ने लोहे के कारखानों की भट्टियों को तेज रखने के लिए वाष्प इंजन का प्रयोग किया। इसके बाद जेम्स वाट के वाष्प इंजन का प्रयोग आटे की चक्की चलाने तथा सूती कारखानों की मशीनों को चलाने के लिए किया गया। 1814 में इस इंजन का सुधरा रूप छापेखाने की मशीनों को चलाने के लिए किया जाने लगा।

12.8.3 लोहा और कोयला उद्योग

मशीनों को बनाने के लिए लोहे की मांग बढ़ रही थी, लेकिन लोहे को पिघलाने और साफ करने की तकनीक पुरानी, महँगी और कठिन थी। लकड़ी का कोयला, जो लोहा पिघलाने में प्रयोग किया जाता था, भी कम होता जा रहा था। अतः ईंधन के अन्य साधनों की खोज की गयी। अब्राहम डर्बी तथा जॉन रोबक ने खोज की कि पत्थर के कोयले से बने कोक का प्रयोग लोहा पिघलाने में किया जा सकता है। पत्थर के कोयले को प्राप्त करने के लिए खनन कार्य का विकास हुआ। खनन कार्य को आसान बनाने के लिए नयी मशीनें बनाई गई। 1760 में जान स्टीमन ने कोक की आग को तेज रखने के लिए एक पम्प का अविष्कार किया। हम्फ्री डेवी ने खनन कार्य में सुविधा हेतु सुरक्षा लैम्प बनाया। 1784 में हेनरी कोर्ट ने एक ऐसी विधि पडलिंग का अविष्कार किया, जिसके द्वारा अधिक शुद्ध और अच्छा लोहा बनाना सम्भव हुआ। सीमेन्स मार्टिन ने इस्पात बनाया। परन्तु हेनरी बैसमेर ने 1856 में शीघ्रता से और सस्ते में इस्पात तैयार करने की तकनीक खोजी। इससे इस्पात का उत्पादन बड़े पैमाने पर होने लगा।

12.8.4 यातायात और परिवहन में तकनीकी प्रयोग

उद्योगों के मशीनीकरण ने यातायात और परिवहन साधनों के विकास को भी आवश्यक बना दिया। स्कॉटलैण्ड के इंजीनियर मैकडेम ने 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में सड़क बनाने का नया तरीका खोज निकाला। उसने छोटे पत्थर के टुकड़ों और मिट्टी का प्रयोग करके मजबूत सड़क बनाई। टेलफोर्ड ने तारकोल का प्रयोग करके इसमें सुधार किया। ये सड़कें इंग्लैण्ड में हजारों मील तक बनाई गई। ब्रिजवाटर के ड्यूक के द्वारा जेम्स ब्रिंडले नामक इंजीनियर को नहर बनाने को प्रोत्साहित किया गया। 1761 में ब्रिजवाटर नहर बनी तो माल लाने-ले जाने का खर्चा पहले से आधा रह गया। 1830 तक इंग्लैण्ड में 40 हजार मील लम्बी नहरों का निर्माण किया जा चुका था।1869 में फ्रांसीसी इंजीनियर फर्दिनांद द लैस्सैप ने स्वेज नहर का निर्माण कर भूमध्यसागर को लाल सागर से जोड़ा। ब्रिजवाटर नहर इससे यूरोप और भारत की दूरी एक तिहाई से कम हो गयी। 1807 में पहली भाप से चलने वाली नाव का अविष्कार हुआ। उसके बाद वाष्प शक्ति से चलने वाले जहाज विकसित हुए। 1814 में जॉर्ज स्टीवेंसन ने रेल इंजन का अविष्कार किया ,जो भाप की शक्ति से लोहे की पटरियों पर चलकर माल से लदी गाडियों को खींच सकता था। 1830 में मेनचेस्टर से लिवरपूल तक पहली रेलवे लाइन का निर्माण हुआ। रेल के द्वारा कोयला, लोहा आदि को एक स्थान से लाने ले जाने का काम कम खर्च और कम समय में होने लगा।

12.8.5 संचार साधनों का विकास

संचार साधनों का भी विकास हुआ। 1840 में पेनी पोस्टेज द्वारा डाक व्यवस्था लागू हुयी, जिससे देश में कहीं भी पत्र भेजा जा सकता था। 1844 में सैमुअल मौर्स ने टेलीग्राफ प्रणाली का अविष्कार किया। उत्तरी अमेरिका और यूरोप को अटलांटिक केवल द्वारा जोड़ा गया। 1876 में ग्राहम बैल ने टेलीफोन का अविष्कार किया।

19वीं सदी के प्रारम्भ में विभिन्न वैज्ञानिक खोजों ने औद्योगिक क्रांति के नवीन क्षेत्रों का विकास किया। वैज्ञानिकों माइकल फेराडे, जेम्स यंग, सीमेन्स, बुन्सेन आदि के अविष्कार बहुत लाभदायक सिद्ध हुए। मशीनों को बनाने के लिए यान्त्रिकी तकनीक का विकास, रसायन के क्षेत्र में नयी खोजों विशेषरूप से क्लोरिन, सोडियम कारबोनेड, कैल्सियम सल्फाइड, पोटाश, ब्लीचिंग पाउडर, सीमेंट, काँच, पेपर, गैस का प्रकाश आदि ने औद्योगिक क्रांति का अत्यधिक विकास किया।

अभ्यास प्रश्न

1. वस्त्र उद्योग के विकास हेतु कौन-कौन से अविष्कार हुए?
2. लौह और कोयला शक्ति के खनन में किन तकनीकों का प्रयोग किया गया?
3. यातायात और परिवहन के विकास में तकनीक के प्रयोग पर टिप्पणी करिये?

12.9 विकास और प्रसार

औद्योगिक क्रान्ति ने 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में इंग्लैण्ड को उद्योग प्रधान देश बना दिया था, लेकिन यह क्रान्ति इंग्लैण्ड तक सीमित नहीं रह सकी। 19वीं सदी का अन्त होते-होते इसका विस्तार सम्पूर्ण यूरोप और विश्व के कुछ प्रमुख देशों में दिखाई देने लगा। यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति के शीघ्रता से प्रसार के लिए प्रमुख कारण फ्रांस की क्रांति से स्थापित स्वतंत्रता एवं समानता की भावना, पुरातन व्यवस्था का अन्त, मध्यम वर्ग और उदारवादी विचारधारा का विकास, जनसंख्या वृद्धि और इंग्लैण्ड के औद्योगिकीकरण का प्रभाव आदि थे। इंग्लैण्ड के बाद इसका प्रसार सबसे पहले पश्चिमी यूरोप के देशों बेल्जियम, फ्रांस और जर्मनी में हुआ।

बेल्जियम- बेल्जियम वह पहला देश था, जिसने इंग्लैण्ड की औद्योगिक तकनीक का प्रयोग बड़े पैमाने पर किया। 1850 तक यह एक उद्योग प्रधान देश बन गया। इंग्लैण्ड से मशीनें मंगाकर इसने अपने यहां कारखाने स्थापित किये। वस्त्र उद्योग, लौह उत्पादन और रेल मार्ग के निर्माण में इसने विशेष प्रगति की। प्रारम्भ में यूरोप के अन्य देशों की कोयले की जरूरत को यह ही पूरा करता था।

फ्रांस- 1789 की क्रांति के पश्चात फ्रांस में जो राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन हुए, उसने वहां औद्योगिक क्रान्ति हेतु एक माहौल बनाया। प्रारम्भ में इंग्लैण्ड से मशीनें आयात की गयीं और वस्त्र उद्योग का मशीनीकरण किया गया। 1830 तक यहां वाष्प इंजन का प्रयोग होने लगा। 1830 से 1841 के मध्य फ्रांस ने स्वयं मशीनों का निर्माण करना शुरू कर दिया। परन्तु यहां कोयले की कमी और जनता की औद्योगिकीकरण में रूचि न होने के कारण विकास की गति धीमी रही। 1857 से 1870 के मध्य यहां की सरकार को औद्योगिक क्रान्ति हेतु स्वयं प्रयास करने पड़े। संचार साधनों का विकास, बैंकों की स्थापना और गैर सरकारी कम्पनियों की सहायता की गयी। 1850 के

बाद रेलों का विकास हुआ। 1870 तक फ्रांस के रेशम वस्त्र और लौह उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुयी। 1830 की अपेक्षा 1870 तक उत्पादन और व्यापार तिगुना हो गया।

जर्मनी- जर्मनी का एकीकरण 1870 ई. में हुआ, परन्तु यहाँ के राज्यों में औद्योगिक क्रान्ति का असर 1848 के पश्चात ही दिखने लगा था। 1839 ई. में यहाँ ड्रेसडेन और लिपजिग के मध्य रेलमार्ग का निर्माण किया गया। 1848 तक बर्लिन, हैम्बर्ग, प्राग और लाइबेख तक रेलमार्गों का निर्माण हो गया। रूर क्षेत्र में कोयले और लोहे की खानें प्राप्त होने के बाद 1850 से 1880 के मध्य यहाँ कोयले का उत्पादन दस गुना बढ़ गया। साइलेशिया और वेस्टफेलिया में सूती वस्त्र उद्योग का विकास हुआ। 1870 ई. में एकीकरण के बाद जर्मनी में तेजी से औद्योगिक विकास हुआ। इस्पात उद्योग में वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग, रसायनों का प्रयोग, यान्त्रिक तकनीक का विकास के साथ-साथ जर्मनी में तकनीकी शिक्षा के विकास पर विशेष ध्यान दिया गया। इससे यह औद्योगिक विकास में इंग्लैण्ड से आगे निकल गया।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक यूरोप के अन्य देशों डेनमार्क, स्वीडन, हालैण्ड, इटली और आस्ट्रिया में भी औद्योगिकीकरण प्रारम्भ हो गया। स्वीडन में 1850, इटली में 1860 और आस्ट्रिया तथा उत्तरी स्पेन में 1870 से औद्योगिक क्रान्ति का प्रारम्भ हुआ। रूस में औद्योगिक क्रान्ति सबसे बाद में प्रारम्भ हुयी। फ्रांस और इंग्लैण्ड के सहयोग से इसने 19वीं सदी के अन्तिम वर्षों में पर्याप्त औद्योगिकीकरण किया।

अभ्यास प्रश्न

1.फ्रांस में औद्योगिक क्रांति में सरकारी प्रयासों पर प्रकाश डालिए।

2.जर्मनी में औद्योगिक क्रांति के विकास पर टिप्पणी लिखिये।

12.10 औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव और परिणाम

अभी तक आपने जाना कि औद्योगिक क्रान्ति का सम्बन्ध आर्थिक क्षेत्र में किए गए परिवर्तनों से था, परन्तु अब आप जानेंगे कि इसके प्रभाव से आर्थिक क्षेत्र में ही नहीं वरन् समाज, राजनीति और विचारों में भी व्यापक परिवर्तन हो गया। मानव समाज जितना औद्योगिक क्रान्ति से प्रभावित हुआ, उतना शायद ही किसी ओर परिवर्तन से।

आर्थिक प्रभाव- औद्योगिक क्रान्ति से बहुत समय से चली आ रही कम उत्पादक और विकासहीन अर्थव्यवस्था का अंत हुआ। इसका सबसे पहला प्रभाव उत्पादन पर पड़ा। 1760 से 1830 के मध्य इंग्लैण्ड का उत्पादन 10 से 40 गुना तक बढ़ गया था। आपको बताया जा चुका है कि पुरानी कुटीर उद्योग प्रणाली का स्थान कारखना पद्धति ने ले लिया था। फलतः घरेलू उद्योग समाप्त होने लगे और उससे जुड़े कारीगर बेरोजगार हो गये तथा वे काम की तलाश में शहरों की ओर जाने लगे। औद्योगिक नगरों का विकास हुआ और तेजी से जनसंख्या का शहरीकरण हुआ। ग्राम के स्थान पर शहर अर्थव्यवस्था का आधार बन गए। उत्पादन करने वालों और उपभोग करने वालों के मध्य सीधा सम्बन्ध समाप्त हो गया। पुराने सरल बाजार के स्थान पर बाजार जटिल हो गया। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का उदय हुआ, जिसमें अपने देश के उद्योग को बढ़ाने और दूसरे देश के उद्योगों से टक्कर लेने के लिए संरक्षित बाजार बनाए गए। पूंजी और श्रम के मध्य अन्तर बढ़ने लगा। बड़े स्तर पर उत्पादन, असमान वितरण और एकाधिकार की प्रवृत्ति ने औद्योगिक पूंजीवाद का जन्म हुआ। प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि हुयी। बैंकों और वित्तीय संगठनों का विकास हुआ। संयुक्त पूंजी कम्पनियों और

औद्योगिक निगमों की स्थापना की गयी। शेयर बाजार का गठन हुआ। व्यापार का स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय हो गया। बाजार की आवश्यकता ने उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद को जन्म दिया।

सामाजिक प्रभाव- समाज पर मध्यम वर्ग विशेष रूप से व्यापारियों, वैज्ञानिकों, कुशल और प्रशिक्षित शिल्पियों, महाजनों, प्रबन्धकों और वकीलों आदि का प्रभाव बढ़ गया। समाज नये स्वरूप में पूंजी के आधार पर विभाजित होने लगा। सामन्तों और पादरियों का महत्व कम हो गया। रूढ़िवाद, अन्धविश्वास, जातीयता और कुलीनता आदि का प्रभाव भी समाज पर कम होने लगा। उद्योगपति अत्यधिक धनी और मजदूर अधिक गरीब हो गये। कारखाना प्रणाली में मजदूरों और मालिकों के मध्य संघर्ष हुआ और मजदूरों के शोषण और उनकी स्वतंत्रता का अन्त हुआ। शहर में मजदूरों के पास जीवका चलाने के लिए मजदूरी के अतिरिक्त कोई साधन नहीं रहा, जिस कारण उनका उद्योगपतियों द्वारा अत्यधिक शोषण किया जाने लगा। मजदूरों को 14 से 16 घंटे काम करना पड़ता था। महिलाओं और बच्चों से भी कम पारिश्रमिक में अधिक काम कराया जाता था। उद्योगों में काम करने के लिए गांव से बड़ी संख्या में लोग शहर आ गए, जिसने संयुक्त परिवार प्रणाली को काफी नुकसान पहुंचाया। सामुदायिक भावना का पतन हुआ और सामाजिक तथा नैतिक बन्धन टूटने लगे। शहरों में जनसंख्या बढ़ने से सफाई और स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याऐं उत्पन्न हुयीं। हैजा और प्लेग जैसी महामारियां फैलने लगीं।

राजनैतिक प्रभाव-औद्योगिक क्रान्ति के कारण नयी राजनैतिक समस्याएं उत्पन्न हुयीं। इंग्लैण्ड में उद्योगपति और मजदूर वर्ग संसद पर अपने आर्थिक हितों की रक्षार्थ अपना प्रतिनिधित्व चाहते थे। आर्थिक समस्याओं को लेकर आन्दोलन हुए और आन्दोलनकारी व्यापक मताधिकारों और वार्षिक संसद की मांग करने लगे। 1816 में स्पाफील्ड, 1817 में लंकाशायर एवं डर्बीशायर और 1819 में सेण्ट पीटर्सबर्ग में आन्दोलन हुए। फलतः इंग्लैण्ड में संसद में भूस्वामी और कुलीन वर्ग के स्थान पर मध्यम व्यापारी वर्ग को प्रतिनिधित्व देने के लिए सुधार किए गए। कई सुधार बिल प्रस्तुत करने के पश्चात 1832 में प्रथम सुधार अधिनियम द्वारा लोक सदन के 143 स्थान नये निर्वाचन क्षेत्रों में बांटे गये। मजदूरों ने भी व्यापक मताधिकार, काम के घण्टे, न्यूनतम मजदूरी आदि के लिए चार्टिस्ट आंदोलन किया। 1867 और 1884 के अधिनियमों के द्वारा अधिकांश जनता को मतदान का अधिकार दिया गया। नगरों के व्यवसायी और मजदूरों को राजनीतिक जीवन में भाग लेने का अधिकार मिला और इंग्लैण्ड की संसदीय व्यवस्था अधिक प्रजातान्त्रिक हो गयी।

यूरोप के अन्य राज्यों ने भी उद्योग और व्यापार के विकास हेतु नए कानून बनाए। यूरोप के जिन देशों में उद्योगीकरण देरी से हुआ, वहाँ उद्योगों को प्रोत्साहित करने में सरकार ने बड़ी भूमिका निभाई। 1820 में व्यापार को संरक्षण दिया और प्रारम्भ में सार्वजनिक धन और व्यय पर सरकारी नियंत्रण लगाया। लेकिन 1840-60 में उद्योगपतियों के दबाव में सरकारों ने मुक्त व्यापार नीति को अपनाया। कई देशों की राजनैतिक शक्ति पूंजीपतियों के हाथों में केन्द्रित हो गयी। 1870 के पश्चात मजदूर अपने शोषण के विरूद्ध एकजुट हो मजदूर संघ और ट्रेड यूनियन बनाने लगे थे। फलतः पुनः संरक्षण नीति का अनुसरण किया गया और मजदूरों के पक्ष में लोक कल्याणकारी तथा समाजवादी व्यवस्था का विकास हुआ।

औद्योगिक क्रान्ति ने संसार के अन्य देशों में उपनिवेश स्थापित करने की होड़ को बढ़ावा दिया। फ्रांस, हॉलैण्ड, बेल्जियम आदि यूरोपीय देशों में औपनिवेशिक और व्यापारिक प्रतिद्वन्दिता प्रारम्भ हुयी। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक इससे साम्राज्यवाद का विकास हुआ और साम्रज्यवाद की प्रवृत्ति ने राज्यों के मध्य संघर्ष और वैमनस्य उत्पन्न किया।

वैचारिक प्रभाव- औद्योगिक क्रान्ति ने आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र में कई नवीन विचारधाराओं को जन्म दिया। उच्च मध्यम वर्ग विशेषरूप से उद्योगपतियों के प्रभाव से उदारवादी विचारधारा का उदय हुआ, जिसका सिद्धान्त था अहस्तक्षेप की नीति। इसमें व्यापार को राज्य के नियंत्रण से मुक्त रखा गया, उद्योगीकरण का लाभ उद्योगपतियों को मिला और मजदूर वर्ग का शोषण हुआ। इस पूंजीवादी व्यवस्था के प्रतिक्रियास्वरूप समाजवाद की विचारधारा का उदय हुआ, जिसमें समस्त जनता के लिए आर्थिक और राजनैतिक समानता और संपति के समान वितरण की बात की गयी। समाजवादी उद्योगपति राबर्ट ओवन ने अपने कारखानों में सहकारी संस्थाएं स्थापित कीं। फ्रांस में सेंट साइमन, फाउरिये और लुई ब्लांक आदि प्रारम्भिक समाजवादियों ने निजी सम्पत्ति का विरोध किया और राष्ट्रीय कारखानों की आवश्यकता बताई। कार्ल मार्क्स ने समाजवाद को व्यवहारिक रूप प्रदान किया। मार्क्स और एंगेल्स के विचारों ने वैज्ञानिक समाजवाद का रूप लिया, जिसे साम्यवादी विचारधारा कहा गया। इसके अनुसार पूंजीवादी व्यवस्था को समाप्त किए बिना समाजवादी व्यवस्था की स्थापना नहीं की जा सकती। इस विचारधारा ने मजदूरों को पूंजीवाद का विरोध करने को प्रेरित किया। अनेक देशों में समाजवादी और साम्यवादी व्यवस्था स्थापित हुयी। सम्पूर्ण विश्व में दो गुटों में बँट गया -साम्यवादी और पूंजीवादी।

अभ्यास प्रश्न

1. औद्योगिक क्रान्ति ने समाज और आर्थिक जगत को किस तरह प्रभावित किया?
2. औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप राजनैतिक और वैचारिक क्षेत्र में क्या-क्या परिवर्तन हुए?

12.11 सारांश

18वीं सदी में इंग्लैण्ड में आर्थिक क्षेत्र में उत्पादन प्रक्रिया, स्वरूप और क्षेत्र में परिवर्तन हुए जिन्होंने न केवल आर्थिक वरन् सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में भी बदलाव कर दिया। हस्त और कुटीर उद्योग के स्थान पर बड़े पैमाने पर मशीनों से कारखानों में उत्पादन से जो परिवर्तन आया, उसे औद्योगिक क्रान्ति कहा गया।

औद्योगिक क्रान्ति अग्रगामी चार क्रान्तियों के कारण सम्भव हुयी- कृषि क्रान्ति, जनसंख्या में वृद्धि, व्यवसायिक क्रान्ति और परिवहन क्रान्ति।औद्योगिक क्रान्ति 1760 से 1860 तक इंग्लैण्ड में विकसित हुयी और 1860 ई के पश्चात यूरोप तथा विश्व के अन्य क्षेत्रों में फैली। इंग्लैण्ड से औद्योगिक क्रान्ति के प्रारम्भ होने के प्रमुख कारण थे- प्रचुर प्राकृतिक साधन, औपनिवेशिक साम्राज्य, राजनैतिक स्थिरता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, दैनिक उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन, पंूजी की उपलब्धता, नगरीय जनसंख्या में वृद्धि आदि। इ्रग्लैण्ड में अन्य यूरोपीय देशों की अपेक्षा पूंजी, श्रम, तकनीक, संसाधन, यातायात के साधन और विस्तृत बाजार थे, जिसने तीव्रता से औद्योगिकीकरण का विकास किया।

औद्योगिक क्रान्ति के अन्तर्गत प्रारम्भ में तकनीक का विकास, लोहे का निर्माण, वस्त्र उद्योग में भाप तथा जल शक्ति का प्रयोग, रसायन का विकास, कोयले की खानों का विकास और यातायात के साधनों का विकास आदि परिवर्तन हुए। औद्योगिक क्रान्ति ने सर्वप्रथम वस्त्र उद्योग को प्रभावित किया। विभिन्न मशीनों का प्रयोग कपास के बिनौले से रूई को अलग करने, धागा बनाने, कपड़ा बुनने, सिलने और रंगने आदि सभी कार्यों में होने लगा। इन मशीनों का निर्माण जॉन के, जेम्स हरग्रीव्ज, आर्कराइट, कार्टराइड आदि ने किया। मशीनों को चलाने के लिए वाष्पशक्ति की जानकारी और उसका मशीनों को चलाने में प्रयोग ने उद्योगीकीकरण को तेज किया। मशीनों के निर्माण के लिए लोहे को पिघलाने और शुद्ध लोहा प्राप्त करने के लिए नये प्रयोग किए गए। लोहा पिघलाने के लिए कोयल के प्रयोग ने खनन उद्योग का भी विकास किया। कच्चे माल को कारखानों तक लाने के लिए यातायात के क्षेत्र में सुधार किए गए। स्टीफैन्सन ने रेल इंजन का अविष्कार किया। मैकडम ने सड़क निर्माण के तरीके में सुधार किया। संचार साधनों का भी विकास हुआ। नयी तकनीक और मशीनों का प्रयोग धीरे-धीरे अन्य क्षेत्रों में भी होने लगा।

औद्योगिक क्रान्ति इंग्लैण्ड के पश्चात सर्वप्रथ्म बेल्जियम में हुयी और धीरे-धीरे फ्रांस और जर्मनी में भी औद्योगिक विकास हुआ। 19वीं सदी के अन्त तक पश्चिमी यूरोप के अधिकांश क्षेत्रों तथा अमेरिका के उत्तरी भाग में औद्योगिक विकास हो गया। यूरोप के पूर्वी क्षेत्रों और रूस में मशीनीकरण की गति धीमी रही।औद्योगिक क्रान्ति ने आर्थिक क्षेत्र में उत्पादन में वृद्धि, घरेलू उद्योग के स्थान पर कारखाना उद्योग का विकास और मशीनों का बड़ी संख्या में उपयोग, शहरीकरण और पंूजीवाद का विकास किया। समाज में नये श्रम बेचने वाले मजदूर वर्ग और तकनीक जानने वाले मध्यम वर्ग का उदय हुआ। पूंजीवाद के विकास ने वर्ग संघर्ष उत्पन्न किया। राजनैतिक क्षेत्र में कारखानों और मजदूरों से सम्बन्धित कानून बनाए गए। संसदीय सुधारों द्वारा अधिक से अधिक जनता को मताधिकार प्राप्त हुआ। उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद की भावना का विकास हुआ, जिससे देशों के मध्य वैमनस्य बढ़ा। नवीन विचारधाराओं उदारवाद, समाजवाद और साम्यवाद का उदय हुआ। वर्ग संघर्ष बढ़ा और समस्त विश्व दो गुटों में बंट गया-पूंजीवादी और साम्यवादी।

12.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.5 के अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

1. देखिए 12.5 के प्रथम दो पैरा।
2. देखिय 12.5 का अन्तिम पैरा।

12.6 के अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

1. देखिए 12.6 में कृषि क्रान्ति।
2. देखिए 12.6 में व्यवसायिक क्रान्ति तथा परिवहन क्रान्ति।

12.7 के अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

1. देखिए 12.7 के अर्न्तगत विभिन्न बिन्दु
2. इंग्लैण्ड दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं का उत्पादन करता था।

12.8 के अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

1. देखिए 12.8 में पैरा वस्त्र उद्योग

2. देखिए 12.8 में पैरा लोहा और कोयला उद्योग

3. देखिए 12.8 में पैरा यातायात और परिवहन में तकनीकी प्रयोग

12.9 के अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

1. देखिए 12.9 में पैरा फ्रांस

2. दखिए 12.9 में पैरा जर्मनी

12.10 के अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

1. देखिए 12.10 में पैरा आर्थिक और सामाजिक

2. देखिए 12.10 में पैरा राजनैतिक और वैचारिक

12.13 तकनीकी शब्दावली और कथन

1. हेजन-औद्योगिक क्रांति का अर्थ है कुटीर उद्योग का मशीनीकरण।

2. एडवर्ड-औद्योगिक प्रणाली तथा श्रमिकों के स्तर में होने वाले परिवर्तनों को ही औद्योगिक क्रांति कहा जाता है।

3. स्वेन- आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तनों की शुरूआत ही औद्योगिक क्रांति है।

4. एच.ए.एल.फिशर- ब्रिटेन को औद्योगिक पूंजीवाद के अग्रणी होने में जिस कारण ने योगदान दिया, उसमें प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता का सर्वाधिक योगदान है।

5. जी.टी.वाट्स- यदि हम अन्य देशों के साथ व्यापार न करते हुए केवल अपने उपनिवेशों के साथ ही व्यापार करते, तब भी इंग्लैण्ड विश्व का सर्वोच्च व्यापारिक देश होता।

6. नोबेल्स- ब्रिटेन की राजनीतिक सुरक्षा इतनी अच्छी थी कि लोग बड़े उद्योगों में आवश्यक पूँजी लगाने में बिल्कुल भी संकोच नहीं करते थे।

7. रजनी पामदत्त-यदि प्लासी की लूट का माल और भारत की सम्पदा इंग्लैण्ड की ओर उन्मुख न हुई होती- तो मेनचेस्टर, आर्कराइट, कार्टराइट, क्रोम्पटन-जैसे आविष्कारक और उनके आविष्कार समुद्र में फेंक दिए जाते।

8. एल.सी.ए.नोल्स-यदि फ्रांस में राज्य क्रांति ने फ्रांस के औद्योगिक ओर आर्थिक जीवन को अस्त-व्यस्त नहीं कर दिया होता, तो इंग्लैण्ड के बजाय फ्रांस ही औद्योगिक क्रांति का प्रणेता होता।

9. नोबेल्स- क्रान्ति का परिणाम था- नई जनता, नये वर्ग, नई नीतियाँ, नयी समस्याएँ और नये साम्रज्य।

10. सिडनी बेव-औद्योगिक क्रान्ति ने मजदूरों को अपने ही देश में एक भूमिहीन परदेशी बना दिया था।

12.14 संदर्भग्रंथ सूची

1.नोल्स, एल.सी.ए.-द इण्डस्ट्रियल एण्ड कॉमर्शियल रिवोल्यूशन इन ग्रेट ब्रिटेन डयूरिंग द नाइनटिंथ सेन्चुरी

2.वाट्स,जी.टी.-लैण्डमार्क इन इण्डस्ट्रियल हिस्ट्री

3.पोलार्ड,सिडनी-पीसफुल कान्क्वेस्टःद इण्डस्ट्रियलाइजेश्न ऑफ यूरोप,1760-1970

12.15 सहायक और उपयोगी पाठ्य सामग्री

- वर्मा, लाल बहादुर-यूरोप का इतिहास,भाग-2, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली,1998
- गुप्ता, पार्थसारथी (सम्पादक)-यूरोप का इतिहास, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली,1987
- हेजन, सी.डी.- आधुनिक यूरोप का इतिहास (अनुवादक-सत्यनारायण दुबे)
- केटलबी, सी.डी.एम -हिस्ट्री ऑफ मार्डन टाइम्स
- ग्रान्ट एण्ड टेम्परले-उन्नीसवीं तथा बीसवीं सदी के यूरोप का इतिहास (अनु0-बाबूराम गुप्त)।
- IGNOU B.A. History Course (EHI-04: History of Modern Europe, 1450–1850):
  Block 3: The Scientific Revolution
  Block 4: The Agricultural Revolution
- https://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/75700/1/Unit-11.pdf
- IGNOU M.A. History (MHI-02: Modern World):
- Unit 3 & 4: Scientific and Agricultural Changes
- दीनानाथ वर्मा एवं शिव कुमार सिंह: विश्व इतिहास का सर्वेक्षण
- J.H. Parry: The Age of Reconnaissance
- E.J. Hobsbawm: Industry and Empire
- Peter Burke:The European Renaissance
- Gordon Childe: Man Makes Himself – कृषि विकास का मानव समाज पर प्रभाव।

12.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. औद्योगिक क्रान्ति से क्या तात्पर्य है? इसके उदय के कारणों पर प्रकाश डालिए।
2. औद्योगिक क्रान्ति इंग्लैण्ड से क्यों प्रारम्भ हुयी? विस्तार से बताइये।
3. औद्योगिक क्रान्ति के यूरोप में प्रसार का वर्णन करिये।
4. औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम और प्रभाव को विस्तार से बताइये।

इकाई तेरह

गौरवपूर्ण क्रान्ति - पृष्ठभूमि, घटनाएँ एवं परिणाम

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 गौरवपूर्ण क्रांति (Glorious Revolution) का संक्षिप्त परिचय

13.4 पृष्ठभूमि

- **13.4.1राजनीतिक पृष्ठभूमि**
- **13.4.2धार्मिक पृष्ठभूमि**
- **13.4.3 सामाजिक एवंआर्थिक कारण**

13.5 प्रमुख घटनाएँ

- **13.5.1 जेम्स द्वितीय का शासन (1685-1688)**
- **13.5.2 विलियमऑफऑरेंज का आमंत्रण**
- **13.5.3 जेम्स द्वितीय का भागना**
- **13.5.4बिल ऑफ राइट्स (Bill of Rights – 1689)**

13.6 परिणाम

- **13.6.1 राजनीतिक परिणाम**
- **13.6.2 धार्मिक परिणाम**
- **13.6.3 आर्थिक एवं सामाजिक परिणाम**
- **13.6.4 वैचारिक परिणाम**

13.7 सारांश

13.8 तकनीकी शब्दावली

13.9 स्वमूल्यांकित प्रश्न

13.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

13.11 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

इंग्लैंड की क्रान्ति 17वीं शताब्दी की महत्त्वपूर्ण घटनाओं में से एक हैजिसके यूरोपीय इतिहास में दूरगामी परिणाम हुए।17वीं शताब्दी का इंग्लैंड राजनीतिक अस्थिरता, धार्मिक संघर्ष और निरंकुश शासकों के कारण अशांत था। इस पृष्ठभूमि में 1688 ई. में जो परिवर्तन हुआ, वह 'गौरवपूर्ण क्रांति' (Glorious Revolution) के नाम से जाना गया। यह क्रांति इसलिए विशेष मानी जाती है क्योंकि यह बिना रक्तपात के सत्ता परिवर्तन का उदाहरण बनी और इसने संवैधानिक राजतंत्र की नींव रखी। इस क्रांति ने इंग्लैंड को निरंकुश राजतंत्र से निकालकर संसद की सर्वोच्चता की ओर अग्रसर किया। इस क्रान्ति ने सत्ता के स्रोत, शासन के ढांचे और नागरिक अधिकारों की परिभाषा को स्थायी रूप से बदल दिया। यह क्रांति 1688 ई. में तब हुई जब इंग्लैंड के राजा जेम्स द्वितीय को सत्ता से हटा दिया गया और उसके स्थान पर उसकी पुत्री मैरी तथा उसके दामाद विलियम ऑफ ऑरेंज को इंग्लैंड का शासक बनाया गया। यह सत्ता परिवर्तन बिना किसी बड़े रक्तपात के हुआ, इसीलिए इसे 'गौरवपूर्ण' अथवा 'रक्तहीन क्रांति' कहा जाता है।

इस क्रांति का महत्व केवल सत्ता के हस्तांतरण तक सीमित नहीं था, बल्कि यह इंग्लैंड की शासन प्रणाली में एक निर्णायक मोड़ सिद्ध हुई। यह पहला अवसर था जब संसद ने शासक को निमंत्रण देकर सत्ता सौंपी और बदले में शासक ने संसदीय संप्रभुता को स्वीकार किया। इससे इंग्लैंड में निरंकुश राजतंत्र का अंत हुआ और संवैधानिक राजतंत्र की नींव पड़ी जिसमें शासक की शक्तियाँ सीमित और विधायिका के अधीन हो गईं।

गौरवपूर्ण क्रांति से पूर्व इंग्लैंड में स्टुअर्ट वंश के शासकों ने 'Divine Right of Kings' सिद्धांत का समर्थन किया, जिसके अनुसार राजा को ईश्वर द्वारा चुना गया माना जाता था और उसकी सत्ता सर्वोच्च होती थी। लेकिन इस क्रांति ने इस सिद्धांत को नकारते हुए यह स्थापित किया कि सत्ता का स्रोत जनता है, और राजा की वैधता संसद की स्वीकृति से तय होगी। इस बदलाव ने आधुनिक लोकतंत्र के उद्भव को सशक्त आधार प्रदान किया।इस क्रांति ने न केवल राजनीतिक व्यवस्था को परिवर्तित किया, बल्कि धार्मिक स्तर पर भी दूरगामी प्रभाव डाले। इंग्लैंड में प्रोटेस्टेंट धर्म को कानूनी संरक्षण मिला और कैथोलिकों को सत्ता से बाहर रखा गया। Toleration Actके माध्यम से धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ावा दिया गया, जिससे अनेक संप्रदायों को अपने मत का पालन करने की स्वतंत्रता प्राप्त हुई।

अतः यह कहा जा सकता है कि गौरवपूर्ण क्रांति केवल इंग्लैंड की एक आंतरिक घटना नहीं थी, बल्कि इसका प्रभाव यूरोप और बाद के लोकतांत्रिक आंदोलनों पर भी पड़ा। इसने राज्य और धर्म, राजा और संसद, नागरिक और सत्ता के मध्य नए संतुलन की शुरुआत की। इस क्रांति ने एक ऐसी परंपरा को जन्म दिया जहाँ कानून, संविधान और नागरिक अधिकारों को सर्वोच्च महत्व दिया गया -और यही आधुनिक लोकतांत्रिक राष्ट्र-राज्य की मूल अवधारणा है।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई का मूल उद्देश्य विद्यार्थियों को 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इंग्लैंड में घटित एक ऐतिहासिक घटना - गौरवपूर्ण क्रांतिकी गहन समझ प्रदान करना है।इस इकाई के माध्यम से आप जान सकेंगे-

- इंग्लैंड में घटित हुई क्रान्ति की मुख्य घटनाओं और घटनाक्रम से परिचित हो सकेंगे।
- उन ऐतिहासिक कारणों को समझ सकेंगे जिनकी वजह से यह क्रान्ति हुई।
- इसके राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक पहलुओं के मध्य सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगे।
- इंग्लैंड की क्रान्ति के महत्त्व और आधुनिक यूरोप के इतिहास में इसके स्थान को समझने में सक्षम हो सकेंगे।
- गौरवपूर्ण क्रांति के बहुआयामी परिणामों से अवगत हो सकेंगे।
- इस इकाई के माध्यम से विद्यार्थियों में विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण का विकास हो सकेगा ताकि वे न केवल ऐतिहासिक घटनाओं को रटें, बल्कि यह भी समझ सकें कि किस प्रकार गौरवपूर्ण क्रांति ने आधुनिक लोकतांत्रिक शासन, संवैधानिकता और नागरिक स्वतंत्रता की वैश्विक अवधारणाओं को जन्म दिया।

13.3 गौरवपूर्ण क्रांति (Glorious Revolution) का संक्षिप्त परिचय

गौरवपूर्ण क्रांति (Glorious Revolution) इंग्लैंड के इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी जो 1688 ई. में घटित हुई। यह क्रांति इसलिए विशेष मानी जाती है क्योंकि इसमें सत्ता का हस्तांतरण बिना किसी बड़े रक्तपात के हुआ। यह एक राजनीतिक और संवैधानिक परिवर्तन था, जिसने इंग्लैंड की शासन व्यवस्था को निरंकुश राजशाही से संवैधानिक राजतंत्र की ओर अग्रसर किया। 'गौरवपूर्ण क्रांति' शब्द का प्रयोग सबसे पहले 1689 ई. में इस क्रांति को "रक्तहीन और शांतिपूर्ण" रूप से सम्पन्न होने के कारण किया गया।इस क्रांति के केंद्र में इंग्लैंड के राजा जेम्स द्वितीय की नीतियाँ थीं, जो एक कट्टर कैथोलिक थे और उन्होंने प्रोटेस्टेंट बहुल समाज में कैथोलिक धर्म को पुनः स्थापित करने के प्रयास किए। उन्होंने धार्मिक सहिष्णुता के नाम पर कैथोलिकों को विशेष अधिकार दिए, सेना और न्यायपालिका में उनका प्रभुत्व बढ़ाया और संसद की शक्तियों की अनदेखी की। इससे देश में व्यापक असंतोष फैल गया, विशेष रूप से संसद, चर्च ऑफ इंग्लैंड और नवोदित मध्यवर्ग में।

जेम्स द्वितीय की नीतियों से क्षुब्ध होकर अंग्रेज नेताओं ने नीदरलैंड्स के प्रोटेस्टेंट राजकुमार विलियम ऑफ ऑरेंज और उनकी पत्नी मैरी (जेम्स द्वितीय की पुत्री) को इंग्लैंड आने के लिए आमंत्रित किया। नवंबर 1688 में विलियम अपनी सेना के साथ इंग्लैंड पहुँचे। जेम्स द्वितीय को पर्याप्त समर्थन नहीं मिला और वह बिना किसी युद्ध के फ्रांस भाग गया। यह सत्ता का ऐसा शांतिपूर्ण हस्तांतरण था, जिसने इसे इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान दिलाया।

क्रांति के पश्चात् 1689 ई. में संसद ने विलियम और मैरी को संयुक्त रूप से इंग्लैंड का शासक घोषित किया, लेकिन साथ ही उन्हें 'बिल ऑफ राइट्स' (Bill of Rights) को स्वीकार करने की शर्त भी दी गई। यह अधिनियम शासक की शक्तियों को सीमित करता था और संसद की सर्वोच्चता को मान्यता देता था। इसके साथ ही संवैधानिक राजतंत्र की स्थापना हुई और इंग्लैंड में कानून और नागरिक स्वतंत्रताओं की नींव पड़ी।

इस प्रकार, गौरवपूर्ण क्रांति केवल एक राजपरिवार का सत्ता परिवर्तन नहीं थी, बल्कि यह आधुनिक लोकतंत्र की दिशा में एक निर्णायक कदम थी। इसने शासन की वैधता को संसद और कानून के अधीन कर दिया और यह सिद्ध

किया कि सत्ता राजा की कृपा नहीं बल्कि जनता की स्वीकृति से चलती है। इसका प्रभाव केवल इंग्लैंड तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह अमेरिका और फ्रांस की भावी क्रांतियों के लिए भी प्रेरणा बनी।

13.4 पृष्ठभूमि

गौरवपूर्ण क्रांति किसी आकस्मिक घटना का परिणाम नहीं थी, बल्कि इसके पीछे एक दीर्घकालिक ऐतिहासिक प्रक्रिया कार्य कर रही थी। इंग्लैंड में 17वीं शताब्दी के दौरान राजनीतिक अस्थिरता, धार्मिक संघर्ष और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों ने इस क्रांति की भूमि तैयार की। स्टुअर्ट राजवंश की निरंकुश नीतियाँ, कैथोलिक और प्रोटेस्टेंटों के बीच वैमनस्य, और नवोदित मध्यवर्ग की आकांक्षाएँ, इन सभी कारकों ने मिलकर एक ऐसी स्थिति उत्पन्न की, जिसमें सत्ता और समाज के बीच टकराव अपरिहार्य हो गया। इस खंड में हम गौरवपूर्ण क्रांति की तीन मुख्य पृष्ठभूमियों का विस्तार से विश्लेषण करेंगे: राजनीतिक, धार्मिक, और सामाजिक-आर्थिक।

13.4.1 राजनीतिक पृष्ठभूमि

17वीं शताब्दी के इंग्लैंड में स्टुअर्ट वंश के शासकों ने निरंकुश राजतंत्र की ओर झुकाव दिखाया। जेम्स प्रथम और उसके पुत्र चार्ल्स प्रथम ने "ईश्वर-प्रदत्त अधिकार" (Divine Right of Kings) सिद्धांत का समर्थन किया, जिसके अनुसार राजा की सत्ता ईश्वर से प्राप्त होती है और उसे कोई चुनौती नहीं दे सकता। इससे संसद और राजा के बीच टकराव प्रारंभ हुआ।चार्ल्स प्रथम ने संसद को कई वर्षों तक भंग रखा और करों को बिना संसद की अनुमति के वसूला, जिससे जनता में व्यापक असंतोष फैला। संसद के अधिकारों की रक्षा के लिए जब संघर्ष तेज हुआ, तो 1642 ई. में इंग्लैंड में नागरिक युद्ध छिड़ गया। यह युद्ध राजसत्ता (Royalists) और संसद समर्थकों (Parliamentarians) के बीच था।

इस युद्ध में संसद समर्थकों के नेता ओलिवर क्रोमवेल विजयी हुए और 1649 में चार्ल्स प्रथम को मृत्युदंड दे दिया गया। इसके बाद इंग्लैंड में कुछ वर्षों तक गणराज्य प्रणाली (Commonwealth) रही और ओलिवर क्रोमवेल लॉर्ड प्रोटेक्टर बना। किंतु 1660 में राजतंत्र की पुनः स्थापना हुई और चार्ल्स द्वितीय को राजा बनाया गया।

हालाँकि, राजतंत्र की पुनः स्थापना के बावजूद स्टुअर्ट वंश की प्रवृत्तियाँ नहीं बदलीं। चार्ल्स द्वितीय और उसके उत्तराधिकारी जेम्स द्वितीय ने पुनः निरंकुश तरीके अपनाए। विशेषतः जेम्स द्वितीय की नीतियों ने संसद, चर्च और जनता के मध्य असंतोष को और तीव्र किया, जिसने गौरवपूर्ण क्रांति की नींव रखी।इस प्रकार, इंग्लैंड में निरंकुश राजतंत्र और संसद के बीच संघर्ष ने एक ऐसा राजनीतिक वातावरण बना दिया जिसमें जनता की इच्छा सर्वोपरि होने की माँग उठने लगी और एक संवैधानिक शासन की आवश्यकता स्पष्ट होती गई।

13.4.2 धार्मिक पृष्ठभूमि

गौरवपूर्ण क्रांति की धार्मिक पृष्ठभूमि इंग्लैंड में प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक संप्रदायों के बीच चले आ रहे संघर्ष से जुड़ी हुई थी। 16वीं शताब्दी में हेनरी अष्टम द्वारा इंग्लैंड को रोमन कैथोलिक चर्च से अलग कर 'चर्च ऑफ इंग्लैंड' की स्थापना की गई थी, जो प्रोटेस्टेंट धर्म पर आधारित था।हालाँकि देश में प्रोटेस्टेंट धर्म प्रमुख हो गया था, लेकिन कई शासकों

और विशेषकर स्टुअर्ट वंश के राजा जेम्स द्वितीय की नीतियाँ कैथोलिक पुनर्स्थापन की ओर संकेत देती थीं। जेम्स द्वितीय स्वयं एक कट्टर कैथोलिक था और उसने अपने शासनकाल में कैथोलिकों को महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त करना शुरू कर दिया।

जेम्स द्वितीय ने घोषणाओं द्वारा धार्मिक सहिष्णुता (Declarations of Indulgence) लागू की, जिसके माध्यम से उसने कैथोलिकों और अन्य असहमत प्रोटेस्टेंटों को विशेषाधिकार दिए। इसने चर्च ऑफ इंग्लैंड और संसद दोनों को नाराज़ कर दिया क्योंकि वे इस प्रयास को राज्य धर्म की नींव को कमजोर करने के रूप में देखते थे।धार्मिक टकराव इस समय और तीव्र हो गया जब 1688 में जेम्स द्वितीय के पुत्र का जन्म हुआ, जिससे यह संभावना बनी कि इंग्लैंड में एक स्थायी कैथोलिक वंश की स्थापना हो सकती है। इससे प्रोटेस्टेंट समुदाय और संसद दोनों में भय और क्रोध फैल गया।

इस धार्मिक संकट ने ही विलियम ऑफ ऑरेंज को इंग्लैंड बुलाने का मार्ग प्रशस्त किया। जनता और संसद, दोनों की यह स्पष्ट माँग थी कि इंग्लैंड में केवल प्रोटेस्टेंट शासक ही स्वीकार्य होंगे। इस प्रकार धार्मिक कारणों ने गौरवपूर्ण क्रांति को उत्पन्न करने में निर्णायक भूमिका निभाई।

13.4.3 सामाजिक एवं आर्थिक कारण

17वीं शताब्दी में इंग्लैंड में सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों की प्रक्रिया तेजी से चल रही थी। मध्यवर्ग, जो व्यापार, उद्योग और भूमि पर आधारित था, उभरता जा रहा था और वह अब अधिक राजनीतिक अधिकारों की माँग करने लगा था।राजा द्वारा करों के अत्यधिक दमनकारी संग्रह, व्यापार पर नियंत्रण, और नए करों को बिना संसद की सहमति के थोपना, नवोदित पूंजीपति वर्ग के लिए असहनीय हो गया था। व्यापार और भूमि से जुड़े लोग अब संसद के साथ खड़े हो गए क्योंकि उन्हें संसद से अपनी आर्थिक स्वतंत्रता की सुरक्षा की आशा थी।

समाज में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और धार्मिक सहिष्णुता की माँग भी बढ़ने लगी थी। प्रेस की आज़ादी, धर्म के मामलों में हस्तक्षेप न करने और न्यायिक स्वतंत्रता की माँगें जोर पकड़ रही थीं। लेकिन जेम्स द्वितीय का शासन इन सभी पहलुओं में दमनकारी था।इसके अतिरिक्त, जेम्स द्वितीय द्वारा सेना और नौकरशाही में अपने समर्थकों को भरने की नीति से सामाजिक असंतुलन और अधिक बढ़ गया। जनता को यह लगने लगा कि राजा न तो न्यायप्रिय है और न ही उनकी भलाई के प्रति प्रतिबद्ध।इस सामाजिक और आर्थिक असंतोष ने राजा के प्रति विश्वास को समाप्त कर दिया और एक वैकल्पिक नेतृत्व के प्रति जनता को प्रेरित किया। यही भावना अंततः गौरवपूर्ण क्रांति की सामाजिक आधारशिला बनी।

13.5 प्रमुख घटनाएँ

गौरवपूर्ण क्रांति की घटनाएँ अपेक्षाकृत शीघ्र और रक्तहीन रूप से घटित हुईं, किंतु इनकी ऐतिहासिक महत्ता अत्यंत व्यापक रही। इस क्रांति की नींव पहले से तैयार राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक असंतोष पर आधारित थी, लेकिन वास्तविक घटनाएँ 1685 से 1689 के बीच केंद्रित रहीं। इन घटनाओं ने इंग्लैंड में संवैधानिक राजतंत्र की स्थापना की नींव डाली और संसद को सर्वोच्च बनाने की दिशा में निर्णायक परिवर्तन लाए। इस खंड में हम प्रमुख चार

घटनाओं पर चर्चा करेंगे: जेम्स द्वितीय का शासन, विलियम ऑफ ऑरेंज का आमंत्रण, जेम्स द्वितीय का भागना और बिल ऑफ राइट्स के पारित होने का उल्लेख करेंगे।

13.5.1 जेम्स द्वितीय का शासन (1685–1688)

जेम्स द्वितीय ने 1685 ई. में अपने भाई चार्ल्स द्वितीय की मृत्यु के बाद सिंहासन संभाला। वह एक कट्टर कैथोलिक था और सत्ता में आने के बाद उसने धार्मिक सहिष्णुता के नाम पर कैथोलिकों को सत्ता में बढ़ावा देना प्रारंभ किया, जिससे चर्च ऑफ इंग्लैंड और प्रोटेस्टेंट जनता में असंतोष फैल गया।उसने घोषणा पत्र द्वारा सहिष्णुता (Declarations of Indulgence) जारी कर धार्मिक असहमतियों को सुविधाएँ दीं, जबकि संसद इसका तीव्र विरोध कर रही थी। जेम्स द्वितीय ने न्यायिक नियुक्तियों में भी अपने समर्थकों को नियुक्त किया और न्यायपालिका की स्वतंत्रता को बाधित किया।

संसद की लगातार उपेक्षा, अधिकारियों और सैन्य पदों पर कैथोलिकों की नियुक्ति, तथा निरंकुश शासन के कारण जनता और राजनेता, दोनों ही, शासक से विमुख होते गए। जेम्स द्वितीय ने चर्च पर भी नियंत्रण स्थापित करने की कोशिश की, जिससे धार्मिक और राजनीतिक संकट और गहराता गया।1687 में उसने संसद भंग कर दी और बिना जन प्रतिनिधियों की सहमति के शासन चलाने लगा। न्यायालयों और विश्वविद्यालयों में कैथोलिकों की नियुक्ति ने पुरानी परंपराओं को चुनौती दी, जिससे अभिजात वर्ग भी उससे नाराज़ हो गया।1688 में जब जेम्स द्वितीय के एक पुत्र का जन्म हुआ, तो यह संभावना उत्पन्न हुई कि इंग्लैंड में एक स्थायी कैथोलिक वंश स्थापित हो जाएगा। यही वह क्षण था, जब विरोधी गुटों ने मिलकर वैकल्पिक नेतृत्व लाने की दिशा में कदम बढ़ाया।

13.5.2 विलियम ऑफ ऑरेंज का आमंत्रण

जेम्स द्वितीय की नीतियों से असंतुष्ट होकर इंग्लैंड के सात प्रमुख नेताओं (जिन्हें "Immortal Seven" कहा जाता है) ने डच गणराज्य के प्रिंस विलियम ऑफ ऑरेंज और उसकी पत्नी मैरी को इंग्लैंड आने और शासन संभालने का आमंत्रण दिया। मैरी स्वयं इंग्लैंड की शाही स्टुअर्ट वंश की सदस्य और जेम्स द्वितीय की बेटी थीं।आमंत्रण का उद्देश्य था – प्रोटेस्टेंट शासन की पुनः स्थापना करना, संसद की गरिमा को बनाए रखना और निरंकुश शासन को समाप्त करना। विलियम को आश्वस्त किया गया कि इंग्लैंड की अधिकांश जनता और अभिजात वर्ग उसका समर्थन करेंगे।

विलियम ने इस अवसर को न केवल धार्मिक दृष्टि से उचित समझा, बल्कि राजनीतिक रूप से भी महत्वपूर्ण माना। उसे डर था कि फ्रांस का लुई चतुर्दश इंग्लैंड में कैथोलिक वर्चस्व के माध्यम से डच गणराज्य के खिलाफ मोर्चा खोल सकता है।नवंबर 1688 में विलियम एक विशाल सेना के साथ इंग्लैंड के तट पर उतरा। जेम्स द्वितीय ने इसका प्रतिरोध करने का प्रयास किया, लेकिन उसकी सेना के अधिकांश अधिकारी और अभिजात वर्ग विलियम के पक्ष में चले गए।विलियम की यह कार्रवाई केवल सैन्य हस्तक्षेप नहीं थी, बल्कि यह राजनीतिक समर्थन प्राप्त क्रांति थी, जिसे इंग्लैंड की जनता और संसद का समर्थन प्राप्त था। इस प्रकार यह क्रांति बिना किसी व्यापक रक्तपात के आगे बढ़ी।

13.5.3 जेम्स द्वितीय का भागना

विलियम ऑफ ऑरेंज के आगमन से जेम्स द्वितीय की स्थिति अत्यंत कमजोर हो गई। सेना में विश्वासघात और जनता के व्यापक विरोध के कारण उसे स्पष्ट हो गया कि वह सत्ता बनाए नहीं रख सकता। 11 दिसंबर 1688 को जेम्स द्वितीय ने लंदन से भागने का प्रयास किया, लेकिन उसे पकड़ लिया गया।कुछ समय बाद विलियम के इशारे पर उसे दोबारा भागने दिया गया और वह फ्रांस में निर्वासन में चला गया, जहाँ उसे लुई चतुर्दश का संरक्षण प्राप्त था। इस प्रकार इंग्लैंड में शासन परिवर्तन बिना युद्ध के संपन्न हुआ।

जेम्स द्वितीय के जाने के बाद एक राजनीतिक संकट उत्पन्न हुआ - इंग्लैंड में सत्ता किसे दी जाए? संसद ने समाधान प्रस्तुत करते हुए विलियम और मैरी को संयुक्त रूप से राजगद्दी पर आमंत्रित किया, बशर्ते वे संसद के अधिकारों को स्वीकार करें।1689 में विलियम और मैरी ने ब्रिटिश सिंहासन ग्रहण किया और इंग्लैंड में एक नए युग की शुरुआत हुई।यह युग संवैधानिक राजतंत्र का युग था, जिसमें राजा संसद के अधीन हो गया।

जेम्स द्वितीय के निष्कासन की यह प्रक्रिया इतनी शांति और सहमति से संपन्न हुई कि इसे "गौरवपूर्ण क्रांति" (Glorious Revolution) कहा गया। इस घटना ने यूरोप के अन्य देशों में भी संवैधानिक परिवर्तन की प्रेरणा दी।

13.5.4 बिल ऑफ राइट्स (Bill of Rights – 1689)

1689 ई. में संसद ने "बिल ऑफ राइट्स" पारित किया, जो गौरवपूर्ण क्रांति की परिणति थी और इंग्लैंड में संवैधानिक राजतंत्र की आधारशिला बना। इस विधेयक द्वारा राजा के अधिकार सीमित कर दिए गए और संसद को सर्वोच्च घोषित किया गया। बिल ऑफ राइट्स ने स्पष्ट किया कि राजा संसद की सहमति के बिना कर नहीं लगा सकता, संसद के बनाए हुए कानूनों को रद्द नहीं कर सकता, सेना नहीं रख सकता और कानूनों को निरस्त नहीं कर सकता। संसद की नियमित बैठक, न्यायपालिका की स्वतंत्रता, और भाषण की स्वतंत्रता को कानूनी संरक्षण प्राप्त हुआ। यह विधेयक इंग्लैंड के नागरिकों के मौलिक अधिकारों का भी संरक्षक बना। इससे यह सुनिश्चित हुआ कि अब कोई भी शासक निरंकुश होकर शासन नहीं कर सकेगा। राजा को कानून का पालन करना अनिवार्य कर दिया गया।

बिल ऑफ राइट्स ने "संसदीय सर्वोच्चता" के सिद्धांत को स्थापित किया, जो आगे चलकर ब्रिटिश संविधान का केंद्रीय आधार बना। इससे न केवल इंग्लैंड, बल्कि समूचे यूरोप में संवैधानिक शासन की अवधारणा को बढ़ावा मिला। यह उल्लेखनीय है कि इस विधेयक को स्वीकार कर विलियम और मैरी ने अपनी सत्ता को सीमित करने की सहमति दी और यह मान्यता दी कि राजा जनता की सहमति से ही शासन कर सकता है। यह आधुनिक लोकतंत्र की दिशा में एक ऐतिहासिक मील का पत्थर था।

13.6 परिणाम

गौरवपूर्ण क्रांति (1688) ब्रिटिश इतिहास की एक ऐसी घटना थी जिसने न केवल इंग्लैंड में संवैधानिक राजतंत्र की नींव डाली, बल्कि यूरोप और अमेरिका के राजनीतिक विचारों को भी प्रभावित किया। यह क्रांति रक्तरहित होने के बावजूद अत्यंत गहन परिणाम देने वाली सिद्ध हुई। इसके प्रभाव चार प्रमुख क्षेत्रों में दिखाई देते हैं – राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक-आर्थिक, और वैचारिक/दार्शनिक।

13.6.1 राजनीतिक परिणाम

सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तन यह हुआ कि राजा संसद के अधीन हो गया। गौरवपूर्ण क्रांति के बाद पारित बिल ऑफ राइट्स (1689) ने यह स्पष्ट कर दिया कि राजा संसद की अनुमति के बिना कर नहीं लगा सकता, सेना नहीं रख सकता और कानूनों को निलंबित नहीं कर सकता।

इस क्रांति ने संसदीय सर्वोच्चता की अवधारणा को स्थापित किया, जो आगे चलकर ब्रिटिश शासन प्रणाली की आधारशिला बनी। राजा अब ईश्वर द्वारा नियुक्त शासक नहीं रहा, बल्कि वह संवैधानिक अनुबंध का भाग बन गया।यह क्रांति इंग्लैंड में संवैधानिक राजतंत्र (Constitutional Monarchy) की शुरुआत थी, जिसमें संसद को विधायी अधिकार और न्यायपालिका को स्वतंत्रता मिली। यह आधुनिक लोकतंत्र की दिशा में एक निर्णायक कदम था।इसके साथ ही, "किंग इन पार्लियामेंट" की अवधारणा विकसित हुई, जिसमें राजा और संसद मिलकर शासन करते हैं, लेकिन संसद को प्रमुखता दी जाती है। यह विचार आगे चलकर ब्रिटिश लोकतांत्रिक परंपरा का मूल बना।राजनैतिक स्थिरता और उत्तरदायित्व की यह प्रणाली धीरे-धीरे अन्य यूरोपीय देशों में भी अनुकरणीय बनी। यह क्रांति निरंकुश राजतंत्र की आलोचना और विधायिका के सशक्तिकरण की प्रेरणा बनी।

13.6.2 धार्मिक परिणाम

धार्मिक क्षेत्र में गौरवपूर्ण क्रांति ने प्रोटेस्टेंट धर्म की विजय सुनिश्चित की। इंग्लैंड में कैथोलिक धर्म को फिर कभी राजकीय संरक्षण प्राप्त नहीं हुआ और कैथोलिकों को सिंहासन पर आसीन होने से प्रतिबंधित कर दिया गया। 'बिल ऑफ राइट्स' और बाद में 'एक्ट ऑफ सेटलमेंट (1701)' के माध्यम से यह स्थापित किया गया कि केवल प्रोटेस्टेंट उत्तराधिकारी ही इंग्लैंड की राजगद्दी पर बैठ सकते हैं। यह कैथोलिकों के राजनीतिक अधिकारों को सीमित करने वाला कदम था।हालाँकि, कुछ हद तक धार्मिक सहिष्णुता को भी मान्यता दी गई। 'टॉलरशन एक्ट (1689)' के तहत कुछ प्रोटेस्टेंट संप्रदायों को सार्वजनिक उपासना की अनुमति दी गई, हालांकि यह अधिकार पूर्ण नहीं था।

क्रांति ने चर्च और राज्य के संबंधों को पुनः परिभाषित किया। अब चर्च को पूर्णतः राज्य के नियंत्रण में नहीं लाया जा सका, और धार्मिक स्वतंत्रता की अवधारणा को वैचारिक मान्यता मिलने लगी। इसने धर्म को राजनीति से अलग करने की दिशा में पहला कदम प्रस्तुत किया, जो आगे चलकर 'सेक्युलर स्टेट' की अवधारणा का आधार बना।

13.6.3 सामाजिक-आर्थिक परिणाम

गौरवपूर्ण क्रांति का प्रत्यक्ष प्रभाव आम जनता पर कम, परंतु मध्यवर्ग और अभिजात वर्ग पर गहरा पड़ा। अब शासन में संपन्न वर्गों की भागीदारी और निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनकी भूमिका बढ़ गई। पार्लियामेंट की सत्ता बढ़ने से व्यापारिक वर्ग को स्थायित्व और कानूनी संरक्षण मिला, जिससे ब्रिटिश पूँजीवाद को प्रोत्साहन मिला। इससे भविष्य में औद्योगिक क्रांति का मार्ग प्रशस्त हुआ। क्रांति के बाद राज्य के वित्तीय ढांचे को व्यवस्थित किया गया। बैंक ऑफ इंग्लैंड (1694) की स्थापना, कर्ज़ प्रबंधन और कराधान की प्रणाली का विकास हुआ।ये सभी आर्थिक स्थायित्व की दिशा में अहम कदम थे।इसके साथ ही, भूस्वामी वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच एक नया गठबंधन उभरा जिसने इंग्लैंड

की सामाजिक संरचना को नया रूप दिया। संसद में मुख्य रूप से इन्हीं वर्गों का प्रभाव बना रहा। हालाँकि, कृषक वर्ग और निम्नवर्गों के लिए कोई विशेष सामाजिक सुधार नहीं हुए। यह क्रांति अधिकतर उच्च और मध्यम वर्गों तक सीमित रही।

13.6.4 वैचारिक परिणाम

गौरवपूर्ण क्रांति ने राजनीतिक सिद्धांतों में गहरे परिवर्तन किए। इसनेलोक-स्वीकृति पर आधारित शासन और न्यायिक स्वतंत्रता जैसे आधुनिक अवधारणाओं को जन्म दिया। यह विचार कि सत्ता जनता की इच्छा से संचालित होनी चाहिए, इस क्रांति का मूल सिद्धांत बन गया।

जॉन लॉक जैसे दार्शनिकों ने इस क्रांति से प्रेरणा लेकर 'सामाजिक अनुबंध', 'प्राकृतिक अधिकार', और 'शासन परिवर्तन के अधिकार' जैसी अवधारणाओं को विस्तार दिया। उनकी कृति 'Two Treatises of Government' (1690) इस क्रांति की वैचारिक व्याख्या करती है।लॉक का यह मत कि यदि सरकार जनता के अधिकारों की रक्षा नहीं कर पाती, तो जनता को उसे बदलने का अधिकार है-यह विचार आगे चलकर अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम और फ्रांसीसी क्रांति के बौद्धिक आधार बने।इस क्रांति ने निरंकुश राजतंत्र की वैधता को चुनौती दी और एक नैतिक-राजनीतिक अनुबंध पर आधारित शासन की रूपरेखा प्रस्तुत की। यह विचार कालांतर में लोकतंत्र और मानवाधिकारों के वैश्विक सिद्धांतों में रूपांतरित हुआ।

इस प्रकार, गौरवपूर्ण क्रांति केवल एक राजनीतिक घटना नहीं थी, बल्कि यह एक वैचारिक आंदोलन थी जिसने आधुनिक विश्व के राजनीतिक चिंतन को नई दिशा दी।

13.7 सारांश

गौरवपूर्ण क्रांति (Glorious Revolution) केवल इंग्लैंड के राजनीतिक इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना नहीं थी, बल्कि इसने पूरे यूरोप और आगे चलकर अमेरिका तक की राजनीतिक एवं वैचारिक संरचनाओं को प्रभावित किया। यह क्रांति उस संक्रमणकालीन दौर का प्रतीक बनी, जब निरंकुश राजतंत्र की जगह एक संवैधानिक शासन की शुरुआत हुई। इस क्रांति की सबसे अनोखी विशेषता यह थी कि यह रक्तपात के बिना घटित हुई, और शांतिपूर्वक सत्ता का हस्तांतरण संभव हो सका।

इस क्रांति के बाद स्थापित संवैधानिक राजतंत्रने संसद को सर्वप्रमुख संस्था के रूप में स्थापित किया। राजा अब संप्रभु नहीं रहा, बल्कि एक वैधानिक प्रमुख बन गया। 'बिल ऑफ राइट्स (1689)' के माध्यम से न केवल संसद की सर्वोच्चता घोषित की गई, बल्कि नागरिक अधिकारों की गारंटी भी दी गई। यह सिद्धांत भविष्य के लोकतंत्रों की आधारशिला बने।धार्मिक दृष्टि से, क्रांति ने प्रोटेस्टेंट धर्म को संरक्षण प्रदान किया तथा कैथोलिकों के ऊपर राजनीतिक प्रतिबंध लगाए। साथ ही, टॉलरशन एक्ट (Toleration Act, 1689) के तहत प्रोटेस्टेंट मतों के बीच धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ावा मिला, यद्यपि यह पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता नहीं थी। यह धार्मिक सह-अस्तित्व की ओर एक प्रारंभिक कदम था।

क्रांति के परिणामस्वरूप व्यापारी वर्ग और पूंजीवाद को प्रोत्साहन मिला। कर लगाने से पूर्व संसद की अनुमति अनिवार्य हो गई, जिससे वित्तीय अनुशासन की नींव पड़ी। इस स्थायित्व ने ब्रिटेन को आर्थिक सशक्तिकरण की ओर अग्रसर किया और व्यापारिक वर्ग को राजनीतिक शक्ति के समीप ला खड़ा किया।वैचारिक स्तर पर, इस क्रांति ने जनता की संप्रभुता, प्राकृतिक अधिकारों और सत्ता परिवर्तन के अधिकार जैसे विचारों को जन्म दिया। जॉन लॉक जैसे दार्शनिकों ने इन विचारों को दर्शन और राजनीतिक सिद्धांतों के रूप में प्रतिष्ठा दिलाई। इस प्रकार, गौरवपूर्ण क्रांति ने आधुनिक लोकतंत्र की वैचारिक तथा व्यवहारिक नींव रखी, जो आगे चलकर वैश्विक स्तर पर क्रांतिकारी परिवर्तन का कारण बनी।

13.8 तकनीकी शब्दावली

- गौरवपूर्ण क्रांति: 1688 ई. में इंग्लैंड में हुई रक्तहीन क्रांति जिसमें संसद की सर्वोच्चता स्थापित हुई |
- संवैधानिक राजतंत्र: ऐसी शासन प्रणाली जिसमें राजा की शक्ति संविधान या संसद द्वारा सीमित होती है |
- बिल ऑफ राइट्स (Bill of Rights, 1689): एक कानून जो संसद को सर्वोच्च घोषित करता है और नागरिक अधिकारों की रक्षा करता है
- टॉलरशन एक्ट (Toleration Act, 1689): ऐसा अधिनियम जिसने प्रोटेस्टेंट गैर-अंग्लिकन संप्रदायों को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की |
- प्रोटेस्टेंट: ईसाई धर्म की वह शाखा जो रोमन कैथोलिक परंपराओं के विरोध में उभरी |
- कैथोलिक: ईसाई धर्म की वह परंपरा जो पोप और रोमन चर्च की मान्यताओं का अनुसरण करती है|

13.9 स्वमूल्यांकित प्रश्न

1. गौरवपूर्ण क्रांति को 'रक्तहीन क्रांति' क्यों कहा जाता है?
2. बिल ऑफ राइट्स (1689) के दो प्रमुख प्रावधान लिखिए।
3. जेम्स द्वितीय की किन नीतियों ने लोगों में असंतोष उत्पन्न किया?
4. टॉलरशन एक्ट क्या था?
5. विलियम ऑफ ऑरेंज को इंग्लैंड आने का निमंत्रण किसने दिया?

13.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

- https://www.egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/76267/1/Unit-6.pdf
- दीनानाथ वर्मा एवं शिव कुमार सिंह :विश्व इतिहास का सर्वेक्षण
- शर्मा, रमेश चंद्र, आधुनिक यूरोप का इतिहास, राजकमल प्रकाशन.
- Kishore, K.L. Europe KaItihas, Hindi MadhyamKaryanvayanNideshalaya, DU.

- Trevelyan, G. M. History of England, New Delhi: Orient BlackSwan.
- John Locke, Two Treatises of Government, 1689.

13.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. 'गौरवपूर्ण क्रांति ने इंग्लैंड में निरंकुश राजतंत्र का अंत कर संवैधानिक शासन की नींव रखी।'इस कथन के आलोक में क्रांति की घटनाओं का वर्णन कीजिए।
2. गौरवपूर्ण क्रांति के प्रमुख कारणों की विवेचना करते हुए यह स्पष्ट कीजिए कि यह क्रांति कैसे शांतिपूर्वक सम्पन्न हुई।
3. जॉन लॉक के विचारों और गौरवपूर्ण क्रांति के आपसी संबंधों पर प्रकाश डालिए।
4. गौरवपूर्ण क्रांति के बहुआयामी प्रभावों (राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक-आर्थिक एवं वैचारिक) का समग्र विश्लेषण कीजिए।

इकाई-चौदह

अमेरिकी क्रांति

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 क्रांति के पूर्व का अमेरिका

14.3.1 क्रांति से पहले अमेरिकी जीवन

14.4 क्रांति का आरम्भ और परिणति

14.4.1 क्रांति के कारणों की चर्चा

14.4.2 अमेरिकी क्रांति के घटनाचक्र व परिणाम

14.5 सारांश

14.6 शब्दावली

14.7 अभ्यास के प्रश्न

14.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची/उपयोगी पाठ्य सामग्री

14.9 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

अमेरिकी क्रांति की चर्चा मानव सभ्यता के इतिहास के महत्त्वपूर्ण घटनाक्रम में एक है। जिसने पूरी दुनिया में परिवर्तन को प्रेरणा प्रदान किया। वस्तुतः यूरोपीय मध्यकालीन कसमसाहट ने 'नयी दुनिया' अर्थात् अमेरिका के अन्वेषण को प्रेरित किया। कालक्रम में विभिन्न नस्ल, सम्प्रदाय एवं विभिन्न धार्मिक मान्यताओं के लोग इस भू-भाग पर आकर बसते गये और उनके साथ नियंत्रणकारी शक्तियां भी अपने स्वार्थपूर्ति हेतु उक्त भू-भाग पर नियंत्रण का प्रयास करती रही। द्वन्द्व ने संघर्ष को जन्म दिया। अंततः अमेरिकी विप्लव 'क्रांति' का जन्म हुआ कालांतर में इसी विप्लव के गर्भ से स्वतंत्र संयुक्त राज्य अमेरिका जन्म हुआ। अमेरिकी 'क्रांति' ही अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम था। वर्ष 1776 ई0 इस महान घटनाक्रम का आधार वर्ष रहा था।

14.2 उद्देश्य

अमेरिका ने पिछले दो-ढाई सौ वर्षों में अपनी प्रगति से पूरी दुनिया को सबसे अधिक प्रभावित किया है। विज्ञान, धन और सैन्य बल में वह दुनिया के सबलतम राष्ट्रों में है। अमेरिकी क्रांति के अध्ययन से हमे वर्तमान आधुनिक अमेरिका की अवस्थित का ज्ञान हो जायेगा। तथा अमेरिकी इतिहास के गहन अध्ययन से देखा जा सकता है कि भारत जैसे देश को प्रेरित करने वाले बिन्दु उसमें कौन-कौन से है?

14.3 क्रांति के पूर्व का अमेरिका

14.3.1 क्रांति के पूर्व अमेरिकी जीवन

आईए सबसे पहले क्रांति के पूर्व अमेरिकी जीवन व समाज की चर्चा कर ली जाए। ताकि हम पूरे घटनाक्रम को समझ सके। एक विश्वविख्यात कहावत है कि रोम का निर्माण एक ही दिन में नहीं हुआ था। जब एक नगर के निर्माण में बहुत समय लगा, तो क्या एक राष्ट्र एक क्षण या एक वर्ष में भी बन सकता था? सच तो यह है कि संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रारंभिक निर्माण में ही लगभग पौने दो वर्ष सौ लग गए। इसके विकास की आधारशिला 13 औपनिवेशिक बस्तियां थीं, जिनकी स्थापना क्रमशः ही हो पायी थी। इसमें से अधिकांश तो अंग्रेजों ने ही बसायी थीं, शेष अन्य जातियों ने। सन् 1600 ई0 से सन् 1700 ई0 तक अनुमानतः 75000 व्यक्ति किसी एक अथवा अनेक कारणों से अपनी मातृभूमि की त्याग कर नवीन शैली का जीवन व्यतीत करने की अभिलाषा लिए इस महाद्वीप में आए। वे न तो धनवान ही थे, न रंक ही और न पैतृक भूमि से वंचित किए गए कृषक ही। कुछ ऐसे थे, जिनकों इकरारी मजदूर कहा जा सकता था। परंतु, वे दास न थे। इकरारनामें की अवधि समाप्त होते ही इनको सामान्य अधिकार प्राप्त हो जाते थे।

मातृभूमि का त्याग और सामुद्रिक यात्रा के विषम कष्ट सहन करने के लगभग चार कारण थे। प्रथम तो यूरोप में होने वाले निरंतर और जन-संहारक युद्धों से मुक्ति की आशा, दूसरे उस भयंकर परिपाटी से बचने की आशा, जिसके अंतर्गत निर्धन लोगों को पकड़ कर युद्धों में भाग लेने हेतु उनको अमीरों और सत्ताधारियों के हाथ बेच दिया जाता था, तीसरी आशा यह थी कि नई दुनिया में पहुंच कर ईमानदारी से कारोबार करने का अवसर प्राप्त हो सकेगा और इसके द्वारा जो लाभ प्राप्त होगा, उससे वे लोग अपनी संतानों के लिए मकान बना सकेगें और चौथी अभिलाषा यह थी कि धार्मिक तथा सांप्रदायिक अत्याचार एवं उत्पीड़न से मुक्त होकर स्वतंत्र रूप से वे ईश्वर की आराधना कर सकेंगे, जहां पर न तो चर्च (धर्मसंघ) का ही दबाव होगा और न सरकारी कर्मचारियों का ही।

इस संदर्भ में ध्यान देने की बात यह है कि सभी अप्रवासी किसी-न-किसी धर्म या संप्रदाय के अनुयायी थे। सामान्य रूप से तो ये लोग ईसाई धर्म के ही मानने वाले थे। परंतु, यह धर्म अनेक संप्रदायों में विभाजित हो चुका था। एक संप्रदाय कैथोलिकों का था और दूसरा पोप-विरोधी प्रोटेस्टेंट मत का भी विभाजन हो गया था। इंगलैंड में जो प्रमाणित धर्म था, उसकों ऐंग्लिकन चर्च (धर्मसंघ) कहते हैं। उसके भी विरोधी थे और उन्होंने एक उग्र दल संगठित कर लिया था। उसका नाम 'प्यूरिटन' पड़ा। इनमें धार्मिक मतभेद होते हुए भी एक मौलिक एकता थी और वह थी मातृभूमि

में प्रचलित पद्धति के प्रति असंतोष। अतः न्यूहैम्शायर से जार्जिया तक जितनी भी बस्तियां स्थापित हुईं, उनकी पृष्ठभूमि में धार्मिक असंतोष का कुछ-न-कुछ अंश अवश्य था।

जनसमूह एक रंग-बिरंगे भित्तिचित्र के समान था, जिसमें विभिन्न जातियों एवं सम्प्रदायों का उभरा हुआ व्यक्तित्व दृष्टिगोचर होता था। स्पेनी, डच, स्वीड, वेल्श, जर्मन तथा फ्रांसीसी यूरोप से आए थे और नीग्रोज को दास बना कर अफ्रीका से लाया गया था। इनके अतिरिक्त यहां आदिवासी भी थे। सन् 1700 ई. के आरम्भ में तो यहां की जनसंख्या 250000 ही थी, परंतु सन् 1780 ई. तक यह संख्या 250000 से 3000000 तक बढ़ गई। इसमंे भी संदेह नहीं कि सत्रहवीं शताब्दी की अपेक्षा अट्ठारहवीं शताब्दी में कहीं ज्यादा अप्रवासी अमेरिका आए और इनमें सबसे अधिक संख्या थी जर्मनों की।

परंतु, जर्मनों से भी अधिक संख्या स्कॉच-आयरिश अप्रवासियों की थी। ये लोग प्रेसबीटेरियन संप्रदाय के थे। इंगलैंड के व्यापारिक कानूनों की कठोरता से व्याकुल और विवश होकर आयरलैंड के उत्तरी भाग से, जहाँ कि उनको स्कौटलैंड से लाकर आबाद किया गया था, ये भाग निकले तथा मैंन, न्यू हैम्पशासर, मेसाचूसेट्स, पेंसिलवेनिया और अन्य दक्षिण उपनिवेशों में इन्होंने अपनी बस्तियां बसा लीं। चूंकि समुद्रतट पर तो लोग पहले से ही आबाद हो चुके थे, इस कारण इन नवागंतुकों को पश्चिमी सीमा पर ही दम लेने का स्थान मिल पाया। संघर्षमय जीवन के अभ्यस्त तो ये थे ही, अतः इनको इस क्षेत्र की कठिनाईयां बहुत अखरी नहीं। आदिवासियों से ये लोग वीरतापूर्वक निरंतर लड़ते-झगड़ते रहे। उत्पीड़ित जर्मनों और अंसतुष्ट आयरिश-स्काच तथा लूई चौदहवें की धार्मिक असहिष्णुताके शिकार ह्यूगोनाट्स के आगमन ने अनेक प्रकार की समस्याएं पैदा कर दीं, जिनका तत्काल हल आसान न था।

इंगलैंड में विलियम और मेरी का संयुक्त राज्य घोषित हो चुका था। इनके समक्ष प्रमुख प्रश्न यह था कि उपनिवेशों के साथ कैसा व्यवहार किया जाए, विशेषकर ऐसी परिस्थिति में जब कि ये विभिन्न इकाइयों में बंटे हुए थे और प्रत्येक इकाई की अपनी अलग ही विशेषता थी। केंद्रीय अथवा इंगलैड की सरकार एक तो बहुत दूर थी, इस कारण अप्रवासियों की भावनाओं का ठीक मूल्यांकन करने में असमर्थ, दूसरे स्थानीय विधायक सभाओं के हाथ में एक महत्त्वपूर्ण अस्त्र भी था और वह यह कि उनकी बिना अनुमति के सरकारी धन का भुगतान नहीं हो सकता था। यहां तक कि गवर्नर का वेतन तक उन्हीं के मतदान के अंतर्गत था। इस अस्त्र का कुछ उपनिवेशों में, जैसे, मेसाचूसेट्स और न्यूयार्क के प्रयोग भी किया गया और इस प्रकार गवर्नर की निरंकुशता पर रोक लगा दी गई। धीरे-धीरे इस मूल तत्व का जनता में भी प्रसार हुआ और जब अंकित क्रांति हुई, तब तो इसका रूप अत्यंत प्रखर हो गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लगभग सारे ही उपनिवेश प्रत्यक्ष रूपेण इंगलैड की सरकार के अधीन होते गए, परंतु शासनिक समस्याओं का इस परिवर्तन से समाधान न हो पाया। कहीं गवर्नर और विधायक सभा में अनबन थी, तो कहीं अनुपस्थित गवर्नरों के विरोध में आंदोलन हुए। वर्जीनिया लगभग साठ वर्ष तक अनुपस्थित गवर्नरों के ही अधीन रहा। न्यूयार्क में विलियम कासबी की व्यापारियों और धाराशास्त्रियों ने विरोध ही नही, बल्कि खुल्लमखुल्ला कड़ी आलोचना भी की। गवर्नर ने पीटर जेंगर नाम के एक समाचारपत्र के संपादक पर मुकदमा भी चलाया, जिसकी पैरवी ऐंड्यू हैमिल्टन ने की और उसको बेदाग छुड़ा लिया। स्वामियों के अधिकार के खिलाफ पेंसिलवेनिया, मेरीलैंड एवं

साउथ कैरोलिना की जनता ने आवाज उठायी और जार्जिया में भी एडवर्ड आग्लेथ्राप-जैसे उदार और लोकानुरागी व्यक्ति का भी विरोध किया।

जनता अपने जन्मजात अधिकारों के प्रति जागरूक होती जा रही थी तथा निरंकुशता एवं स्वेच्छावाद को सहन करने में अरूचि और अंसतोष ही प्रगट कर रही थी। शासन के प्रत्येक क्षेत्र पर अपना प्रभाव डालने के लिए वह आतुर हो रही थी। कि सत्य और असत्य के निर्णय का अधिकार न्यायाधीश के बजाय जूरी को प्राप्त हो, ऐसे में अंग्रेज जजों की अपेक्षा जूरियों का मान बढ़ गया और तीसरे प्रेस की स्वतंत्रता का बीजारोपण हो गया।

मातृभूमि से विदा होने के समय अप्रवासियों के समक्ष केवल दो ही लक्ष्य थेः 1. धार्मिक स्वतंत्रता और 2. सुखमय जीवन। अतः नई दुनिया में पहुंचने के बाद उनका समस्त कार्य-कलाप इन्हीं के चारों ओर चक्कर काटता रहा। इन उद्देश्यों की पूर्ति हुई कृषि, व्यवसाय और उद्योग से। कुछ प्राथमिक अप्रवासी तो धन की लिप्सा से भी आए, परंतु इन्हें शीघ्र ही निराश होना पड़ा। अधिकांश को तो भूमि को ही अपना जीवनाधार स्वीकार करना पड़ा और दो शताब्दियों के व्यतीत होने के पूर्व ही अमेरिका ही उनकी मातृभूमि बन गया। पहले चाहे वे अंग्रेज रहे हों या जर्मन, स्वीड रहे हों या ह्यूगोनाटस, आयरिश रहे हों या स्कॉच-अंततोगत्वा सभी अमेरिकी कहलाने लगे। इस आश्चर्यजनक परिवर्तन की पृष्ठभूमि में अनेक आदर्श एवं प्रवृत्तियां प्रत्यक्ष और प्रच्छन्न थीं।

नवागंतुकों को नवीन वातावरण में मानव तथा प्रकृति दोनों ही से जूझना पड़ा। अमेरिका कोई निर्जन एवं बियाबान देश न था। यहां रक्त वर्ण की जातियां आबाद थीं, जिनकी संस्कृति बहुत पुरानी थी, यद्यपि गौर वर्ण वालों ने इन्हें असभ्य और असंस्कृत ही कह कर संबोधित किया है। इन लोगों के प्रमुख दो ही धंधे थे। एक कृषि और दूसरा जंगली पशुओं का शिकार। ऐसे में आदिवासियों के छापों से सुरक्षा के लिए सीमाओं पर चौकियां बनायी गयी, देशरक्षक सैन्यों को नियुक्त किया गया और नवागंतुकों को सदैव ही सतर्क तथा जागृत रहना पड़ा।

यूरोप की अपेक्षा अमेरिका में श्रमिक वर्ग कहीं अधिक उत्पादन करता था। यहां उसकों कच्चा माल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध था और यहां की भूमि भी अक्षुण्ण थी। चूंकि मतदान पर संपत्ति का नियंत्रण लगा हुआ था, इस कारण श्रमिक वर्ग का शासन पर कोई प्रभाव न था। अतः, जितने भी कानून बने, वे स्वामियों द्वारा या उनके ही हित में बने। परंतु, इनका प्रभाव श्रमिकों की मजदूरी की दर पर अनिष्टकरन पड़ा। श्रमिक कई श्रेणियों के थे। मजदूरों की निरंतर मांग के कारण श्रमिकों की एक और श्रेणी भी बनी। ऐसे श्रमिकों को गौर वर्ण अनुबंधक कहा जाता था। ये ऐसे स्त्री-पुरूष होते थे, जो मातृभूमि से एक निश्चित समय तक मजदूरी करने का इकरारनामा लिख कर आते थे। ये भी दो प्रकार के होते थे, 1. स्वइच्छुक और 2. परइच्छुक। स्वइच्छुक वे थे, जो अपनी इच्छा से यात्रा-व्यय निपटाने के लिए अनुबंधनपत्र लिखते थे, जिसके भुगतान के बाद वे स्वतंत्र हो जाते थे। परइच्छुक में गणना थी दिवालियों, अपराधियों और अपहरित व्यक्तियों, की जिनकों ब्रिटिश सरकार निश्चित समय के लिए दंडित करके उपनिवेशों में श्रम के लिए भेजती थी। नीग्रो दास अपने स्वामी की भरसक सेवा करता, उनके सुख के साधन जुटाता और उनके लिए अथक परिश्रम भी करता था। फिर भी उसको असह्य कष्ट भुगतान पड़ता था। वह आजीवन दास ही बना रहता था और उसकी संतान पीढ़ी-दर-पीढ़ी परतंत्र रहती थी।

अमेरिकी समाज का ढाँचा मिश्रित तत्वों से बना और विकसित हुआ। जो अप्रवासी यहाँ आए, वे अपने-अपने देशों की परंपराएँ और आचार-विचार भी अपने साथ लाए। यह स्वाभाविक ही था। नवागंतुक नितांत गंवार और असभ्य ही न थे। उनके पास स्वतंत्र बुद्धि थी और अदम्य साहस भी। वे किसी हद तक रूढ़िवादी तो थे, परंतु उनके स्वभाव में लचीलापन भी था। नई दुनिया मे पहुँच कर उन्होंने नए वातावरण के निर्माण करने का अथक प्रयास किया और धैर्य से काम लिया। अमेरिकी समाज में यद्यपि वर्णभेद का तो अभाव ही था, परंतु श्रेणी-भेद अवश्य था।अधिकांश जन मध्य वर्ग में ही गिने जाते थे। छोटे-छोटे कृषक, दस्तकार, शिल्पी और सामान्य व्यापारी इसी श्रेणी से संबंधित थे। इसी गणना में भाड़े के मजदूर भी आ जाते थे। ये लोग अपने परिश्रम और मितव्ययिता द्वारा शीघ्र ही निम्न श्रेणी से उठकर मध्य वर्ग में मिल जाते थे और स्वतंत्र व्यक्ति के समस्त अधिकार प्राप्त कर लेते थे।

14.4 क्रांति का आरम्भ और परिणति

विश्व की महत्त्वपूर्ण घटनाओं में अमेरिका की विशाल राज्यक्रांति का एक अपना ही स्थान है। यूरोप में पहले पुनर्जागरण हुआ फिर धर्म-सुधार-आन्दोलन और तत्पश्चात् राष्ट्रीय भावना का विकास और उसका उत्थान। यदि अमेरिका के इतिहास का हम सिंहावलोकन करें, तो घटनाक्रम लगभग इसी प्रकार का दिखायी पड़ेगा, यद्यपि उसकी रूपरेखा कुछ हद तक विभिन्न थी। जबकि यूरोप की सभ्यता, संस्कृति और राजनीति की जड़े प्राचीन युग तक फैली हुई प्रतीत होती है, अमेरिका का इतिहास और उसकी पृष्ठभूमि अर्वाचीन काल तक ही सीमित दृष्टिगोचर होती है।

अमेरिका में उपनिवेश-स्थापन तथा उसके विस्तार के पीछे असंतोष, स्वधर्म और स्वतंत्रता की प्रेरणाएँ थीं तथा यही तत्त्व उसकी उन्नति को निरंतर ओज प्रदान करते रहे। जब अंततोगत्वा इंग्लैंड से संबंध-विच्छेद की नौबत आई, तब भी इन्हीं मौलिक तत्त्वों का प्राबल्य रहा। असंतोष के समाधान के प्रयास ने ही क्रांति का रूप धारण किया और जब क्रांति की समाप्ति हो गई, तभी देशवासियों ने दम लिया। परंतु, यह विचार कि यह क्रांति एकदम ही उबल पड़ी, न तो तर्कसंगत ही है और न इतिहास की मान्यताओं से ही मेल खाता है। इसके मूल कारणों की खोज उस देश के बहुमुखी विकास में ही करनी होगी।

14.4.1 क्रांति के कारणों की चर्चा

निरंकुश शासन के विरोध की प्रवृत्ति तो उपनिवेशों में शुरू से ही दृष्टिगोचर होती है। इसके दो मूल कारण थे। पहला यह कि अप्रवासी निरंकुशता से ही ऊब कर अपनी मातृभूमि से इतनी दूर स्वाधीनता का भोग करने आए थे। निरंकुशता चाहे धार्मिक रही हो, चाहे राजनीतिक, उसका परिणाम एक ही समान था। दूसरे यह कि विभिन्न देशों, जातियों और संप्रदायों के व्यक्ति जब एक साथ रहने के तत्पर हो गए, तो उनको यह बात पूर्णरूपेण स्पष्ट हो गई कि बिना समझौते के शांतिमय जीवन व्यतीत करना दुष्कर ही नहीं, वरन् असंभव है। समझौते का अर्थ था, अधिकारों की समानता। जब समान अधिकारों का शासन में परिणत करेन का अवसर आया, तब चुनाव के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय या साधन किसी को न सूझा। अतः, चुने हुए व्यक्ति ही अपने-अपने क्षेत्रों की सफलता से प्रतिनिधित्व कर सकते थे। वातावरण ने इस सिद्धान्त की संपुष्टि कर दी। क्रांतिकारी विचारों का प्रसार यूरोप मंे तो हो ही रहा था और वहाँ के सत्ताधारी, मुकुटधारी, पादरी, किसान, कुलीन एवं अन्य वर्ग अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार प्रभावित हो रहे थे और

विप्लव की तैयारियाँ कर रहे थे। विचार वायु के समान बहते हैं। इनके आवागमन में रूकावट नहीं पड़ती। अतः यूरोप के भूमि से वे अमेरिका आए और यहाँ उनका प्रचार विद्युत गति से हुआ। चूँकि इस दुनिया में समस्त अनुकूल साधन पर्यापत थे, इसलिए क्रांति की ज्वाला पहले यहीं भड़की।

संक्षेप में इन कारणों को दो भागों में बाँटा जा सकता है। एक के अन्तर्गत विचारों एवं सिद्धांतों का टकराव है दूसरे के अन्तर्गत वे परिस्थितियाँ आती है, जिनसे विवश होकर अप्रवासियों को विद्रोह का झंडा लहराना पड़ा। इससे यह न समझना चाहिए कि विचार और परिस्थिति पृथक-पृथक तत्त्व है, इसके विपरीत इनमें घनिष्ठ संबंध है। विचारों से परिस्थिति बनती है और परिस्थिति ही विचारों के मूल स्त्रोत होती है। इतिहास इस क्रम को एक अटूट चक्र मानता है और यह धारणा सही भी है।अप्रवासियों ने मातृभूमि के मोह को त्याग कर क्यों अमेरिका में आकर बस्तियाँ आबाद की, इसका विवरण तो ब्योरेवार दिया जा चुका है, अब इतना बता देना यथेष्ट होगा कि वे स्वतंत्र जीवन के इच्छुक थे और स्वाधीनता के पुजारी थे। परंतु, इसका यह अर्थ नहीं है कि वे सं ासारिक जीवन से विमुख होना चाहते थे या उसके प्रति उदासीन थे। उनका उद्देश्य था कल्याणकारी जीवन व्यतीत करना। अतः, जो रूकावटें उनके सामने इस उद्देश्य की पूर्ति में उत्पन्न हों, उनका उन्मूलन करना।

अमेरिका में घटनाक्रम दूसरा ही रहा, पर मौलिक प्रवृत्तियाँ वही थीं। केवल अंतर इतना ही था कि अमेरिका में अंग्रेजों को अपनी ही जाति वालों का मुकाबला करना पड़ा और भारत में अन्य जातियों का। एक जगह संघर्ष में उनको सफलता प्राप्त हुई और दूसरी जगह उन्हें मुँह की खानी पड़ी। इन विपरीत परिणामों की तह में कौन सी प्रवृत्तियाँ थीं, इसका समीक्षण यहाँ उचित नहीं प्रतीत होता है। परंतु इतना तो कहना ही पड़ेगा कि इस समय चाहे अमेरिका हो चाहे भारत, अंग्रेजी सरकार दोनो के प्रति एक ही नीति का पालन कर रही थी। क्यों ?

सप्तवर्षीय युद्ध इंगलैंड की राजनीतिक सत्ता केवल दृढ़ ही न हो गई, बल्कि प्रफुल्लित भी होने लगी। फ्रान्स परास्त हो गया और उसको अमेरिका तथा भारत में अपने उपनिवेशों से हाथ धोना पड़ा। उसके प्रभाव और प्रसार का भय समाप्त हो गया तथा सारे विश्व में इंगलैंड की नाविक शक्ति का बोलबाला हो गया। वस्तुतः वह अजेय-सी हो गई। उससे टक्कर लेने वाला कोई भी राष्ट्र न रह गया था। परंतु, इस स्वर्णचित्र में कुछ-कुछ काली और कष्टदायक रेखाएँ भी निहित थीं, जिनमें सबसे प्रमुख आर्थिक समस्या थी। गत युद्ध में जो धन और जन की हानि हुई थी, उसकी पूर्ति का प्रश्न अंग्रेज शासन-संचालकों के सामने विकराल रूप में प्रस्तुत हो रहा था। उसको बिना हल किए हुए देश का कल्याण एवं संपन्नता असंभव था।

सन् 1763 ई. तक तो फ्रान्स के भय के कारण ही इंगलैंड के राष्ट्रमंडल के सभी सदस्य, विशेषकर अमेरिकी उपनिवेश, कंधे-से-कंधा मिला कर चलने को तत्पर थे, परंतु इस भय के बाद हटते ही उपनिवेशों में अपने हानि-लाभ के ज्ञान का लहर तीव्रता से बहने लगी और अब उनको अपने एवं पराए का आभास होने लगा। पेरिस की संधि द्वारा इंगलैंड को कैनेडा तथा अलीगनी और मिसिसीपी के बीच का समस्त क्षेत्र प्राप्त हो गया। इस क्षेत्र में आदिवासी आबाद थे। अतः, इन पर नियंत्रण करनी थी, बल्कि उसका प्रयोग भी करना था। इधर अप्रवासियों की भूअधिकरण की तृष्णा

बड़े वेग से बढ़ रही थी। वे आदिवासियों का सर्वनाश करके उनकी भूमि को हड़प लेना चाहते थे। अतः, अंग्रेजों की नीति और अप्रवासियों के स्वार्थ में टकराव अनिवार्य हो गया।

उपनिवेशों की शासन-व्यवस्था भी दोषपूर्ण थी। वहाँ कार्यकारी विभाग अर्थात् गर्वनर और उसकी कार्यकारिणी समिति तो सम्राट के अंतर्गत थी, परंतु कानून-निर्माण और कर लगाने का अधिकार अप्रवासियों द्वारा चुने हुए विधायक सदनों के हाथ में था। ऐसी परिस्थिति में क्या किसी भी गर्वनर की हिम्मत हो सकती थी कि जनता के प्रतिनिधियों का विरोध कर सके ? कहने का तात्पर्य सदनों को अधिकार तो प्राप्त थे, लेकिन उनमें उत्तरदायित्व का अभाव था। अतः, विधायक सदनों की यह कि कार्यकारिणी पर उनका नियंत्रण हो जाए, स्वाभाविक ही थी। इस अधिकार को प्राप्त करने का उद्देश्य से ही अक्सर विधायक सदन गवर्नरों और जजों के वेतन की धनराशि की मांग को अस्वीकृत कर देते थे। यह रवैया अंग्रेजी सरकार को बुरा लगता था; क्योंकि इससे न केवल गवर्नरों की मानहानि होती थी, वरन्उनके अधिकार-प्रयोग पर बंधन भी लग जाता था। अतः, जज अथवा न्यायाधीश भी स्वतंत्रातापूर्वक अपना काम करने में शासित वर्ग-दोनों ही एक दूसरे से असंतुष्ट थे और उनके बीच तनाव रहता था। इसकी तह में जो प्रश्न था, वह यह कि अप्रवासियों को मातृभूमि के ही अनुरूप अपनी राजनीतिक स्वाधीनता संपूर्ण करने का अधिकार है या नहीं?

इस प्रश्न का उत्तर इस समय की अंग्रेजी शासन-व्यवस्था के विश्लेषण, से ही मिल सकता हैं वालपोल के पद त्यागने के पश्चात् पिट के अतिरिक्त कोई भी प्रभावशाली और चतुर प्रधानमंत्री न हुआ। शासन नीति की ध्वनि एवं व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन हो गया। वैधानिक सम्राट की परंपरा धीरे-धीरे क्षीण होने लगी और बौलिंगबुक का देशभक्त सम्राट का आदेश अपना प्रभाव डालने लगा। जार्ज तृतीय इसी आदर्श और उससे संबंधित विचारों से ओतप्रोत था।

लेकिन, जार्ज तृतीय के स्वभाव और उसकी कार्य-प्रणाली को ही अमेरिकी क्रांति का कारण मानना तर्कसंगत न होगा। उसकी उत्तरदायी थी अंग्रेजों की वाणिज्य-व्यवस्था और उनकी औपनिवेशिक नीति। समस्त अंग्रेजी जनता का यह दृढ़ विश्वास था कि जिस प्रकार बौद्धिक एवं सामाजिक परंपराओं में उपनिवेश इंग्लैण्ड के आधीन हैं, ठीक उसी प्रकार राजनीतिक एवं आर्थिक विषयों में भी उन्हें अपने को इंग्लैण्ड का आधीन समझना चाहिए। डॉ. सैमुअल जानसन ने ठीक ही कहा है कि ‘‘हम बछड़े को तुरन्त ही हल में नहीं जोत देते, बल्कि उसके बैल होने की प्रतीक्षा करते हैं।’’ पर, उपनिवेशरूपी बैल इतने प्रौढ़ हो चुके थे कि वे पराधीनता के भारत को बहुत समय तक सहन करने को तैयार न थे, वे अपनी ग्रीवा से जुवा हटा कर उसे दूर फेंक देना चाहते थे।

अधिकांश अप्रवासी अपनी निकटवर्ती भूमि को स्वयं ही उन्नत करना चाहते थ। वे अपने व्यवसाय और उद्योग का स्वयं ही प्रसार करना चाहते थे। इंगलैंड के हितों को प्रोन्नत करने की उनकी जरा भी चिंता न थी। और होनी भी क्यों? क्या उन्होंने अपने ही बाहूबल से उपनिवेशों की स्थापना नहीं की थी? क्या उन्होंने शासन-व्यवस्था का स्वयं ही निर्माण नहीं किया था? यह सही है कि इंगलैड के शासन ने उनको अनेक खतरों से बचाया था, परंतु इसकी कीमत

परतंत्रता न थी। अमेरिकी अप्रवासी 'पराधीन सुख सपनेउ नाही' की कहावत के तथ्य से पूर्णरूपेण परिचित हो चुके थे। वे स्वाधीनता के मूल्य को अच्छी तरह से समझने लगे थे।

अपने हितों के समर्थन में अमेरिकीयों के पास विचारों का एक विशाल पुंज था। ये विचार कानून-संबंधी, राजनीति-संबंधी और अर्थ-संबंधी थे। परंतु, आश्चर्यजनक बात तो यह है कि इन विचारों और सिद्धांतो का मूलस्त्रोत इंगलैड ही था और कुछ हद तक फ्रांस भी। लॉक ने अपने ग्रंथो की रचना इंगलैंड में ही की थी। यह संभव है कि सिद्धांतों के निर्माण अथवा संबोधन में अमेरिकी उपनिवेशों के 'प्रारंभिक समझौतों' का प्रभाव पड़ा हो। परंतु, इसमें संदेह नहीं कि लॉक रचित (Treatise of Government) का अध्ययन अमेरिका के लॉ स्कूलों में पूरी तरह से होता था। संक्षेप में यह कहना अनुचित न होगा कि अंग्रेज और फ्रांसीसी लेखकों की विचारधाराओं ने अमेरिका में एक विशेष प्रकार का उद्बोधन पैदा कर दिया था। जनता अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक हो सामने ग्रैंविल ने उससे यह प्रश्न किया, ''क्या तुम इस बात को तर्कसंगत समझते हो कि यह देश (इंगलैंड) तो अमेरिका का संरक्षण करें, और (अमेरिका) इस भार के किसी भाग का भी सहन न करे?'' फ्रैंकलिन का उत्तर संक्षिप्त ही था। उसने यह कहा कि ''बात ऐसी नहीं है, भूतपूर्व युद्ध के समय उपनिवेशों ने पच्चीस हजार सैनिक इकट्ठा किए, उनकों शस्त्र दिए और लाखों रुपया व्यय भी किया।'' इस पर किसी ने पूछा, ''क्या स्टैंप अधिनियम के संशोधन से अप्रवासियों को संतोष हो जाएगा?'' इसका उत्तर भी फ्रैंकलिन ने स्पष्ट ही दिया, ''कभी नहीं, वे इसको कभी भी स्वीकार न करेंगे।'' इस पर किसी ने यह कहा कि ''सैनिक बल से नियमों का पालन कराया जा सकता है।'' यह सुनते ही फ्रैंकलिन बोल उठा लक्ष्य विद्रोह न हों, परंतु उसका बीजारोपण तो हो ही जाएगा।''

कुछ ही दिन पश्चात् हाउस ऑफ कामंस के समक्ष स्टैंप अधिनियम के संशोधन का प्रस्ताव रखा गया। उसके प्रवर्तक ने जर्जरित व्यापार, ऋणग्रस्त डगमगाते हुए अंग्रेज व्यापारियों, मैंचेस्टर के बंद कारखानों, श्रमिकों की बेकारी, अत्याचार के प्रकोप तथा उपनिवेशों के संबंध-विच्छेद का उल्लेख किया। स्टैंप अधिनियम तो रद्द कर दिया गया, परंतु पार्लियामेंट ने अमेरिकीयों के इस दाबे को स्वीकार न किया कि उसको कर लगाने का अधिकार नहीं है। इस आशय को लेकर उसने डेक्लेटरी अधिनियम पारित किया, जिसके द्वारा यह घोषणा की गई कि उपनिवेश मुकुट और पार्लियामेंट के अधीन हैं, सम्राट और पार्लियामेंट को प्रतिबंध-संबंधी सब प्रकार के नियमों को पारित करने का अधिकार है और वे समस्त प्रस्ताव तथा कार्यवाहियाँ, जो इस अधिकार का निषेध करती हैं, अमान्य एवं अप्रमाण्य हैं। परंतु, यह लंबी-चौड़ी व्याख्या मनसमझौते से अधिक न साबित हुई। अंग्रेज सरकार की प्रतिष्ठा को एक कड़ा धक्का तो लग ही गया। जनता के आंदोलन के सामने उसे झुकना ही पड़ा।

इधर जब अमेरिका में निरस्तीकरण की सूचना का विज्ञापन हुआ, तब अप्रवासियों के हर्ष, उल्लास और गर्व का ठिकाना न रहा। गिरजाघरों में घंटे बजे, सम्राट के संमान में मदिरापान किया गया और व्यापार पूर्ववत् चलने लगा। इन लोगों ने डेक्लेटरी अधिनियम को कागजी प्रस्ताव से अधिक न समझा और न उसका कोई प्रभाव ही उनके विनोदपूर्ण हृदयों पर पड़ा। जनसमूह ने बार-बार ऊँचे स्वरों में जार्ज तृतीय का जयजयकार किया। परंतु, शीघ्र ही उन पर

बज्रपात हो गया; क्योंकि उनको यह सूचना मिली कि शक्कर का अधिनियम भी निरस्त कर दिया गया है, जिसके फलस्वरूप परिस्थिति वैसी ही हो गई, जैसी ग्रैंविल और टाउनशेंड की नीति के पूर्व थी।

स्टैंप अधिनियम के कटु अनुभव से लाभ न उठा कर उसने ताबड़तोड़ तीन नवीन अधिनियम पार्लियामेंट से पारित कराए। पहले अधिनियम द्वारा यह निश्चय हुआ (20 जून 1767 ई.) कि सीसे, शीशे पेंट, चाय और अन्य कई वस्तुओं पर, जिनका आयात उपनिवेशों में होता था, चुंगी लगायी जाए। यदि पार्लियामेंट अपने अधिकार और सत्तासमर्थन में केवल चुंगी लगा कर ही संतोष कर लेती, तो संभव था कि टाउनशेंड के अधिनियमों की कोई चर्चा भी न होती। परंतु, चुप न रह कर उसने नियमपालन हेतु एक कठोर व्यवस्था की जो योजना की। चुंगी के अधिकारियों को यह स्पष्ट आदेश दिया कि जिस तरह से भी हो तस्कर-व्यापार की। चुंगी के अधिकारियों को यह स्पष्ट आदेश दिया कि जिस तरह से भी तरस्कर-व्यापार रोक दें। 29 जून, सन् 1767 ई. के राजस्व अधिनियम द्वारा उपनिवेशों की उच्च अदालतों को यह अधिकार प्रदान किया गया कि चुंगी अधिकारियों को सहायता प्रादेश दें, जिनके आधार पर वे किसी भी मकान, गोदाम, दूकान खत्ती या उपनिवेशों में स्थित अन्य स्थानों में प्रवेश कर सकें और तरस्कर अथवा निषिद्ध माल को तलाशी ले कर जब्त कर लें। इससे अधिक व्याकुल और अपमानित करने का क्या और कोई भी उपाय हो सकता था? कानून के पुतले घरों में घुस कर कागजों की जाँच-पड़ताल करें और तलाशी लें, क्या इसको अप्रवासी चुपचाप सहन कर सकते थे? इस प्रकार विरोधी की अग्नि को प्रज्जवलित करने के समस्त कारण एकत्र हो चुके थे, केवल चिनगारी की ही देर थी।

एक अन्य अधिनियम द्वारा टाउनशेंड ने अमेरिका में चुंगी अधिकारियों का एक आयोग संगठित किया, जिससे यह आशा की जाती थी कि वह इंगलैंड और उपनिवेशों के पारस्परिक व्यापार को उन्नत करेगा और व्यापरिक अधिनियमों के प्रवर्त्तन में सहायता देगा। इतना ही नहीं, बल्कि पार्लियामेंट ने इससेभी अधिक एक जनप्रिय अधिनियम जून, 1767 ई. में पारित किया। इसके द्वारा न्यायार्क की विधायक सभा को इस कारण निलंबित कर दिया गया कि वह अंग्रेज सैनिकों के आवास का संतोषजनक प्रबंध नहीं कर पाया था। अप्रवासियों का यह सही अनुमान था कि इस प्रकार की व्यवस्था से उनकी स्वाधीनता मूल तत्वों पर कुठाराघात होगा। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि उपनिवेशों में विधायक सभाओं का वही स्थान हो, जो इंगलैंड में पार्लियामेंट का है। अतः, यदि एक विधायक सभा को निलंबित किया जा सकता है, तो अन्य संस्थाओं को भी निलंबित या भंग किया जा सकता है।

चुंगी अधिनियम का सबसे अधिक भार व्यापारी वर्ग पर पड़ा, अतः व्यापारियों ने ही इसका विरोध करने की योजनाओं में प्रमुख भाग लिया। मुख्य नगरों के व्यापारियों और कुछ दक्षिण क्षेत्र के प्लांटर्स ने आपस में मिलकर यह समझौता कर लिया कि जब तक आपत्तिजनक अधिनियमों का निरस्तीकरण नहीं होता, वे अंग्रेजी वस्तुओं का देश में आयात बंद रखेंगे। इस बहिष्कार ने अंग्रेज व्यापारियों के होश ठिकाने कर दिए। न्यू इंगलैंड एवं मध्यवर्ती उपनिवेशों में अंग्रेजी माल की आयात एवं खपत में बहुत कमी हो गई। इंगलैंड में शोर मचने लगा और यह माँग उठी कि जो अधिनियम झगड़े के स्त्रोत हैं, उनको निरस्त कर दिया जाए।

मैसाचूसेट्स में तो असंतोष इतना तीव्र हो गया कि अंग्रेजी सरकार ने हेलिफाक्स से दो रेजीमेंटों को हटाकर बास्टन भेज दिया। इससे नगरवासियों का आक्रोश और भी बढ़ गया और नौबत यहाँ तक पहुँची कि एक दिन (5 मार्च, 1770) सात सैनिकों और नगरवासियों के बीच झगड़ा हो गया। इसमें चार नागरिक मारे गए। इस घटना को 'बोस्टन हत्याकांड' का नाम दे कर जनता के जोश को और भड़काया गया। अन्य उपनिवेशों में इसका विवरण नमक-मिर्च लगाकर भेजागया। वहाँ भी अंग्रेजों के प्रति घृणा की भावना उबल पड़ी

इस अधिनियम के संशोधन का तात्कालिक परिणाम यह तो आवश्यक हुआ कि बहिष्कार की बाढ़ मंद पड़ गई, परंतु उसके स्थान पर उपनिवेशों में एक नई समस्या उत्पन्न हो गई। अब अनुदारवादी व्यापारियों और कुलनी वर्ग एवं उग्र विचार वाले नेताओं में मतभेद पैदा हो गया। मैसाचूसेट्स में तो जनता और अनुदारवादी कुलीन वर्ग में कुछ समय से तनाव चल ही रहा था, मातृभूमि में तनाव से इसको और भी बल मिला। कुलीनों को यह भय होने लगा कि यदि आंदोलन ने विहंगम रूप धारण कर लिया और हिंसा की भावना उबल पड़ी, तो उनके विशिष्ट अधिकार समाप्त हो जाएँगे। यह भय निराधार भी न था; क्योंकि आंदोलन मंद तो हो गया था, परंतु उसका अंत न हो पाया था।

जेम्स ओटिस का स्थान सैमुअल ऐडम्स ने लिया। वह उग्र दल को नेता हो गया। उसमें साहस था और कुशाग्र बुद्धि भी थी। उसकी वाक्य-शैली सुस्पष्ट और निष्कपट थी। उसके लेख विश्वासप्रद होते थे और उसके भाषण प्रभावयुक्त। वह इस कारण भी जनप्रिय हो गया कि हर बात में जनता का ही पक्ष लेता था। इसके अतिरिक्त उसको एक सबल राजनीतिक दल का सहयोग भी प्राप्त था। ड्यूटी अधिनियम के संशोधन के पश्चात् भी उसके सम्राज्यवादी सरकार और उसके तथाकथित अत्याचारों के विरूद्ध आंदोलन जारी रखा। उसने चालीस अंग्रेजविरोधी लेख छापे। इस प्रकार वह जनता की रोषग्नि को तब तक दहकता ही रहा, जब तक अंग्रेज सरकार की भारी भूल ने उसे प्रज्जवलित न कर दिया। बास्टन टी पार्टी के पश्चात् तो अन्य उपनिवेशों ने भी अपनी विधायक सभाओं द्वारा पारस्परिक संबंध स्थापित कर लिए। इस प्रकार सामूहिक सहयोग की नींव पड़ गई। जब वास्टन के राज्यपाल को इस गश्ती चिट्ठी का पता चला, तो उसने विधायक सभा से उसे वापस लेने का अनुरोध किया। इनकार करने पर सभा को भंग कर दिया गया। इसी प्रकार जब मेरीलैंड, जार्जिया और साउथ कैरोलीना की विधायक सभाओं ने गश्ती चिट्ठी का समर्थन कर दिया, तो उनको भी भंग कर दिया गया।

वास्टन का हत्याकाण्ड ही उपद्रव की ज्वाला को भड़काने हेतु क्या कम था। विधायक सभाओं के विलयन से तो न्यू हैम्पशायर से जार्जिया तक घोर असंतोष की लहर प्रवाहित हो गई। हत्याकांड के संबंध में वास्टन की अदालत में मुकदमा पेश हुआ। ऐडम्स और जोसिया क्विनिसी ने जनता की ओर से पैरवी की। वकील की हैसियत से उसने जूरी से यह निवेदन किया कि संगीन-से-संगीन जुर्म के लिए भी अपराधी न्याय का अधिकारी होता हैं ऐडम्स ने जूरी को संबोधित करते हुए यह कहा कि जब सैनिकों को घने आबाद नगर में दो भीड़ों का मुकाबला करना पड़ता है, तो उसमें से एक को रोकना ही उनका कर्तव्य हो जाता हैं ऐसे कर्त्तव्यपालन के दौरान किसी दुर्घटना का होना आश्चर्यजनक नहीं। इस तर्क के बाद भी जब केवल दौ सैनिकों को हलकी हीं सी सजा मिली, तब 'असफल न्याय' का नारा उठने लगा। इसके उपरांत नार्थ कैरोलीना के कुछ नागरिकों ने गवर्नर के व्यवहार से क्रुद्ध होकर उसकी आज्ञा का उल्लंघन करते हुए

बलवा कर दिया। उनमें से बहुत से तो मारे गए और तीन पकड़े गए। इनको फाँसी की सजा दी गई। थोड़े ही समय बाद स्थानीय नागरिक सिपाहियों और राजकीय सैनिकों में अलामेनक नदी के समीप घमासान संघर्ष हुआ।

इधर अन्य उपनिवेशों में तो चाय अधिनियम का विरोध सामान्य रूप से हो ही रहा था, परंतु मैसाचूसेट्स में इसने विकराल रूप धारण किया। बास्टन में कंपनी के जिन अभिकर्ताओं ने पद त्यागने से इंकार कर दिया, उनमें दो जनप्रिय गवर्नर हचिंसन के पुत्र थे और एक भतीजा था, इस कारण गवर्नर जहाजों को वापस जाने के लिए प्रमाण-पत्र देने में आनाकानी कर रहा था। संभावना यह थी कि जहाजों पर से माल उतार कर बेच लिया जाएगा। इसको रोकने के लिए ओल्ड साउथ चर्च में दो बैठकें हुई, जिनमें ऐडम्स ने प्रमुख भाग लिया। दूसरी बैठक के बाद (दिसंबर, सन् 1771 ई0) पचास-साठ व्यक्तियों ने आदिवासियों का भेष धारण करके जहाजों पर धावा कर दिया और चाय को समुद्र में फेंक दिया। जब यह 'बास्टन चाय पार्टी' चल रही थी, जनता का एक बड़ा समूह चुपचाप तमाशा देख रहा था और इस प्रकार वह इस कार्य का मूक समर्थन कर रहा था। अपराधियों को दंडित करने के लिए न तो प्रांतीय और न नागरिक कर्मचारियों ने इन्हीं-सी भी उंगली उठायी।

अन्य उपनिवेशों के उग्रवादी तो बास्टन के जनों के निर्भीक कृत्यों से प्रसन्न थे, परंतु फ्रैंकलिन के समान कुछ ऐसे नरमपंथी भी थे, जो ऐसी हिंसात्मक प्रवृत्ति से दुःखी हो रहे थे। निजी संपत्ति के विनास को देखकर इंलैंउ में जनता को रोष का ठिकाना ही न रहा। अतः, सम्राट जार्ज का यह विश्वास दृढत्र हो गया कि अमेरिकीयों के प्रति नरम नीति से काम न चलेगा। उपनिवेशों की उदंडता को तोड़ने और उनको आज्ञाकारी बनाने के लक्ष्य से पार्लियामेंट ने पाँच निष्ठुर अधिनियम पारित किए, जिनको सामूहिक रूप से अप्रवासियों ने 'दुस्सह अधिनियम' नाम दिया हैं इनका उद्देश्य था- अमेरिका में व्यग्रता का दमन प्रथम बिल के अनुसार बास्टन बंदरगाह का समस्त बाह्य व्यापार बंद कर दिया गया। द्वितीय अर्थात् मैसाचुसेट्स शासन अधिनियम द्वारा यह निश्चित हुआ कि वहाँ के काउंसिलर्स अर्थात् परामर्शदाताओं को सम्राट ही नियुक्त करेगा, गवर्नर न्यायाधीशों को नामांकित करेगा और गवर्नर की बिना अनुमति के विधान सभा की कोई भी बैठक (सिवाय कुछ अधिकारियों के चुनाव के लिए) नहीं हो सकेगी। तृतीय के अनुसार राजकीय कम्रचारियों को यह आदेश दिया गया कि वे हत्या-संबंधी सारे मुकदमें या तो इंगलैंड या अन्य उपनिवेशों में न्यायहेतु भेज दें। चौथे द्वारा सैनिकों की आवास-प्रथा को वैधानिक करार दिया गया। पाँचवें अर्थात् क्वीबेक अधिनियम के अनुसार कैनेडा में रहने वाले कैंथोलिकों को सहिष्णुता प्रदान की गई। और क्वीबेक की सीमा आहियो नदी तक बढ़ा दी गई। इस पश्चिमी क्षेत्र के शासन-प्रबंध हेतु एक वायसराय की नियुक्ति की गई।

दुस्सह्य अधिनियम पार्लियामेंट में आश्चर्यजनक द्रुतगति से पारित हो गए। इसका यह अर्थ नहीं कि सतर्क और चतुर आलोचकों ने उनका विरोध नहीं किया। बर्क ने धारा प्रवाह भाषणों में बास्टन पोर्ट का खंडन किया। उसने यह कहा कि इसका अर्थ है अपराधियों और निर्दोषों - दोनों को एक ही साथ ताड़ित करना। यह कहाँ का न्याय है? भला इससे झगड़ा बढ़ेगा या शांति स्थापित होगी। ? मगर, उसकी बात को कौन सुनने वाला था ? बिना मतगणना के ही दोनों सदनों में बिल पास हो गया। मंत्रिमंडल की अवसन्न् जी हुई। लार्ड मैंसफील्ड ने आवेश में आकर यह कह डाला, ''जो बास्टन में हुआ वह स्पष्टतः देशद्रोह है, जिसका कारण है हमारी नरमी और हममें दूरदर्शिता का अभाव।''

मैंसफील्ड जैसे सुविख्यात विधिकार के शब्दों की कौन अवहेलना कर सकता था। पार्लियामेंट और सम्राट दोनों ही दंडात्मक कार्यक्रम पर तुले हुए थे।

उपनिवेशों में इन नवीन कानूनों ने एक सनसनी पैदा कर दी। अमेरीकी प्रोटेस्टेंटों ने तो क्वीबेक अधिनियम की बहुत ही कड़ी आलोचना की। परंतु, इस आलोचना के पीछे दो स्वार्थ भी थे- एक आर्थिक और दूसरा धार्मिक। आर्थिक इसलिए कि क्वीबेक के सीमाप्रसार से मैसाचूसेट्स, कनेक्टीकट और वर्जीनिया के पश्चिमी क्षेत्र की भूमि पर अधिकार समाप्त होने की संभावना थी, जबकि आज्ञापत्रों के अनुसार उनका इस भूमि पर अधिकार था। धार्मिक आपत्ति की तह में अप्रवासियों की शासन-संबंधी आपत्तियाँ भी थीं। उनका यह कहना था कि कैथोलिकों की सहिष्णुता में राजनीतिक चाल घुसी हुई है। जब इंगलैंड और आयरलैंड में ही उनको सहिष्णुता प्राप्त नहीं, तो फिर अमेरिका में क्यों प्रदान की जा रही है? क्या इसका एक मात्र यह लक्ष्य नहीं कि फ्रांसीसियों को दी गई है अर्थात् उनके मुकदमें में फैसले उन्हीं के देश के कानून के अनुसार होंगे, क्या इससे अंग्रेजी न्याय-प्रणाली का, जिसका उपनिवेशों में प्रचलन था, शंडन नहीं होता ? असली कारण यह था कि फ्रांसीसी तो निरंकुश शासन के ही अभ्यस्त थे। चूँकि कैथोलिक पदारियों को दशांश वसूल करने की भी छूट दी गई थी, इसलिए जनता का आक्रोश बढ़ा और पोप के आधिपत्य का बवंडर खड़ा हो गया। गर्वनर मारिस ने कहा कि ''यद्यपि भेड़ें सीधी तो हैं, परंतु उनको पूर्ववत् प्रताड़ित नहीं किया जा सकता।'' इस प्रकार सत्ता की मतांधता से अमेरिकी विप्लव की उत्पत्ति हुई।

14.4.2 अमेरिकी क्रांति के घटनाचक्र व परिणाम

भावी को रोकना मानव-वश की बात नहीं। वह परिस्थितियों के प्रवाह में बहने लगता है और उसको उचित एवं अनुचित का विवेक नहीं भासता। अंग्रेज जाति तो सदा से ही लुढ़कती-पुढ़कती रही है। उसके समक्ष विपत्ति का समय भी आया और गौरव एवं महानता का भी। यह दैवी कृपा है कि इस जाति का धैर्य और साहस कभी भी क्षीण नहीं हुआ और इसने भीषण संग्रामों तथा संघर्षों को स्वाभाविक ढंग से ही झेल डाला। जहां तक अमेरिकी क्रांति का प्रश्न है, इसमें संदेह नहीं कि अंग्रेज शासक वर्ग ने अपनी ही पद्धतियों और परम्पराओं का उल्लंघन किया। ये लोग इस बात को भूल गये थे कि जिसे प्रकार स्वाधीनता में उनका अडिग विश्वास है, ठीक उसी प्रकार अन्य जन समूह या जपति का भी हो सकता है। यह भूल उन्होंने अमेरिका के प्रति तो की ही, उसको उन्होंने पुनः भारत के संबंध में भी दोहराया। परिणाम दोनों जगह एक-से ही हुए। किसी ने यह सच ही कहा कि ''अंग्रेज अनुभवों के गुलाम नहीं स्वार्थ के पुजारी हैं।''अमेरिका में जो प्रवत्तियां और कामनाएं जागृत हो चुकी थीं। उनको अवहेलना करना किसी राष्ट्र के लिए चाहे वह कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, आसान न था।

14.4.2.1 प्रथम महाद्वीपीय कांग्रेस

इंगलैंड की सरकार मदांध हो रही थी। वह अमेरिकीयों पर अपनी स्वार्थपूर्ण नीतियों को लादना चाहती थी। अमेरिकी इसका प्रत्युत्तर देने को कमर कस चुके थे। अतः जब अमेरिका में 'असहनीय अधिनियमों' के पारित होने की सूचना पहुँची, तब वहां के लोगों को यह स्पष्ट हो गया कि पार्लियामेंट उनको कितने कड़वे घूंट पिलाना चाहती है। परंतु, प्रत्येक उपनिवेश में ऐसे व्यक्ति भी मौजूद थे, जो विपदा का मुकाबला दृढ़ता से करने को तैयार थे। अतः शीघ्र ही

मैसाचूसेट्स का प्रश्न तेरहों उपनिवेशें का संयुक्त प्रश्न बन गया। अभी तक तो अंग्रेजी नीति का विरोध स्थानीय और अनियमित ही था, परंतु अब उसने राष्ट्रीय रूप धारण कर लिया। वर्जीनिया के आमंत्रण के उत्तर में जार्जिा को छोड़कर अन्य सभी उपनिवेशों ने अपने-अपने प्रतिनिधि भेजे। इनमें से कुछ का चुनाव तो विधायक सभाओं द्वारा हुआ था, परंतु अधिकांश तथाकथित (प्रसभाओं) या अनियमित संस्थाओं द्वारा ही चुनकर आये थे। इन सबकी संख्या छप्पन थी और इनमें थे- अमेरिका के योग्यतम राज्यमर्मज्ञ। इस सम्मेलन का अधिवेशन, जिसकों प्रथम महाद्वीपीय कहा जाता है, सितंबर, सन् 1774 ई. में फिलीडेलफिया नगर में हुआ। कांग्रेस का कोई भी वैधानिक आधार न था, इसलिए वह केवल या तो परामर्श दे सकती थी या सिफारिशें कर सकती थी। इसमें दो दल सुस्पष्ट थे: एक उग्रवादियों का और दूसरा अनुदार पंथियों का। पहले दल का बहुमत था, अतः उसके नेता वर्जीनिया और मैसाचूसेट्स के पक्ष में थे। उन्होंने अंग्रेजों के अग्राक्रमण के विरोध का खुलकर समर्थन किया।

परंतु अनुदारवादी दल एक ऐसे समझौते के पक्ष में था, जिसके द्वारा अमेरिकी अधिकारियों की सुरक्षा की संभावना हो सकती थी। अतः पेन्सिलवेनिया के प्रतिनिधि जोसेफ गैलोवे ने महाद्वीपीय उपनिवेशों के संघ की एक योजना प्रस्तुत की। यह योजना पहले फ्रैंकलिन द्वारा अलबानी कांग्रेस में भी प्रस्तुत की जा चुकी थी। इसके अनुसार संघ का संचालन सम्राट द्वारा नियुक्त अध्यक्ष करता है। योजना में ग्रैंड काउंसिल की भी व्यवस्था थी। इसके सदस्य उपनिवेशों की विधायक सभाओं द्वारा चुनकर आते। आगे के संबंधित प्रस्तावों में अप्रवासियों के अधिकारों की व्याख्या करते हुए यह कहा गया कि ''जीवन-स्वाधीनता एवं संपत्ति तो अंग्रेजी संविधान के सिद्धांतों, प्रकृति के अपरिवर्तनशील नियमों तथा आज्ञापत्रों के अंतर्गत तो सुरक्षित हैं ही। पार्लियामेंट के टैक्स लगाने के प्राधिकार को मान लिया जाए, वह भी इस शर्त पर कि इस प्रकार के नियंत्रण में बाह्य अथवा आंतरिक कटुता की भावना न हो।''

14.4.2.2 महाद्वीपीय संस्था

कांग्रेस का दूसरा महत्त्वपूर्ण काम था, महाद्वीपीय संस्था की स्थपना। यह एक प्रकार का संपर्क-निषेध समझौता था, जिस पर सदस्यों ने अपने और अपने निर्वाचकों की ओर से हस्ताक्षर किये। इसमें यह सत्यनिष्ठ शपथ ली गई कि 1 दिसम्बर, सन् 1774 ई. के बाद से वे किसी भी माल का आयात ब्रिटिश द्वीपो और आयरलैण्ड से न होने देंगे और 10 सितंबर, 1775 ई. के बाद से चावल के सिवा अपने यहां की कोई भी उत्पादित वस्तु न तो इंग्लैंड ही और न ब्रिटिश वेस्ट इंडीज को जाने देंगे। यदि इस बीच शिकायतों का समाधान हो गया, तो इन प्रस्तावों का प्रवर्तन न होगा। अतः सब जगह स्थानीय कमेटियों का संगठन हो गया और चूँकि जनमत इस योजना के पक्ष में थाए इसलिए उसके प्रवर्तन में अधिक रूकावट न पड़ी। यदि कहीं इसका विरोध भी हुआ, तो वहां जनसमुदाय ने कोलतार या परों से बलाचरण किया। मगर, जार्जिया ने इन प्रस्तावों को स्वीकार न किया।

14.4.2.3 घटनाचक्र

मैसाचुसेट्स में परिस्थिति गंभीर होती जा रही थी और विप्लव के लिए तैयारियां होने लगी थीं। सैमुअल ऐडम्स और अन्य ओजस्वी नेता जनता को इंगलैंड के खिलाफ भड़का रहे थे। राजकीय गवर्नर जनरल गेज की बात अब कोई भी न सुनता था। पर, एक क्रांतिकारी शासन का संगठन हो गया और सैनिक भी इक्कट्ठे होने लगे थे। जब गेज

ने यह सुना कि विद्रोही ब्रास्टन से 18 मील दूर कांकार्ड नाम के ग्राम में सैनिक सामान जुटा रहे हैं, जो उसने इस सामान को हस्तगत करने हेतु सिपाहियों की एक छोटी सी टुकड़ी भेजा। गेज के लाल वर्दी से लैस सैनिक लेक्सिंगटन पहुंच गए। यहां कुछ सशस्त्र अप्रवासी उनका रास्ता रोकने को खड़े थे। जब अंग्रेज कमांडर ने इन लोगों से हथियार डाल देने को कहा, तो इन्होंने साफ इनकार कर दिया। गोली चली (यह नहीं मालूम कि पहले किसने चलायी) और दोनों दल एक दूसरे से भिड़ गए। इस संग्राम में मैसाचूसेट्स के दो सिपाही काम आए और दो घायल हुए। तदोपरांत अंग्रेजी सेना कूच करती हुई कांकार्ड तक पहुँच गई और जो सामान इकट्ठा था, उसको विध्वस्त कर दिया। जब लेक्सिगटन की घटना की सूचना जनता में फैली, तब चारों ओर से वालंटियर दौड़ पड़े। उनका यह विचार था कि जब अंग्रेजी सेना लौट रही होगी, तब वे उस पर टूट पड़ेंगे और हुआ भी ऐसा ही। कांकाड्र से वास्टन तक लाल कोट वालों को पेड़ों की ओर से और पहाड़ियों के पिछवाड़े से निरंतर निकलती हुई गोलियों की बौछार के बीच से निकलना पड़ा। रक्तपात की उत्तेजक सूचना वेग से चारों ओर फैल गई। देखते-ही-देखते न्यू इंगलैंड के कोने-कोने से बास्टन में अंग्रेजी सेना के घेराव के उद्देश्य से सशस्त्र सैनिक आने लगे। अन्य उपनिवेशों में भी विद्रोह की अग्नि भड़क उठी। वहां राष्ट्रभक्ति के प्रस्ताव पास हुए और युद्ध की तैयारियां होने लगीं।

14.4.2.4 महाद्वीपीय कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन

लेक्सिंगटन और कांकाड्र की घटनाओं के तीन सप्ताह बाद 10 मई, सन् 1775 ई. को फिलीडेलफिया में कोंटिनेंटल कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन हुआ। इस अवसर पर तेरहों उपनिवेशों के प्रतिनिधि उपस्थित थे, य़द्यपि इनमें से कुछ ऐसे भी थे, जिनको कि एक अल्प समूह ने ही चुना था। गर्वनरों को उनकी सरकार ने यह आदेश दिया था कि वे प्रतिनिधियों के चुनाव में अड़चनें डालें और उसका काम नियमवत् न होने दें, अतः अधिकांश प्रतिनिधि क्रांतिकारी कनवेंशंस द्वारा ही चुन कर आए थे। आगे चलकर जब प्रांतीय शासन स्वव्यवस्थित हो गए, तब कांग्रेस के सदस्य विधायक सभाओं द्वारा ही चुनकर आने लगे। कांग्रेस का यह अधिवेशन 1781 ई. तक चलता रहा अर्थात् जब तक (संघ-निर्माण के सिद्धांत) कार्यान्वित न हुए। इस अवधि में सारे संघीय कार्यकलाप उसी के अंतर्गत रहे।

14.4.2.5 दल और संघीय सेना

प्रतिनिधियों में उग्र दल का बहुमत था, यद्यपि रूढ़िवादियों ने भी पेंसिलबेनिया के जान डिकेंसन के नेतृत्व में बहुत सामर्थ्य का प्रदर्शन किया। इन्हीं के प्रभाव के कारण मातृभूमि से तुरंत संबंध-विच्छेद संयोगिक घटना रूकी रही और इसके स्थान पर सम्राट के प्रति राज्यभक्ति का शिष्ट प्रस्ताव भी पास हुआ। फिर भी उग्रवादी कुछ ऐसे कार्यकलापों में सफल हुए, जिनका कि अर्थ था, इंगलैंड से युद्ध की घोषणा। जो सेना बास्टन में इकट्ठी हुई थी, उसको कांग्रेस ने अपने अधीन कर लिया। इसकी संघीय सेना का रूप दे दिया गया। अन्य उपनिवेशों से भर्ती करके इसको बढ़ासने की भी योजना बनायी गयी। जान ऐडम्स के प्रस्ताव के अनुसार जार्ज वाशिंगटन को संघीय सेना का प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया।

वाशिंगटन के चुनाव का कुछ हद तक यह लक्ष्य था कि मैसाचुसेट्स के नेताओं को दक्षिणी उपनिवेशों का सहयोग प्राप्त हो जाए। परंतु, इसमें भी संदेह नहीं कि ऐसी नाजुक परिस्थिति को संभालने के लिए उसके समान अमेरिका में कोई

भी अन्य व्यक्ति न था। यह भी सही है कि युद्धकला में अधीनस्थ अफसरों की अपेक्षा उसका अनुभव बहुत ही कम था, परंतु उसके नैतिक गुण इस दोष की अवसन्न पूर्ति कर देते थे। उसने कई मोर्चे पर जीत हासिल की।

कुल मिला कर अमरिकी स्वतंत्रता संग्राम की शानदार उपलब्धि अंततः संधियों से निकली। 3 सितम्बर 1783 शांति-संधि हुआ जिसे पेरिस संधि के नाम से जाना जात है। कांग्रेस ने इसे सर्वसंमति से पारित किया। संधि का सबसे सुखद परिणाम यह निकला कि उपनिवेशों को स्वतंत्रता मिल गई और स्वतंत्र संयुक्त राज्य अमेरिका जन्म हुआ। फ्रांस के आंसू पोछने के उद्देश्य से कमिश्नरों की कार्य-प्रणाली की आलोचना भी की। इस संधि से संयुक्त राज्य को न केवल सैनिक सफलता ही प्राप्त हुई, बल्कि राजनीतिक महानता भी। फ्रैंकलिन, जे और ऐडम्स ने यह प्रमाणित कर दिया कि राजनीतिक प्रज्ञान में वे यूरोपीय नीतिमर्मज्ञों से किसी भी हालत में कम नहीं। ये अपनी चालों द्वारा ही फ्रांस, स्पेन और इंगलैंड-जैसे देशों को मात दे सके। 1776 की क्रांति की परिणति यही थी। अमेरिका को अपना उज्ज्वल भविष्य स्पष्ट तो दीखने लगा, परंतु अभी एक लंबा रास्ता तय करना था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की समस्याएं सुलझनी थीं लगभग देश की वही दशा थी, जो भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हो रही है। अमेरिकी क्रांति पूरे मानवता और सहसा पूरे संसार के लिए प्रेरणा बना जिसका आधार स्वतंत्रता एवं गणतंत्र था।

14.5 सारांश

अमेरिका में अप्रवासियों का दृढ़ संकल्प ही था कि जिसने उन्हें पुरानी दुनिया को त्याग कर नई दुनिया में बसने की प्रेरणा प्रदान की थी। एक अपरिचित महाद्वीप में एक नए समाज, नई मान्यताएं तथा जीवन-सुरक्षा के साधनों को जुटाना केवल असंतोष और पृथकता की भावना के ही बल पर नहीं टिक सकता है। इस क्रिया को परिपूर्ण करने के लिए सबल प्रज्ञा, हस्तकौशल, निर्माण-चातुर्य अर्थात् एक उच्च स्तर की रचनात्मक योग्यता की आवश्यकता होती है। अप्रवासियों ने इन गुणों को केसे विकसित किया तथा उनसे क्या लाभ उठाया, इसका वृतांत रोचक ही नहीं, बल्कि उसका अध्ययन भी उतना ही आवश्यक है; क्योंकि उसके बिना जाने विशाल क्रांति का मूल्यांकन नहीं हो सकता। अप्रवासियों के जीवन के विकास के तीन पहलू हैं-- 1. आर्थिक, 2. राजनीतिक और 3. सामाजिक। इन तीनों में घनिष्ठ पारस्परिक संबंध रहा है।

यदि विश्व की समस्त क्रांतियों का विश्लेषण किया जाए, तो हम इस तथ्य पर पहुँचेंगे कि उनका मूल कारण निरंकुशता है। निरंकुशता औपचारिक एवं व्यावहारिक स्थिति में अनेक रूप धारण कर लेती है। कभी तो एकाधिकार पर बल होता है, तो कभी साम्राज्यवाद पर। वाणिज्यवाद आधुनिक युग मे साम्राज्यवाद की एक प्रमुख शाखा और सहायक बन गया है। वाणिज्यवाद आधुनिक युग में साम्राज्यवाद की एक प्रमुख शाखा और सहायक बन गया है। वाणिज्यवाद की सफलता के लिए राजनैतिक सत्ता परमावश्यक होती है। अंग्रेज जाति ने तो अपना साम्राज्य वाणिज्य की ही आड़ में स्थापित और प्रसारित किया। द्वन्द्व ने संघर्ष को जन्म दिया। अंततः अमेरिकी विप्लव 'क्रांति' का जन्म हुआ कालांतर में इसी विप्लव के गर्भ से स्वतंत्र संयुक्त राज्य अमेरिका जन्म हुआ।

14.6 शब्दावली

अन्वेषण किसी चीज की खोज

द्वन्द्व विलगाव ध्मतभेद

स्वतंत्रता आजादी

औपनिवेशिक उपनिवेश के संदर्भ में

अप्रवासी जिनका मूल निवास अन्यत्र हो

मातृभूमि मूल निवास और जन्म स्थान

नवागंतुक जिनका कहीं नवीन आगमन हुआ हो

नीतिमर्मज्ञ नीति के जानकार

साम्राज्यवाद किसी भूभाग/देश पर किसी अन्य देश का राजनीतिक अधिग्रहण

वाणिज्यवाद राज्य द्वारा व्यापार -वाणिज्य पर नियंत्रण-निगमन

14.7 अभ्यास के प्रश्न

1. प्रश्न- क्रांति के पूर्व अमेरिकी समाज के संदर्भ में लिखिए।

2. प्रश्न- क्रांति के पूर्व अमेरिका में औपनिवेशिक प्रतिस्पर्धा का विवरण दीजिए।

3. प्रश्न- अमेरिका में शोषणकारी नीतियों की चर्चा कीजिए।

4. प्रश्न- अमेरिकी क्रांतिकारी घटनाक्रम का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

14.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची/उपयोगी पाठ्य सामग्री

मिलर , पैरी: 1953, फ्राम कॉलोनी टू प्रोविंस, अमेरिका

बेइलिन, बर्नाड: 1968, ओरिजिंस ऑफ अमेरिकन पोलिटिक्स, अमेरिका

राइट, एसमंड, सं0: 1966, काजेज ऐंड कांसीक्वेंसेज ऑफ द अमेरिकन रिवोलूशन

यंग,एल्फ्रेड, सं0: 1976, द अमेरिकन रिवोलूशन: एक्सप्लोरेशंज इन द हिस्ट्री ऑफ अमेरिकन रेडिकलिज्म

सक्सेना, बी0पी0: 1969/1972, अमेरिका का इतिहास, पटना

14.9 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न- अमेरिकी क्रांति के कारणों की विस्तृत विवेचना कीजिए।

प्रश्न- अमेरिकी क्रांति के घटनाक्रम की चर्चा करते हुए परिणाम बताईए।

प्रश्न- विश्व स्तर पर अमेरिकी क्रांति के महत्व को उक्त अध्याय के आधार पर अपने शब्दों में रेखांकित कीजिए।

इकाई 15

फ़्रांस की क्रांति और दार्शनिकों की भूमिका

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 क्रांति से पूर्व फ़्रांस की स्थिति

- **15.3.1 सामाजिक और वर्गीय संरचना**
- **15.3.2 कर-व्यवस्था और आर्थिक संकट**
- **15.3.3 राजशाही और प्रशासनिक असंतोष**

15.4 फ़्रांस की क्रांति की प्रमुख घटनाएँ

- **15.4.1 स्टेट्स जनरल और टेनिस कोर्ट शपथ**
- **15.4.2 बास्तील किले पर धावा**
- **15.4.3 मानवाधिकारों की उद्घोषणा**
- **15.4.4 गणराज्य की स्थापना और राजशाही का अंत**
- **15.4.5 आतंक का शासन**
- **15.4.6 नेपोलियन का उदय और क्रांति का समापन (1799)**

15.5 दार्शनिकों की भूमिका

- **15.5.1 वॉल्तेयर**
- **15.5.2 रूसो**
- **15.5.3मोंतेस्क्यू**
- **15.5.4दिदरो और एन्साइक्लोपीडिया**

15.6 दार्शनिक चेतना और जनांदोलन

- **15.6.1 विचारों का प्रसार और मुद्रण क्रांति**
- **15.6.2 शिक्षित मध्यवर्ग और राजनीतिक जागरूकता**
- **15.6.3 जनता के बीच बौद्धिक चेतना का विकास**

15.7 क्रांति की उपलब्धियाँ और सीमाएँ

- **15.7.1 सामंती ढाँचे का पतन**
- **15.7.2 नए राजनीतिक संस्थान और नागरिक अधिकार**
- **15.7.3 आतंक का शासन और आदर्शों का विचलन**
- **15.7.4 दार्शनिक विचार और व्यावहारिक राजनीति**

15.8 निष्कर्ष

15.1 प्रस्तावना

18वीं शताब्दी की फ्रांसीसी क्रांति आधुनिक विश्व इतिहास की एक निर्णायक घटना थी, जिसने यूरोप ही नहीं, बल्कि वैश्विक राजनीतिक, सामाजिक और वैचारिक संरचनाओं को गहराई से प्रभावित किया। यह क्रांति न केवल एक राजनीतिक परिवर्तन थी, बल्कि यह एक वैचारिक और सामाजिक आंदोलन भी थी, जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे सिद्धांतों पर आधारित थी। क्रांति की जड़ें लंबे समय से पनप रहे असंतोष, सामाजिक विषमता, कर व्यवस्था की असमानता, और राजशाही की दमनकारी प्रवृत्तियों में थीं।

इस इकाई में हम इस बात का विश्लेषण करेंगे कि फ्रांसीसी समाज की आंतरिक संरचनाएँ, आर्थिक संकट और राजनीतिक व्यवस्था किस प्रकार एक विशाल जन आंदोलन का कारण बनीं। विशेष रूप से, हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि प्रबोधन युग (Age of Enlightenment) के दार्शनिकों — जैसे वॉल्तेयर, रूसो, मोंतेस्क्यू और दिदरो — ने अपने विचारों, लेखन और वैचारिक हस्तक्षेप के माध्यम से जनचेतना को कैसे आकार दिया। इन विचारकों ने पारंपरिक सत्ता, धार्मिक कट्टरता और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध तर्कसंगतता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और वैज्ञानिक सोच को केंद्र में रखा।

इस इकाई में हम फ्रांस की क्रांति की पृष्ठभूमि, घटनाओं, विचारधाराओं और प्रभावों का समग्र रूप में अध्ययन करेंगे, जिससे शिक्षार्थी इस ऐतिहासिक प्रक्रिया को बहुआयामी दृष्टिकोण से समझ सकें।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप:

- 18वीं शताब्दी के फ्रांस की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति को समझ सकेंगे।
- फ्रांसीसी क्रांति के कारणों और प्रमुख घटनाओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- प्रबोधन युग के प्रमुख दार्शनिकों और उनके विचारों की पहचान कर सकेंगे।
- यह समझ सकेंगे कि दार्शनिक विचारधारा और जनचेतना के बीच किस प्रकार का संबंध था।
- क्रांति की उपलब्धियों, सीमाओं, और दार्शनिक आदर्शों के व्यावहारिक परिणामों का मूल्यांकन कर सकेंगे।
- यह विश्लेषण कर सकेंगे कि फ्रांसीसी क्रांति का यूरोपीय और वैश्विक राजनीति पर क्या दीर्घकालिक प्रभाव पड़ा।

15.3 क्रांति से पूर्व फ्रांस की स्थिति

18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में फ्रांस एक गहरे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संकट के दौर से गुजर रहा था। यद्यपि यह यूरोप का एक शक्तिशाली और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध देश था, किंतु उसके भीतर की संरचनाएँ असंतुलन, अन्याय और असंतोष से भरी हुई थीं। इस खंड में हम फ्रांसीसी समाज की उन आंतरिक जटिलताओं का विश्लेषण करेंगे, जो अंततः 1789 की क्रांति का मार्ग प्रशस्त करती हैं। फ्रांसीसी क्रांति से पूर्व का समाज अनेक संरचनात्मक विसंगतियों और अंतर्विरोधों से जूझ रहा था। सामाजिक विषमता, आर्थिक शोषण और राजनीतिक

निरंकुशता ने मिलकर एक विस्फोटक वातावरण निर्मित कर दिया। विशेष रूप से तृतीय वर्ग — जिसमें किसान, व्यापारी, बुद्धिजीवी और श्रमिक शामिल थे — इन स्थितियों से सर्वाधिक प्रभावित था और वही क्रांति का प्रमुख प्रेरक बना।

इस पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक है क्योंकि यह स्पष्ट करता है कि फ़्रांस की क्रांति आकस्मिक नहीं थी, बल्कि एक दीर्घकालीन ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम थी, जिसे सामाजिक अन्याय, आर्थिक संकट और विचारों के उद्भव ने संचालित किया।

15.3.1 सामाजिक और वर्गीय संरचना

क्रांति से पहले का फ्रांस एक त्रैवर्गिक सामाजिक ढांचे (Three Estates System) पर आधारित था, जिसे "एंसीयाँ रेजीम" (Ancien Régime) कहा जाता है। इस व्यवस्था में समाज को तीन मुख्य वर्गों में विभाजित किया गया था:

- प्रथम वर्ग (First Estate): इसमें धर्माधिकारी और चर्च के सदस्य शामिल थे, जो भूमि के बड़े हिस्से के स्वामी थे और करों से लगभग मुक्त रहते थे।
- द्वितीय वर्ग (Second Estate): यह वर्ग उच्च कुलीनों (nobility) का था, जिनके पास विशेषाधिकार और प्रभुत्व था। वे प्रशासन, सेना, न्यायपालिका आदि में वर्चस्व रखते थे।
- तृतीय वर्ग (Third Estate): समाज का लगभग 97% हिस्सा इसी वर्ग में आता था, जिसमें कृषक, श्रमिक, शहरी मध्यवर्ग, व्यापारी और बुद्धिजीवी शामिल थे। यह वर्ग भारी करों का बोझ उठाता था, परंतु इसके पास कोई राजनीतिक प्रतिनिधित्व या विशेषाधिकार नहीं था।

इस वर्गीय असंतुलन ने गहरी असंतोष की भावना को जन्म दिया, विशेष रूप से तब, जब तृतीय वर्ग के सदस्य — जिन्हें सबसे अधिक योगदान करना होता था — निर्णय प्रक्रिया से पूर्णतः वंचित थे।

15.3.2 कर-व्यवस्था और आर्थिक संकट

18वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में फ्रांस की आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय हो चुकी थी। देश पर भारी राष्ट्रीय ऋण था, जो विशेष रूप से सात वर्षीय युद्ध (Seven Years 'War) और अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम में फ्रांसीसी हस्तक्षेप के कारण बढ़ा था।

- कर प्रणाली अत्यंत असमान थी: प्रथम और द्वितीय वर्ग करों से लगभग मुक्त थे, जबकि तृतीय वर्ग पर अनेक प्रकार के कर थोपे जाते थे, जैसे तैले (taille), गैबेल (gabelle - नमक कर), और दशमांश (tithe - चर्च कर)।
- अन्न संकट और खाद्य महँगाई ने जनजीवन को अस्थिर किया, जिससे गरीब और मध्यमवर्गीय नागरिकों में असंतोष और विद्रोह की भावना प्रबल हुई।

इसके अतिरिक्त, व्यापारिक और औद्योगिक वर्ग को भी शासन की अव्यवस्थित आर्थिक नीतियों के कारण स्वतंत्र विकास की गुंजाइश नहीं मिल रही थी।

15.3.3 राजशाही और प्रशासनिक असंतोष

फ़्रांस की राजशाही पूर्णतः केंद्रीकृत और निरंकुश थी। राजा लुई सोलहवें (Louis XVI) के शासनकाल में प्रशासनिक अक्षमता और निर्णयहीनता चरम पर थी। राजदरबार का जीवन अत्यधिक विलासिता से भरा हुआ था, जबकि आम जनता भूख, बेरोज़गारी और करों के बोझ से त्रस्त थी।

- शासन की कोई प्रतिनिधित्वात्मक संस्था (जैसे संसद या विधानमंडल) सक्रिय नहीं थी।
- स्टेट्स जनरल नामक प्रतिनिधि सभा को 175 वर्षों के लंबे अंतराल के बाद 1789 में बुलाया गया, वह भी मजबूरी में।

राजनीतिक संवाद और जनसुनवाई के मंचों के अभाव में आम नागरिकों के पास विद्रोह और क्रांति के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रह गया था।

15.4 फ्रांसीसी क्रांति की प्रमुख घटनाएँ

फ्रांसीसी क्रांति (1789–1799) एक ऐसी ऐतिहासिक प्रक्रिया थी, जो सामाजिक असंतोष, आर्थिक संकट और वैचारिक जागरण के सम्मिलन से उत्पन्न हुई। यह क्रांति चरणबद्ध ढंग से विकसित हुई और प्रत्येक चरण में सत्ता, विचार और जन-भावनाओं के स्वरूप में परिवर्तन आया। इस खंड में हम उन महत्वपूर्ण घटनाओं का अध्ययन करेंगे जिन्होंने इस क्रांति को दिशा दी और आधुनिक यूरोप की नींव रखी।

15.4.1 स्टेट्स जनरल का आयोजन और टेनिस कोर्ट शपथ (1789)

175 वर्षों के अंतराल के बाद, राजा लुई सोलहवें ने मई 1789 में स्टेट्स जनरल (États Généraux) को बुलाया — यह एक प्रतिनिधि सभा थी जिसमें तीनों वर्ग (Estate) के प्रतिनिधि शामिल थे।
इस सभा का उद्देश्य था — वित्तीय संकट से निपटने हेतु कर सुधार, परंतु तृतीय वर्ग के प्रतिनिधियों ने जल्द ही महसूस किया कि उन्हें बराबर प्रतिनिधित्व या मताधिकार नहीं मिलेगा। स्टेट्स जनरल में प्रत्येक एस्टेट को एक मत दिया गया था, इस तरह से दोनों ऊपर के एस्टेट अपना बहुमत रखते थे, तृतीय एस्टेट के सदस्यों का कहना था मताधिकार सदन के बजाय सदस्यों को दिया जाना चाहिए. इसी से विरोध की आग भड़क उठी. और, इस असमानता के विरोध में, तृतीय वर्ग ने स्वयं को राष्ट्रीय सभा (National Assembly) घोषित कर दिया और 20 जून 1789 को वर्साय (Versailles) के टेनिस कोर्ट में इकट्ठा होकर एक ऐतिहासिक शपथ ली कि जब तक फ्रांस को एक नया संविधान नहीं मिल जाता, वे अलग नहीं होंगे। यह शपथ फ्रांसीसी क्रांति की वैचारिक शुरुआत मानी जाती है।

15.4.2 बास्तील किले पर धावा (14 जुलाई 1789)

राजा की ओर से सैनिकों की तैनाती और राष्ट्रीय सभा को भंग करने के संकेतों से जनता में भय और क्रोध उत्पन्न हुआ। इसके परिणामस्वरूप, 14 जुलाई 1789 को पेरिस की जनता ने बास्तील किले (Bastille) पर धावा बोल दिया

— जो निरंकुश शाही सत्ता का प्रतीक था। यद्यपि वहाँ कैदियों की संख्या कम थी, परन्तु इस घटना ने जन-क्रांति की चिंगारी को व्यापक विद्रोह में बदल दिया।

बास्तील दिवस को आज भी फ़्रांस का राष्ट्रीय दिवस (National Day) माना जाता है। यह घटना दर्शाती है कि जनता अब केवल प्रतीकात्मक विरोध नहीं, बल्कि सत्ता संरचना को बदलने के लिए तैयार थी।

15.4.3 मानवाधिकारों की उद्घोषणा और संविधान

26 अगस्त 1789 को राष्ट्रीय सभा ने एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ पारित किया —

"Declaration of the Rights of Man and of the Citizen" (मनुष्य और नागरिक के अधिकारों की उद्घोषणा)। इसके मुख्य बिंदु थे:

- सभी मनुष्य जन्म से स्वतंत्र और समान अधिकारों से युक्त हैं।
- व्यक्ति को स्वतंत्रता, संपत्ति, सुरक्षा और अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध का अधिकार है।
- कानून सबके लिए समान होगा और कराधान समान रूप से लागू किया जाएगा।

यह उद्घोषणा दार्शनिक विचारों (विशेषकर रूसो और मोंतेस्क्यू) से प्रेरित थी और एक आधुनिक नागरिक राष्ट्र के निर्माण का वैचारिक आधार बनी।

इसके पश्चात्, 1791 में एक नया संविधान लागू किया गया, जिसमें सीमित राजशाही की स्थापना हुई और विधायिका को जन-प्रतिनिधियों से चुना गया।

15.4.4 राजशाही का अंत और गणराज्य की स्थापना (1792–1793)

21 जनवरी 1793 को लुई सोलहवें को राजद्रोह के अपराध में मृत्युदंड दिया गया। इसके कुछ महीनों बाद, महारानी मैरी एंटोनेट को भी गिलोटिन से मारा गया। हालाँकि नया संविधान लागू हो गया था, परंतु राजा लुई सोलहवें की निष्क्रियता, विदेशी शक्तियों से संलिप्तता और क्रांति विरोधी ताक़तों से मिलन की आशंका ने जनता में गहरा रोष पैदा किया।अगस्त 1792 में जनता ने पुनः आंदोलन किया और शाही परिवार को बंदी बना लिया गया।21 सितंबर 1792 को नेशनल कन्वेंशन ने गणराज्य (Republic) की घोषणा की और राजशाही को पूर्णतः समाप्त कर दिया।

15.4.5 आतंक का शासन (Reign of Terror, 1793–94)

राजशाही के अंत के बाद क्रांति ने एक चरमपंथी रूप धारण किया, जिसमें जैकोबिन क्लब (Jacobin Club) के नेता रॉब्सपिएरे (Maximilien Robespierre) ने सत्ता संभाली। इस काल को "आतंक का शासन" कहा जाता है, क्योंकि:

- क्रांति-विरोधियों, संदिग्धों और शत्रुओं को बिना मुकदमे के दंडित किया गया।
- हजारों नागरिकों को गिलोटिन से मारा गया।

- यह भय का वातावरण केवल शाही वर्ग तक सीमित नहीं रहा, बल्कि क्रांतिकारी साथियों तक भी फैल गया।

हालाँकि इस काल में भूमि सुधार, मूल्य नियंत्रण और जनकल्याण योजनाएँ चलाई गईं, परंतु अत्यधिक हिंसा और सत्ता के केंद्रीकरण ने अंततः जनता में असंतोष उत्पन्न किया।

15.4.6 नेपोलियन का उदय और क्रांति का समापन (1799)

आतंक के शासन के बाद विभिन्न सरकारें अस्थिर रहीं। अंततः 1799 में एक सैन्य तख्तापलट के माध्यम से नेपोलियन बोनापार्ट (Napoleon Bonaparte) ने सत्ता ग्रहण की और क्रांति का औपचारिक अंत हो गया।यद्यपि नेपोलियन ने निरंकुश सत्ता स्थापित की, परंतु उसने क्रांति के अनेक सिद्धांतों — जैसे कि समानता, विधिक सुधार, और धर्मनिरपेक्षता — को संरक्षित रखा।

फ्रांसीसी क्रांति की घटनाएँ एक चरणबद्ध और जटिल प्रक्रिया के रूप में unfolded हुईं। यह केवल सत्ता परिवर्तन की कहानी नहीं थी, बल्कि विचारों, आकांक्षाओं और संघर्षों की सामूहिक गाथा थी। हर घटना — स्टेट्स जनरल से लेकर नेपोलियन के उदय तक — आधुनिक युग के निर्माण में निर्णायक रही।

इन घटनाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि इतिहास केवल अतीत का लेखा-जोखा नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना और संस्थागत विकास की प्रक्रिया का दर्पण है।

15.5 दार्शनिकों की भूमिका

फ्रांसीसी क्रांति का विश्लेषण करते समय यह महत्वपूर्ण है कि हम केवल सामाजिक और राजनीतिक कारकों तक ही सीमित न रहें, बल्कि उन वैचारिक प्रवृत्तियों और बौद्धिक हस्तक्षेपों को भी समझें, जिन्होंने जनचेतना को दिशा दी। 18वीं शताब्दी के फ्रांस में जिस बौद्धिक वातावरण ने जन्म लिया, उसे आमतौर पर प्रबोधन युग (Age of Enlightenment) कहा जाता है। इस युग के दार्शनिकों ने मानव स्वतंत्रता, समानता, तर्क, वैज्ञानिक सोच और सामाजिक अनुबंध जैसे विचार प्रस्तुत किए, जो आगे चलकर क्रांति की बुनियाद बने।

प्रबोधन युग एक बौद्धिक आंदोलन था जो 17वीं–18वीं शताब्दी के यूरोप में विकसित हुआ। इसका मूल विश्वास था कि मनुष्य अपने विवेक और तर्क से समाज को बेहतर बना सकता है, और उसे धार्मिक अथवा राजशाही द्वारा थोपी गई सत्ता का अंधानुकरण नहीं करना चाहिए। फ्रांस में यह आंदोलन विशेष रूप से तीव्र रूप में उभरा, जहाँ विचारकों ने सामाजिक असमानता, राजकीय निरंकुशता और धार्मिक कट्टरता का विरोध किया।प्रबोधन के दार्शनिकों को फिलॉसॉफ (Philosophes) कहा जाता था, और इनमें प्रमुख नाम हैं — वोल्तेयर, रूसो, मोंतेस्क्यू और डिडरो। नीचे हम इन प्रमुख विचारकों के योगदान का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हैं।

15.5.1 वोल्तेयर (Voltaire): तर्क, स्वतंत्रता और निरंकुशता के विरुद्ध आवाज़

फ्रांकोइस मेरी अरुए (François-Marie Arouet), जिन्हें हम वोल्तेयर के नाम से जानते हैं, 18वीं शताब्दी के फ्रांस के सबसे प्रमुख प्रबोधनकालीन चिंतकों में से एक थे। वे एक लेखक, दार्शनिक, इतिहासकार, और व्यंग्यकार थे, जिनकी लेखनी ने यूरोप भर में वैचारिक क्रांति की भावना को उभारा। वोल्तेयर ने उस समय के फ्रांसीसी समाज में व्याप्त धार्मिक कट्टरता, अभिव्यक्ति पर प्रतिबंध, और निरंकुश राजशाही की कठोर आलोचना की।

वोल्तेयर धार्मिक अंधविश्वास और चर्च की सर्वशक्तिमत्ता के कटु आलोचक थे।वे मानते थे कि चर्च ने ईश्वर के नाम पर मानव विवेक को कुचला है और समाज में भय, पाखंड तथा हिंसा को बढ़ावा दिया है।उन्होंने कैथोलिक चर्च की सत्ता, पाप-स्वीकार (indulgences) की प्रथा, और धर्मगुरुओं की नैतिक गिरावट को खुलकर निशाना बनाया।उनकी प्रसिद्ध उक्ति,

“Écrasez l'infâme!” (अधर्म का नाश करो!) का स्पष्ट संकेत था कि वे चर्च के संस्थागत प्रभुत्व को सामाजिक अन्याय का मूल मानते थे।

वोल्तेयर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को मानवीय गरिमा और समाज के बौद्धिक विकास के लिए अनिवार्य मानते थे। उन्होंने कहा था:"I do not agree with what you say, but I will defend to the death your right to say it."यद्यपि यह उक्ति शायद उन्होंने शब्दशः नहीं कही, परंतु यह उनके दृष्टिकोण का सार है।वे न्यायिक पक्षपात, दमनात्मक कानूनों, और सामान्य जनता के साथ होने वाले अन्याय के प्रखर आलोचक थे। उनके कई पत्र, निबंध और उपन्यास, जैसे कि Candide (1759), समाज में व्याप्त अन्याय को व्यंग्यात्मक और आलोचनात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं।

वोल्तेयर ने राजशाही की निरंकुश प्रवृत्तियों की न केवल आलोचना की, बल्कि सत्ता और कानून की जवाबदेही और पारदर्शिता की माँग की। वे इस पक्ष में नहीं थे कि राजा ईश्वर की इच्छा का प्रतिनिधि होता है (divine right theory)। इसके स्थान पर उन्होंने विवेक, लोकहित और तर्कसंगत शासन की वकालत की।हालाँकि वोल्तेयर की मृत्यु 1778 में हो गई थी, यानी क्रांति से एक दशक पहले, फिर भी उनके विचार क्रांति के बौद्धिक माहौल की आधारशिला बन गए।शिक्षित मध्यवर्ग (bourgeoisie) और बुद्धिजीवियों ने वोल्तेयर की कृतियों को पढ़कर सामाजिक अन्याय के विरुद्ध चेतना विकसित की।चर्च और राजा के संयुक्त प्रभुत्व को प्रश्नांकित करने का साहस वोल्तेयर ने ही सबसे पहले पैदा किया।उन्होंने यह भाव फैलाया कि समाज को आधारभूत पुनर्गठन की आवश्यकता है — जो कि क्रांति का केंद्रीय स्वर बन गया।

15.5.2 रूसो (Jean-Jacques Rousseau): सामाजिक अनुबंध और जनसत्ता की अवधारणा

जाँ-जाक रूसो (1712–1778) फ्रांस के उन महान दार्शनिकों में से एक थे, जिनके विचारों ने न केवल फ्रांसीसी क्रांति को वैचारिक आधार प्रदान किया, बल्कि आधुनिक लोकतंत्र और नागरिकता की धारणा को भी गहराई से प्रभावित किया। रूसो का चिंतन मानवीय स्वतंत्रता, समानता और समाज के न्यायसंगत पुनर्गठन पर केंद्रित था।इन ग्रंथों ने व्यक्ति, समाज और राज्य के संबंधों की पुनर्व्याख्या की और फ्रांसीसी जनता के बीच गहरी वैचारिक हलचल उत्पन्न की।

रूसो का सबसे प्रसिद्ध वाक्य है:"मनुष्य स्वतंत्र जन्म लेता है, परन्तु हर जगह वह बंधनों में जकड़ा हुआ है।"रूसो ने यह तर्क दिया कि समाज और राजनीतिक व्यवस्था ने मनुष्य की स्वाभाविक स्वतंत्रता को नष्ट कर दिया है। वह इस बात का पक्षधर था कि व्यक्ति को केवल शासकीय आदेशों से नहीं, बल्कि सामूहिक इच्छा (General Will) से निर्देशित शासन में रहना चाहिए, जहाँ वह अपनी स्वतंत्रता और समानता की रक्षा कर सके।रूसो की The Social Contract

ने फ्रांसीसी क्रांति के क्रांतिकारियों को वैचारिक प्रेरणा दी।उनके अनुसार, राज्य और नागरिकों के बीच एक अनुबंध होता है, जिसमें नागरिक अपनी कुछ स्वतंत्रताएँ सामूहिक हितों के लिए छोड़ते हैं।परंतु यह अनुबंध राजा के साथ नहीं, बल्कि नागरिकों के बीच होता है — और यह अनुबंध तभी वैध होता है जब यह जनसामान्य की सामान्य इच्छा (General Will) पर आधारित हो।इस विचार ने यह स्पष्ट किया कि सत्ता का स्रोत ईश्वर या वंश नहीं, बल्कि जनता है। क्रांति के दौरान यह विचार अत्यंत शक्तिशाली सिद्ध हुआ — विशेषतः तब, जब राजतंत्र को उखाड़ फेंकने की वैचारिक ज़रूरत थी।

रूसो ने अपनी रचना Discourse on the Origin of Inequality में यह प्रतिपादित किया कि सामाजिक असमानता प्राकृतिक नहीं, बल्कि मानव निर्मित है।उन्होंने निजी संपत्ति की अवधारणा की आलोचना की और बताया कि कैसे इसने मनुष्य को दासता, शोषण और संघर्ष के मार्ग पर ढकेल दिया।उनके अनुसार, जब पहले व्यक्ति ने ज़मीन पर दावा किया कि "यह मेरी है", वहीं से सामाजिक अन्याय की शुरुआत हुई।यह विश्लेषण फ्रांस की त्रिवर्गीय सामाजिक व्यवस्था के आलोचकों को एक मजबूत वैचारिक औजार प्रदान करता था।

रूसो ने Emile नामक कृति में एक ऐसे स्वतंत्र सोचने वाले नागरिक की कल्पना की, जिसे शिक्षा और अनुभव के माध्यम से नैतिक और सामाजिक रूप से जागरूक बनाया जाए।वह राज्य और चर्च के प्रभाव से स्वतंत्र शिक्षा का पक्षधर था।उसने परंपरागत अनुशासन आधारित शिक्षा की आलोचना की और तर्क, अनुभव तथा प्रकृति के निकट शिक्षा का समर्थन किया।यह विचार उस समय के चर्च-प्रधान शिक्षण तंत्र के विरुद्ध था और जनशिक्षा और नागरिक गठन की दिशा में एक क्रांतिकारी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता था।

हालाँकि रूसो की मृत्यु क्रांति से एक दशक पूर्व ही हो गई थी (1778), परंतु उनके विचारों का प्रभाव क्रांति की घटनाओं में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है:"General Will" की अवधारणा जैकबिनों की नीति में आधार बनी।क्रांतिकारी घोषणाओं, जैसे "Declaration of the Rights of Man and of the Citizen", में रूसो की भाषा और विचारधारा झलकती है।रॉब्सपिएर और अन्य कट्टर क्रांतिकारियों ने रूसो को "क्रांति का पैगंबर" कहा और उनकी प्रतिमा स्थापित की।रूसो के विचारों ने यह भावना उत्पन्न की कि राज्य नागरिकों का सेवक है, स्वामी नहीं — और यही भावना राजशाही के पतन का आधार बनी।

रूसो के चिंतन ने फ्रांसीसी क्रांति को वैचारिक गहराई और नैतिक वैधता प्रदान की। उन्होंने लोगों को यह सोचने के लिए प्रेरित किया कि सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थाएँ परिवर्तनशील हैं, और यदि वे अन्यायपूर्ण हों तो उन्हें बदला जा सकता है। उनका सामाजिक अनुबंध का सिद्धांत आज भी आधुनिक लोकतंत्र की रीढ़ माना जाता है।इस प्रकार, रूसो न केवल क्रांति के प्रेरणास्रोत थे, बल्कि उन्होंने न्यायपूर्ण और समानतावादी समाज की कल्पना को संभव बनाया — एक ऐसी कल्पना जो आज भी प्रासंगिक बनी हुई है।

15.5.3 मोंतेस्क्यू (Montesquieu): शक्ति के विभाजन और विधिक विवेक का दर्शन

शार्ल-लुई द सेकोंद, बैरन द ला ब्रेद ए मोंतेस्क्यू (1689–1755) — जिन्हें संक्षेप में मोंतेस्क्यू कहा जाता है — 18वीं शताब्दी के सबसे प्रभावशाली राजनीतिक विचारकों में से एक थे। उन्होंने निरंकुश सत्ता के विरोध में वैकल्पिक

राजनीतिक व्यवस्था की वैचारिक आधारशिला रखी। उनकी सबसे प्रसिद्ध रचना "The Spirit of the Laws" (1748) है, जो यूरोपीय राजनीतिक चिंतन की एक क्रांतिकारी उपलब्धि मानी जाती है।

यह ग्रंथ सत्ता, विधि और राज्य संरचना पर एक तुलनात्मक और वैज्ञानिक अध्ययन है, जिसमें मोंतेस्क्यू ने विभिन्न देशों की शासन प्रणालियों का मूल्यांकन किया।उन्होंने यह तर्क दिया कि कानून समाज की प्रकृति, जलवायु, परंपरा और आर्थिक स्थिति से जुड़ा होता है — अर्थात् सभी समाजों के लिए एक ही प्रकार की सत्ता प्रणाली उपयुक्त नहीं होती।यह सोच फ्रांस के शासकीय ढाँचे पर सीधा प्रहार थी, जहाँ निरंकुशता को 'ईश्वरप्रदत्त' और सार्वभौमिक बताया जाता था।

मोंतेस्क्यू का सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह था कि उन्होंने यह सिद्ध किया कि सत्ता का केंद्रीकरण निरंकुशता और दमन को जन्म देता है।उन्होंने प्रस्तावित किया कि एक आदर्श राज्य में सत्ता तीन भागों में विभाजित होनी चाहिए:विधायिका (Legislative) – कानून बनाने की शक्ति; कार्यपालिका (Executive) – कानून लागू करने की शक्ति; न्यायपालिका (Judiciary) – कानून की व्याख्या करने और न्याय देने की शक्ति। इन तीनों शक्तियों को अलग-अलग संस्थाओं के माध्यम से संचालित किया जाना चाहिए ताकि 'checks and balances (नियंत्रण और संतुलन)' बना रहे और कोई भी संस्था अत्यधिक शक्ति प्राप्त न कर सके।यह विचार आगे चलकर अमेरिकी संविधान (1787), फ्रांसीसी क्रांतिकारी घोषणाओं (1789) और आधुनिक लोकतंत्रों की आधारशिला बना।

मोंतेस्क्यू ने लुई XIV और लुई XV की निरंकुश सत्ता की आलोचना करते हुए कहा कि जब सारी शक्ति एक ही व्यक्ति या संस्था के पास केंद्रित हो जाती है, तो न्याय और स्वतंत्रता का नाश हो जाता है।उनका कहना था, 'शक्ति को शक्ति द्वारा नियंत्रित किया जाना चाहिए।' इस सोच ने क्रांति के दौरान यह विचार पुख्ता किया कि राजा सर्वोच्च नहीं है, और उसे विधि तथा संस्थागत नियंत्रण के अधीन रहना चाहिए।

यद्यपि मोंतेस्क्यू स्वयं उदारवादी और संवैधानिक राजतंत्र के पक्षधर थे (वे पूर्ण गणराज्य की वकालत नहीं करते थे), फिर भी उनके विचारों का क्रांतिकारियों पर गहरा प्रभाव पड़ा:क्रांतिकारी संविधान निर्माताओं ने शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत को अपनाकर एक न्यायपूर्ण और उत्तरदायी शासन प्रणाली की नींव रखी।1791 का संविधान, जो क्रांति के आरंभिक चरण में बनाया गया, मोंतेस्क्यू के विचारों से प्रेरित था।उनका तुलनात्मक दृष्टिकोण क्रांतिकारियों को यह सोचने के लिए प्रेरित करता था कि विभिन्न समाजों में शासन का स्वरूप भिन्न हो सकता है — यह सामाजिक विवेक की शुरुआत थी।

मोंतेस्क्यू ने सत्ता के दमनकारी स्वरूप को चुनौती दी और यह दिखाया कि न्याय, स्वतंत्रता और उत्तरदायित्व तभी संभव हैं जब सत्ता विभाजित, संतुलित और नियंत्रणयुक्त हो। फ्रांसीसी क्रांति के दौरान जब पुरानी व्यवस्थाओं को चुनौती दी जा रही थी, मोंतेस्क्यू का दर्शन एक संविधानिक विकल्प के रूप में उभरा।उनकी सोच न केवल क्रांति को वैचारिक वैधता देती है, बल्कि आज भी लोकतंत्र के संस्थागत ढांचे की आधारशिला मानी जाती है।

15.5.4 दिदरो (Diderot): ज्ञान, विवेक और क्रांतिकारी चेतना के निर्माता

दनी दिदरो (Denis Diderot, 1713–1784) 18वीं शताब्दी के फ्रांसीसी प्रबोधनकालीन विचारक, साहित्यकार और दार्शनिक थे। वे उस वैचारिक आंदोलन के अग्रदूतों में शामिल थे, जिसने मानव तर्क, स्वतंत्रता और वैज्ञानिक सोच को केंद्र में रखते हुए यूरोप की बौद्धिक चेतना को बदला।दिदरो का सबसे बड़ा योगदान था — एन्साइक्लोपीडी (Encyclopédie) परियोजना का संपादन, जिसके माध्यम से उन्होंने एक बुद्धिजीवी क्रांति की शुरुआत की।

“एन्साइक्लोपीडी", विज्ञान, कला और शिल्प का युक्तिसंगत शब्दकोश — यह केवल एक संदर्भ ग्रंथ नहीं, बल्कि एक वैचारिक आंदोलन था।दिदरो और उनके सहयोगियों — जैसे द’आलेम्बेयर (d’Alembert), वोल्तेयर, रूसो आदि — ने मिलकर इस विशाल ज्ञानकोश में तर्क, विज्ञान, कला, राजनीति, अर्थशास्त्र, धर्म और समाज से जुड़े हजारों लेख लिखे।यह परियोजना 1751 से 1772 तक चली, और इसके 28 खंडों ने कैथोलिक चर्च और निरंकुश राजसत्ता की वैचारिक जड़ों को चुनौती दी।

दिदरो ने लिखा:"Man will never be free until the last king is strangled with the entrails of the last priest. “यह उक्ति यद्यपि अतिशयोक्ति प्रतीत हो सकती है, परंतु इसमें समाहित थी अधिनायकवादी सत्ता और पाखंडी धर्म के प्रति तीव्र असहमति।

दिदरो एक नास्तिक (atheist) और भौतिकवादी (materialist) विचारक थे। उन्होंने धर्म को एक सामाजिक नियंत्रण का उपकरण माना और उसकी आलोचना तर्क और अनुभव के आधार पर की।उन्होंने धार्मिक विश्वासों को विवेक और विज्ञान के कसौटी पर परखा।चर्च के "ज्ञान पर एकाधिकार" को तोड़ने के लिए उन्होंने एन्साइक्लोपीडी के माध्यम से जनसाधारण को ज्ञान सुलभ कराया।यह प्रयास फ्रांसीसी क्रांति की उस मूल भावना से जुड़ा था, जिसमें कहा गया कि ज्ञान ही मुक्ति का मार्ग है।

एन्साइक्लोपीडी बार-बार सरकार और चर्च द्वारा प्रतिबंधित की गई।लेकिन दिदरो ने गुप्त रूप से प्रकाशन जारी रखा।उनका मानना था कि विचारों पर नियंत्रण केवल तानाशाही को जन्म देता है, और मुक्त संवाद ही समाज को प्रगतिशील बनाता है।उनका यह आग्रह आज भी प्रेस की स्वतंत्रता और शैक्षणिक विवेक की नींव माना जाता है।

यद्यपि दिदरो की मृत्यु क्रांति से पाँच वर्ष पहले ही हो गई (1784), उनके विचारों और एन्साइक्लोपीडी ने क्रांति की वैचारिक चेतना तैयार की:एन्साइक्लोपीडी ने कई शिक्षित नागरिकों और मध्यवर्गीय युवाओं को जागरूक किया, जो बाद में क्रांतिकारी आंदोलन में शामिल हुए।क्रांति की घोषणाओं — जैसे कि Declaration of the Rights of Man and of the Citizen — में दिदरो के विचार स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं।उनकी सोच ने यह भावना बलवती की कि ज्ञान और विज्ञान पर किसी सत्ता का एकाधिकार नहीं होना चाहिए — यह भावना फ्रांस की सामाजिक और राजनीतिक पुनर्रचना के लिए प्रेरक बनी।

दिदरो एक ऐसे दार्शनिक थे जिन्होंने कलम को हथियार बनाया और ज्ञान को क्रांति का ईंधन बनाया। उन्होंने अपने जीवन के दो दशक एन्साइक्लोपीडी को समर्पित किए — एक ऐसा ग्रंथ जो न केवल सूचना का स्रोत था, बल्कि एक वैचारिक आंदोलन का औजार बन गया।फ्रांसीसी क्रांति की पृष्ठभूमि में दिदरो की भूमिका वैचारिक क्रांतिकारी के रूप

में मानी जाती है — एक ऐसा व्यक्ति जिसने ज्ञान के लोकतंत्रीकरण के माध्यम से सत्ता और अंधविश्वास की दीवारों को हिला दिया।

15.6 दार्शनिक चेतना और जनांदोलन

फ्रांसीसी क्रांति केवल आर्थिक कठिनाइयों, कर-शोषण और सामाजिक असमानता की प्रतिक्रिया नहीं थी, बल्कि यह एक ऐसी वैचारिक क्रांति थी जिसकी तैयारी वर्षों पूर्व दार्शनिकों ने की थी।वोल्तेयर, रूसो, मोंतेस्क्यू और दिदरो जैसे विचारकों ने जो चिंतनात्मक क्रांति शुरू की, वह जनता के बीच फैलती गई और अंततः एक संगठित राजनीतिक जनांदोलन में बदल गई।

18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक, प्रिंटिंग प्रेस, कैफे सभाओं, बौद्धिक सैलूनों (salons) और पुस्तक प्रकाशनों ने दार्शनिक विचारों को बुर्जुआ वर्ग, पढ़े-लिखे नागरिकों, और यहाँ तक कि कुछ ग्रामीण समुदायों तक पहुँचा दिया।वोल्तेयर की व्यंग्यात्मक आलोचनाएँ चर्च और निरंकुश सत्ता की छवि को धूमिल करने लगीं।रूसो का "जन-इच्छा" का सिद्धांत समाज के हर उस व्यक्ति को संबोधित करता था जो अपने जीवन पर अधिकार चाहता था।मोंतेस्क्यू के सत्ता-विभाजन के सिद्धांत ने न्याय और स्वतंत्रता की संभावनाओं को वैधता दी।दिदरो की एन्साइक्लोपीडी ने यह जता दिया कि ज्ञान पर किसी एक वर्ग का एकाधिकार अब स्वीकार्य नहीं।इन विचारों ने जनता को यह एहसास कराया कि राजशाही, चर्च और सामंती व्यवस्था कोई प्राकृतिक या ईश्वरदत्त व्यवस्था नहीं है, बल्कि इन्हें मनुष्य ने बनाया है और बदला भी जा सकता है।

बुर्जुआ वर्ग (Bourgeoisie) — जिसमें व्यापारी, पेशेवर, वकील, शिक्षक और बौद्धिक वर्ग आते थे — वह प्रमुख वर्ग था जिसने दार्शनिक विचारों को आत्मसात किया और उन्हें राजनीतिक माँगों में परिवर्तित किया।इस वर्ग ने संविधान की माँग कीकर प्रणाली में समानता की माँग की,और कानून के समक्ष समानता को मूल अधिकार के रूप में देखा।यही वर्ग नेशनल असेंबली, नव संविधान और मानवाधिकारों की उद्घोषणा का अग्रदूत बना।

जब 1789 में स्टेट्स जनरल की बैठक विफल हुई और टेनिस कोर्ट शपथ ली गई, तब वह विचार जो अब तक पुस्तकों और सभाओं में सीमित था, वह सड़क और संसद तक पहुँच गया।बास्तील पर हमला कोई सामान्य विद्रोह नहीं था — वह उस प्रतीक का विध्वंस था जो निरंकुशता और अज्ञान का पर्याय बन चुका था।जब लुई सोलहवें का वध हुआ, तब यह केवल एक राजा की मृत्यु नहीं थी, बल्कि दैवी राजसत्ता की अवधारणा का अंत था।गणराज्य की घोषणा, जन-इच्छा की संप्रभुता और राजशाही का पूर्ण विस्थापन दार्शनिक चेतना के राजनीतिक निष्कर्ष थे।

यद्यपि दार्शनिकों ने तर्क, स्वतंत्रता और विवेक पर बल दिया था, परंतु जब क्रांति व्यवहार में आई तो उसमें हिंसा, आतंक और अस्थिरता भी शामिल हो गई — विशेष रूप से रॉब्सपिएर के आतंक के शासन (Reign of Terror) में।यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न को जन्म देता है:क्या दार्शनिक चेतना ने हिंसक क्रांति को बढ़ावा दिया?उत्तर यह है कि दार्शनिकों ने परिवर्तन के लिए वैचारिक भूमि तैयार की थी, परंतु उनकी चेतना को क्रांति के चरमपंथी स्वरूपों ने भी अपनी तरह से ढाल लिया।रूसो के General Will की व्याख्या जैकोबिनों ने अपने अनुसार की, और नैतिक उद्देश्य के नाम पर दमनकारी नीतियाँ अपनाई गईं।

हालाँकि क्रांति के बाद एक बार फिर नेपोलियन के नेतृत्व में सत्ता केंद्रीकृत हुई, लेकिन यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि:फ्रांस में नागरिक अधिकार, कानून की समानता, और धर्मनिरपेक्षता की नींव रखी गई।यूरोप भर में राजाओं को नैतिक और वैचारिक चुनौती मिली।शिक्षा, प्रशासन और नागरिकता को लेकर नए प्रतिमान बने।आधुनिक लोकतंत्र, मानवाधिकार, और गणराज्य की संकल्पना को वैश्विक स्वीकृति प्राप्त हुई।दार्शनिक चेतना फ्रांसीसी क्रांति की प्राणवायु थी। वोल्तेयर, रूसो, मोंतेस्क्यू और दिदरो ने तर्क, स्वतंत्रता और समानता के विचारों को जनमानस तक पहुँचाया। क्रांति इस चेतना का स्वाभाविक परिणाम थी — कभी विचार में, कभी आंदोलन में, और कभी विद्रोह में।इन दार्शनिकों ने यह साबित कर दिया कि विचार भी एक राजनीतिक शक्ति होते हैं, जो इतिहास की दिशा बदल सकते हैं।

15.7 संदर्भ सूची (Bibliography)

1. Anderson, Perry. Lineages of the Absolutist State. London: Verso, 1974.
2. Blanning, T. C. W. The French Revolution: Class War or Culture Clash? London: Palgrave Macmillan, 1998.
3. Doyle, William. The Oxford History of the French Revolution. Oxford: Oxford University Press, 1989.
4. Hunt, Lynn. Politics, Culture, and Class in the French Revolution. Berkeley: University of California Press, 1984.
5. Israel, Jonathan. Radical Enlightenment: Philosophy and the Making of Modernity, 1650–1750. Oxford: Oxford University Press, 2001.
6. Jones, Colin. The Great Nation: France from Louis XV to Napoleon. London: Penguin, 2002.
7. McLellan, David. The Thought of Karl Marx: An Introduction. London: Macmillan, 1971.
8. Rousseau, Jean-Jacques. The Social Contract. Translated by Maurice Cranston. London: Penguin Classics, 1968.
9. Voltaire. Philosophical Letters. Translated by Leonard Tancock. London: Penguin, 1980.

15.8 अभ्यास प्रश्न (Exercise Questions)

(क) वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective-type Questions):

1. किस दार्शनिक ने "सामाजिक अनुबंध" (The Social Contract) की अवधारणा प्रस्तुत की?

(a) वोल्तेयर

(b) रूसो

(c) मोंतेस्क्यू

(d) दिदरो

2. "शक्तियों के पृथक्करण" (Separation of Powers) का सिद्धांत किसने प्रतिपादित किया था?

(a) रूसो

(b) वोल्तेयर

(c) मोंतेस्क्यू

(d) दिदरो

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions):

1. फ्रांसीसी क्रांति के प्रमुख कारणों की विवेचना कीजिए और इसमें दार्शनिक चेतना की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

2. वोल्तेयर के विचारों का विश्लेषण कीजिए तथा यह स्पष्ट कीजिए कि उन्होंने फ्रांसीसी क्रांति को वैचारिक रूप से कैसे प्रभावित किया।

3. रूसो के The Social Contract की प्रमुख अवधारणाएँ क्या थीं? इन विचारों की क्रांति में भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

4. मोंतेस्क्यू द्वारा प्रतिपादित शक्तियों के विभाजन के सिद्धांत का वर्णन कीजिए और उसका क्रांति पर प्रभाव स्पष्ट कीजिए।

5. एन्साइक्लोपीडी परियोजना के माध्यम से दिदरो ने फ्रांसीसी समाज और राज्य व्यवस्था को किस प्रकार चुनौती दी? विवेचना कीजिए।

15.9 वस्तुनिष्ठ प्रश्न के उत्तर Objective-type Questions' Answers

1. (b) रूसो

2. (c) मोंतेस्क्यू

15.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. फ्रांस की क्रान्ति के कारणों पर प्रकाश डालिए।

2. फ्रांस की क्रान्ति में दार्शनिकों की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

इकाई सोलह

फ्रांस की क्रान्ति तथा नेपोलियन का युग

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 फ्रांस की क्रान्ति (1789) कारण

16.3.1 सामाजिक कारण

16.3.2 राजनैतिक कारण

16.3.3 आर्थिक कारण

16.3.4 बौद्धिक और अन्य कारण

16.3.5 तात्कालिक कारण

16.4 फ्रांस की क्रान्ति (1789) प्रमुख घटनायें

16.4.1 स्टेटस जनरल का अधिवेशन

16.4.2 बास्तील का पतन और जनता का विद्रोह

16.4.3 राष्ट्रीय संवैधानिक सभा

16.4.4 व्यवस्थापिका सभा

16.4.5 राष्ट्रीय सम्मेलन (नेशनल कन्वेंशन)

16.4.6 निदेशक मण्डल (डायरेक्टरी)

16.5 नेपोलियन का उदय

16.5.1 प्रारम्भिक जीवन

16.5.2 प्रारम्भिक सैनिक उपलब्धियां

16.5.3 1799 का संविधान

16.6 प्रथम कौंसिल के आन्तरिक सुधार

16.6.1 प्रशासनिक सुधार

16.6.2 पोप से समझौता

16.6.3 कानूनी सुधार

16.6.4 शिक्षा में सुधार

16.6.5 आर्थिक सुधार

16.6.6 सांस्कृतिक और सामान्य हित के कार्य

16.7 प्रथम कौंसिल कालीन विदेश नीति

16.7.1 आस्ट्रिया से युद्ध

16.7.2 द्वितीय गुट का अन्त
16.7.3 इंग्लैण्ड से सम्बन्ध
16.7.4 औपनिवेशिक राज्य
16.8 सम्राट के रूप में नेपोलियन
16.8.1 इंग्लैण्ड से युद्ध
16.8.2 आस्ट्रिया पर आक्रमण
16.8.3 मध्य यूरोप का पुनर्गठन
16.8.4 प्रशा की पराजय
16.8.5 रूस से सम्बन्ध
16.9 नेपोलियन के पतन में सहायक घटनायें
16.9.1 महाद्वीपीय युद्ध
16.9.2 प्रायद्वीपीय युद्ध
16.9.3 आस्ट्रिया से पुनः युद्ध
16.9.4 रूसी अभियान
16.9.5 प्रशा में जागृति
16.9.6 राष्ट्रों से युद्ध
16.9.7 नेपोलियन का अन्तिम युद्ध
16.9.8 नेपोलियन की भूलें और चारित्रिक दोष
16.10 मूल्यांकन-
16.10.1 फ्रांस की क्रान्ति के परिणाम और प्रभाव
16.10. 2 नेपोलियन युग का महत्व
16.11 सारांश
16.12 तकनीकी शब्दावली और कथन
16.13 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
16.14 संदर्भग्रंथ सूची
16.15 सहायक और उपयोगी पाठ्य सामग्री
16.16 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध की जिन घटनाओं ने उन्नीसवीं सदी को एक दिशा प्रदान की, उनमें सर्वाधिक प्रमुख घटना फ्रांस की 1789 की क्रांति थी। इसने यूरोप में राजनैतिक और सामाजिक परिवर्तनों का दौर शुरू किया। इस क्रांति द्वारा फ्रांस में पुरातन व्यवस्था को समाप्त कर नागरिक अधिकारों और बौद्धिक सिद्धान्तों पर आधारित व्यवस्था स्थापित की गयी। फ्रांस की क्रांतिजनित स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व के नारे ने सम्पूर्ण यूरोप को पुरातन व्यवस्था के विरूद्ध आँदोलित किया। अगले सौ वर्षों तक यूरोप में होने वाली प्रमुख घटनाओं को यह क्रांति प्रभावित करती रही।

फ्रांस में क्रांति के पश्चात पुरातन व्यवस्था के अन्त और नवीन शासन व्यवस्था के विभिन्न असफल प्रयोगों के पश्चात अन्ततः फ्रांस की बागडोर नेपोलियन बोनापार्ट ने संभाली। उसने जिस तीव्रता से फ्रांस को यूरोप की शक्ति और महिमा का केन्द्र बनाया, वह उसे महान व्यक्तियों की श्रेणी में स्थापित करने के लिए पर्याप्त था। 1815 तक न केवल फ्रांस वरन् यूरोप के घटनाक्रम भी नेपोलियन के कार्यों से प्रभावित रहे। फ्रांस की क्रांति के सिद्धान्तों का यूरोप के अन्य देशों में प्रसार उसकी विजयों के माध्यम से हुआ। इतिहास में उसका कार्यकाल (1799 से 1815) नेपोलियन युग के नाम से जाना जाता है।

16.2 उद्देश्य

इस ईकाई में आप जान सकेंगे -

- फ्रांस की क्रांति के प्रमुख कारण और फ्रांस की क्रांति के दौरान घटित विभिन्न घटनाक्रम।
- नेपोलियन बोनापार्ट के सम्पूर्ण जीवन और कृत्यों का अध्ययन।
- नेपोलियन के युद्धों के माध्यम से फ्रांस की क्रान्ति और राष्ट्रीयता के विचारों के यूरोप के अन्य देशों में प्रसार
- और प्रभाव।
- नेपोलियन की भूलों और उसकी विवादास्पद चारित्रिक विशेषताओं का भी विश्लेषण कर सकेंगे।
- फ्रांस की क्रांति और नेपोलियन का फ्रांस और यूरोप के इतिहास में महत्व।

16.3 फ्रांस की क्रान्ति (1789) कारण

वास्तव में क्रान्ति के कारण फ्रांस की पुरातन व्यवस्था 'आसियां रिजीम' में निहित थे। फ्रांस के अयोग्य शासक, सामन्तों और कुलीन वर्ग को प्राप्त विशेषाधिकारों के प्रति आक्रोश, राज्य की दयनीय आर्थिक स्थिति, मध्यम वर्ग में बढ़ती चेतना, बौद्धिक जागरण का प्रभाव आदि अनेक कारण थे, जिन्होंने क्रान्ति को जन्म दिया।

16.3.1 सामाजिक कारण

फ्रांस का समाज असमान और विघटित था। यह सामन्तवादी प्रवृत्तियों और विशेषाधिकारों के सिद्धान्त पर आधारित था। यह समाज तीन श्रेणियों में बंटा था-प्रथम एस्टेट- पादरी, द्वितीय एस्टेट-सामन्त तथा तृतीय एस्टेट-जन साधारण।

सामाजिक हैसियत और अधिकारों के आधार पर उच्च पादरी तथा कुलीन सामन्त वर्ग विशेषाधिकार वर्ग के अन्तर्गत तथा समस्त जनता-किसान, मजदूर, नौकरी और व्यापार करने वाले आदि अधिकारहीन वर्ग के अन्तर्गत आते थे। उच्च पादरी और कुलीन सामन्त सम्पन्न और अधिकांश भूमि के स्वामी होने के बाबजूद करमुक्त थे। उनके पद खरीदे जा सकते थे, जिस कारण उच्च पदाधिकारी और पादरी अयोग्य, भ्रष्ट और चापलूस हो गये थे। चर्च के पादरी समाज के प्रत्येक अंग पर प्रभावी थे। सामन्त वर्ग विलासिता का जीवन व्यतीत करता था और उसे किसानों से कई प्रकार के करों को वसूलने और बेगार कराने का विशेषाधिकार प्राप्त था। मध्यम वर्ग धन और योग्यता में सम्पन्न होने के बाबजूद सुविधाहीन था, जिस कारण उसमें अत्यधिक असंतोष था। सबसे दयनीय स्थिति किसानों और मजदूरों की थी, जो जनसंख्या में 80 प्रतिशत थे तथा जिन्हें अपनी आय का आधा भाग सामन्तीय, धार्मिक और राजकीय करों के रूप में देना होता था। समाज की यह विषमता धीरे धीरे आपसी तनाव का कारण बनी।

16.3.2 राजनैतिक कारण

फ्रांस में लुई 14वें के समय सत्ता का पूर्ण केन्द्रीकरण हो गया था। उसने पूर्ण निरंकुशता और शान-शौकत से राज्य किया। कई युद्धों और नई राजधानी वर्साय की स्थापना पर अत्यधिक व्यय करने के बावजूद उसने अपने उत्तराधिकारी को युद्ध न करने और जनहित के कार्य करने की सलाह दी। परन्तु उसका उत्तराधिकारी लुई 15वाँ कमजोर और विलासी था। उसने अपने पड़ोसियों के साथ कई असफल युद्ध लड़े तथा अपने सलाहकारों की शासन और आर्थिक स्थिति में सुधार करने की सलाह को यह कहकर टाल दिया कि मेरा समय तो निकल ही जायेगा। लुई 16वाँ गद्दी पर बैठा तो फ्रांस की स्थिति निराशाजनक थी। उसमें स्थिति को सुधारने की क्षमता नहीं थी। लुई 16वा न तो स्वयं निर्णय ले पाता था और न अपने मंत्रियों की उचित सलाह पर कार्य कर पाता था। उस पर अपनी रानी मेरी एन्टोयनेट का प्रभाव था। वह राजनीति और प्रशासन में निरन्तर हस्तक्षेप करती थी। वह आस्ट्रिया की राजकुमारी थी तथा फ्रांस की जनता उसे पसन्द नहीं करती थी। क्रान्ति के समय उसने राजा की कठिनाईयों को बढ़ाया।

फ्रांस की प्रतिनिधि सभा स्टेटस जनरल का अधिवेशन 1614 के बाद से नहीं हुआ था। प्रांतों पर केन्द्र का नियंत्रण कमजोर पड़ गया था। सम्पूर्ण देश अनेक प्रकार की इकाइयों मे बंटा था तथा स्थान-स्थान पर भिन्न भिन्न कानून प्रचलित थे। न्याय व्यवस्था जटिल और खर्चीली थी। एक प्रकार के वारंट 'लेत्र द काशे' द्वारा किसी को भी कभी भी गिरफ्तार किया जा सकता था। व्यापार की दृष्टि से भी देश कई भागो में बंटा था और जगह-जगह चुंगी की सीमाएं थीं। कर्मचारी अनियंत्रित और भ्रष्ट थे।

इस प्रकार फ्रांस में निरंकुश और अयोग्य शासकों, प्रतिनिधि सभाओं के अभाव, अक्षम प्रशासनिक व्यवस्था, भ्रष्ट न्याय और कानून व्यवस्था आदि ने राजनैतिक व्यवस्था को क्षीण कर दिया था।

16.3.3 आर्थिक कारण

फ्रांस की वित्तीय नीति दोषपूर्ण थी। राज्य का कोई बजट नहीं था। राजा की व्यक्तिगत सम्पत्ति और राजकोष में कोई अन्तर नहीं था। राजपरिवार विलासिता और युद्धों पर अत्यधिक अपव्यय करता था। आय से अधिक व्यय होने के

कारण फ्रांस की अर्थव्यवस्था कर्ज आधारित हो गयी थी। फ्रांस मध्यम वर्ग के व्यापारियों का ऋणी बनता जा रहा था।

फ्रांस के शासकों द्वारा कृषि और उद्योग के विकास की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। कर व्यवस्था भी दोषपूर्ण थी। विशेषाधिकार वर्ग से सम्पन्न होने के बावजूद कोई कर नहीं लिया जाता था। सम्पूर्ण करों का भार किसानों, मजदूरों और सामान्य जनता को वहन करना पड़ता था। अप्रत्यक्षकर जैसे नमक कर आदि को वसूलने के लिए ठेका प्रथा प्रचलित थी। ठेकेदार करवसूली करते समय गरीब किसानों पर अत्याचार करते थे। 1778 की मंदी और अकाल ने स्थिति को अधिक खराब कर दिया। किसानों और मजदूरों में भूखमरी की स्थिति उत्पन्न हो गयी। व्यापारियों ने भी राज्य को ऋण देने से मना कर दिया। परन्तु राजपरिवार और कुलीन वर्ग की विलासिता में कोई कमी नहीं आई। अंततः फ्रांस को वित्तीय संकट का सामना करना पड़ा।

16.3.4 बौद्धिक तथा अन्य कारण

फ्रांस में दार्शनिकों और लेखकों ने फ्रांसीसी समाज में व्याप्त असमानता, भ्रष्टाचार, धार्मिक अंधविश्वास आदि की कटु आलोचना कर जनता को परिवर्तन करने को प्रेरित किया। अनेक गोष्ठियों (सैलो) और संस्थाओं (कारदीलिए आदि) में यह दार्शनिक वर्तमान व्यवस्था की बुराइयों पर विचार विमर्श करते थे। इनका प्रभाव मध्यम वर्ग पर पड़ा। इन्हें क्रान्ति का जन्मदाता नहीं कहा जा सकता तथापि फ्रांस में परिवर्तन हेतु वैचारिक आधार प्रदान करने का कार्य इन लेखकों ने किया।

मान्टेस्क्यू ने अपनी पुस्तक 'द स्पिरिट ऑफ लॉज' में शक्ति के पृथक्करण का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। वह संवैधानिक शासान पद्धति के पक्ष में था। वाल्टेयर ने प्राचीन रूढ़ियों, कुप्रथाओं और अंधविश्वासों का विरोध किया। विशेषरूप से कैथोलिक चर्च और पादरियों के विलासमय जीवन को जनता के समक्ष रखा। रूसो ने 'सोशल कांट्रैक्ट' नामक पुस्तक में स्पष्ट किया कि शासक को जनता के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। इनके अतिरिक्त दिदरो, क्वेस्ने, हॉलबैक, हैल्वेशियस आदि ने अपनी लेखनी से असमानता, शोषण, धार्मिक असहिष्णुता, भ्रष्ट और निरंकुश राजतंत्र, प्रशासनिक दोष आदि के प्रति जनता को जाग्रत किया।

फ्रांस की क्रान्ति समकालीन विश्व से भी प्रभावित हुयी थी। अमेरिका की स्वतंत्रता तथा इंग्लैण्ड की गौरवशाली क्रान्ति के पश्चात वहां लागू संवैधानिक शासन व्यवस्था ने फ्रांस के शिक्षित मध्यम वर्ग को व्यवस्था परिवर्तन हेतु प्रेरित किया।

16.3.5 तात्कालिक कारण

आपको बताया गया है कि फ्रांस में वित्तीय संकट उत्पन्न हो गया था। लुई 16वें ने अपने अर्थमंत्रियों क्रमशः तुर्गो, नेकर, कालोन, और ब्रीएन की सलाह से इस संकट को दूर करने हेतु कई प्रयास किए। रानी और दरबारी सामन्तों के षड़यन्त्रों और सहयोग न करने के कारण सभी प्रयास असफल रहे। अंततः लुई 16वें ने अध्यादेशों के द्वारा सामन्त वर्ग पर कर लगाना चाहा, पेरिस की पार्लमां ने कर लगाने सम्बन्धी कानूनों को पंजीकृत करने से इंकार कर दिया। उसने स्पष्ट किया कि राजा को नया कर लगाने का अधिकार नहीं है, केवल राज्य को ही 'स्टेटस जनरल' के माध्यम से कर

लगाने का अधिकार है। इस प्रकार विशेषाधिकार सम्पन्न सांमत वर्ग ने राजा का विरोध करके फ्रांस को क्रान्ति की ओर धकेल दिया।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. 1789 की फ्रांस की क्रान्ति से पूर्व फ्रांस की सामाजिक स्थिति का वर्णन करो।
2. फ्रांस की क्रान्ति के लिए उत्तरदायी राजनैतिक और आर्थिक कारणों पर प्रकाश डालिए।
3. फ्रांस की क्रान्ति में दार्शनिकों के योगदान का वर्णन करिए।

16.4 फ्रांस की क्रान्ति (1789) प्रमुख घटनायें

स्टेटस जनरल की बैठक बुलाने की पार्लमां की मांग का जनता द्वारा भारी समर्थन किया गया। राजा ने पार्लमां को भंग करना चाहा, तो कई शहरों में प्रत्यक्ष विरोध प्रदर्शन हुआ। अंततः विवश होकर राजा को स्टेटस जनरल की बैठक बुलानी पड़ी।

16.4.1 स्टेटस जनरल का अधिवेशन

आपको बताया जा चुका है कि 1614 में स्टेटस जनरल का अधिवेशन अन्तिम बार हुआ था। 1789 में जब स्टेटस जनरल के चुनाव के लिए पादरी ,सामंत और तृतीय वर्ग के अलग-अलग प्रतिनिधि चुनने की पुरानी पद्धति अपनायी गयी तो इस व्यवस्था के विरूद्ध तृतीय वर्ग ने विरोध किया। फलतः तृतीय वर्ग के सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गयी। 25 वर्ष से अधिक आयु का जो व्यक्ति राज्य को कर देता था या किसी विशेष कार्य में दक्ष था, मत दे सकता था।

5 मई को स्टेटस जनरल का अधिवेशन वर्साय में हुआ, परन्तु मतदान प्रणाली को लेकर मतभेद उत्पन्न हो गया। पुरानी पद्धति में तीनों वर्गों के प्रतिनिधि अलग-अलग सदनों में अपने सदन का एक मत देते थे, जिससे दो सदनों का एक मत होने पर वही स्वीकृत हो जाता था। तृतीय वर्ग ने इसे मानने से इंकार कर दिया। लगभग डेढ़ माह तक गतिरोध चलता रहा। तृतीय वर्ग ने अन्य वर्गों को अपने साथ बैठने के लिए आमंत्रित किया। विरोध के बावजूद प्रथम वर्ग से कुछ छोटे पादरियों ने तृतीय सदन के साथ बैठना स्वीकार किया। अंततः 16 जून,1789 को स्टेटस जनरल ने अपने को राष्ट्रीय सभा घोषित कर दिया। 20 जून, 1789 को जब तृतीय वर्ग के प्रतिनिधि सभा भवन पहुँचे तो राजा ने सभा भवन बंद करा दिया। तृतीय वर्ग ने समीप स्थित टेनिस कोर्ट में एकत्र होकर शपथ ली कि राष्ट्रीय सभा देश के लिए नया संविधान बनाने तक भंग नहीं की जायेगी। 23 जून, 1789 को राजा ने तीनों वर्गों के प्रतिनिधियों को सम्बोधित किया तथा पृथक-पृथक सदन में बैठकर निर्णय करने को कहा तो राष्ट्रीय सभा ने इसे मानने से इंकार कर दिया। यह जनता की पहली जीत थी।

16.4.2 बास्तील का पतन और जनता का विद्रोह

पेरिस के लोग वर्साय में स्टेटस जनरल का अधिवेशन करने से नाराज थे। धीरे-धीरे बेरोजगार और गरीब सांज क्यूलोत ने कारखाना मालिकों और व्यापारियों पर हमला कर दिया और दंगे बढते गये इसी समय राजा ने लोकप्रिय मंत्री नेकर को बर्खास्त कर दिया, जिसका पेरिस की जनता ने विरोध किया।

13 जुलाई को अफवाह फैली की विरोध का दमन करने सैनिकों को भेजा जा रहा है। इससे उत्तेजित हो लोगों ने शस्त्र संग्रह करने का निर्णय लिया। 14 जुलाई को पेरिस के समीप स्थित बास्तील के दुर्ग पर वहाँ के हथियारों पर कब्जा करने के उदद्ेश्य से जनता ने आक्रमण कर दिया। बास्तील का किला पूरी तरह नष्ट कर दिया गया। इस घटना के क्रान्तिकारी परिणाम हुए। फ्रांस की जनता को सीधी कार्यवाही करने की प्रेरणा मिली और इससे प्रभावित हो सम्पूर्ण फ्रांस में सामंतीय प्रतीकों और दस्तावेजों को लूटा और जलाया गया। पेरिस कम्यून ने लाफायत के नेतृत्व में 'नेशनल गार्ड' की स्थापना कर ली। इससे सैनिक शक्ति मध्यम वर्ग के हाथ में आ गयी। बास्तील का पतन फ्रांस के इतिहास का निर्णायक मोड़ साबित हुआ। इस कारण 14 जुलाई फ्रांस में राष्ट्रीय दिवस के रूप में मनाया जाने लगा।

16.4.3 राष्ट्रीय संवैधानिक सभा

तृतीय स्टेट ने अपने को राष्ट्रीय सभा घोषित करने के बाद नवीन संविधान का निर्माण करने का निश्चय किया था। उस समय सम्पूर्ण देश में क्रान्ति अपने चरम पर थी। अतः देश में शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए राष्ट्रीय सभा ने अगस्त, 1789 से सितम्बर, 1791 तक शासन में सुधार और कई महत्वपूर्ण कार्य किए।

प्रमुख घोषणाएं एवं कार्य- राष्ट्रीय सभा में कुछ सामंतीय प्रतिनिधियों ने 4 अगस्त को अपने विशेषाधिकारों को छोड़ने की घोषणा कर दी, तब राष्ट्रीय सभा ने प्रस्ताव पारित करके सभी नागरिकों पर एक सामान कर व्यवस्था लागू की और विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया। सदियों पुरानी व्यवस्था, जो क्रान्ति का प्रमुख कारण थी, का अन्त हो गया। इस घटना के बाद कुछ असन्तुष्ट सामन्त और राजा के सम्बन्धी विदेश भाग गये और क्रान्ति के विरूद्ध षडयन्त्र रचने लगे।

राष्ट्रीय सभा ने रूसो के 'सोशल कांट्रैक्ट' से प्रेरित होकर 27 अगस्त, 1789 को मानव अधिकारों की घोषणा की। इस घोषणानुसार समस्त जनता को समानता, सुरक्षा, स्वतंत्रता, सम्पत्ति रखने, योग्यता के आधार पर पद प्राप्त करने तथा समान न्याय और समान कानून का अधिकार दिया गया। इस घोषणा ने क्रान्ति को व्यापकता प्रदान की और समस्त विश्व को प्रभावित किया। राजा के द्वारा घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर करने में देरी की गयी। जनता को भय था कि लुई 16वाँ क्रान्ति विरोधियों के साथ मिलकर क्रान्ति का दमन करने के लिए सेना भेज सकता है। वर्साय में क्रान्ति विरोधियों द्वारा शानदार दावत का आयोजन भी किया गया था। अतः 5 अक्टूबर, 1789 को पेरिस की कई हजार स्त्रियों ने वर्साय की ओर प्रस्थान करके राजा तथा उसके परिवार को पेरिस में चलकर रहने पर विवश किया।

जुलाई,1790 में पादरियों का कानून पारित किया गया, जिसके अनुसार पादरियों और विशपों का निर्वाचन अब जनता द्वारा किया जायेगा तथा प्रत्येक प्रान्त में एक विशप नियुक्त होगा, जो पोप के अधीन न होकर राज्य का वैतनिक कर्मचारी होगा। इस लौकिक संविधान की शपथ फ्रांस के सभी पादरियों को लेनी थी। इससे पोप और कैथोलिक जनता नाराज हो गयी और पादरियों ने इसे मानने से इंकार कर दिया। 6 फरवरी, 1791 को एक अन्य घोषणा द्वारा सन्यासियों के मठों का अन्त करके उन्हें सांसारिक जीवन व्यतीत करने को कहा गया।

राष्ट्रीय सभा ने आर्थिक स्थिति सुधारने हेतु निर्धनों के लिए 'चैरिटी वर्कशाप' स्थापित किए। किसानों से भूमिकर के अतिरिक्त कोई भी कर लेना बन्द कर दिया। अनाज के व्यापार को कर मुक्त किया और देश छोड़कर गये कुलीन लोगों की सम्पत्ति को राष्ट्रीय सम्पत्ति घोषित किया।

नवीन संविधान का निर्माण- राष्ट्रीय सभा ने 1791 का संविधान, जो फ्रांस के इतिहास में पहला लिखित संविधान था, बनाया। इसके द्वारा फ्रांस में संवैधानिक राजतंत्र की स्थापना की गयी। इसमें जनता की इच्छा और अनुमति को सरकार की सभी शक्तियों का स्रोत माना गया। कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका को पूर्णतः अलग-अलग कर दिया गया। एक सदन वाली प्रतिनिधि सभा को कानून बनाने का अधिकार दिया गया। राजा तथा उसके मंत्री व्यवस्थापिका द्वारा पारित कानून के आधार पर ही शासन कर सकते थे। न्याय सस्ता और सुलभ बनाया गया और जूरी व्यवस्था लागू की गयी। प्रशासन का विक्रेंदीकरण कर दिया गया। सबसे छोटी इकाई कम्यून थी। राजा के व्यक्तिगत व्यय हेतु एक निश्चत राशि भी निर्धारित कर दी गयी।

21 सितम्बर, 1791 को राजा ने नए संविधान को स्वीकार करके उसके अनुसार र्का करने का वचन दिया। 30 सितम्बर, 1791 में राष्ट्रीय सभा विसर्जित कर दी गयी।

16.4.4 व्यवस्थापिका सभा

1791 के संविधान अनुसार फ्रांस में संवैधानिक राजतंत्र की स्थापना हेतु व्यवस्थापिका सभा का निर्वाचन किया गया। नई विधान सभा, जिसमें 745 सदस्य थे, का प्रथम अधिवेशन 1 अक्टूबर, 1791 में हुआ। इस सभा में कई दलों के प्रतिनिधि विजित हुए- राजतंत्रवादी, संविधानवादी, सेण्टर पार्टी और गणतंत्रवादी। गण्तंत्रवादियों में भी दो गुट थे- जिंरोदिस्त और जैकोबिन। इस सभा को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

1.फ्रांस में राजतंत्र के समर्थक बहुत से सामन्त और राजा के भाई विदेश भाग गये थे, जहां वह यूरोप के अन्य राजतंत्रों के साथ मिलकर क्रान्ति विरोधी षड़यन्त्र रच रहे थे। व्यवस्थापिका सभा ने विदेश गए सामन्तों को दो माह के अन्दर लौट आने अन्यथा देशद्रोही घोषित करने का आदेश दिया। राजा ने इस आदेश पर हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया।

2. लौकिक संविधान की शपथ न लेने वाले पादरियों को सभा ने यह आदेश दिया कि यदि वह शपथ नहीं लेंगे तो उनको पद से हटा दिया जायेगा और उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली जायेगी। राजा ने इस आदेश को भी अस्वीकार कर दिया।

3. फ्रांस के राजा के समर्थन में 27 अगस्त, 1791 को आस्ट्रिया और प्रशा के शासकों ने पिलनित्स की घोषणा की जिसमें कहा कि फ्रांस की समस्या सभी राज्यों की समस्या है और हम इसको समाप्त करने के लिए फ्रांस में सशस्त्र हस्तक्षेप करेंगे।

अंततः राजतंत्र को समाप्त करने के उद्देश्य से व्यवस्थापिका सभा में गणतंत्रवादी दल ने युद्ध को आवश्यक मानकर युद्ध करने का प्रस्ताव रखा, जो बहुमत से पास हुआ। 20 अप्रैल, 1792 को आस्ट्रिया के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी गयी। प्रशा के सेनापति ने घोषणा की कि फ्रांस की जनता ने लुई 16वे तथा उसके परिवार को कोई क्षति पहुंचाई तो पेरिस को नष्ट कर दिया जायेगा। फ्रांस की जनता इससे उत्तेजित हो गयी और लुई 16वें को देशद्रोही मानकर उसके

महल तुइलरी पर धावा बोल दिया। व्यवस्थापिका सभा ने 11 अगस्त, 1792 को राजा लुई 16वें को निलम्बित कर दिया तथा गणतंत्र की स्थापना करने के लिए नवीन संविधान का गठन करने हेतु राष्ट्रीय सम्मेलन का चुनाव करने का निश्चय किया। तत्पश्चात पेरिस कम्यून को अन्तरिम सरकार चलाने का कार्यभार सौंप कर व्यवस्थापिका सभा ने स्वयं को भंग कर दिया।

पेरिस कम्यून की अन्तरिम सरकार ने लुई 16वें को बन्दी बना लिया और 2 सितम्बर से 6 सितम्बर, 1792 में हजारों की संख्या में राजतंत्र के समर्थकों और क्रान्ति विरोधियों को मौत के घाट उतार दिया। 20 सितम्बर, 1792 को फ्रांस ने आस्ट्रिया और प्रशा की सेनाओं को वाल्मी के युद्ध में पराजित किया। इसी दिन राष्ट्रीय सम्मेलन का चुनाव हुआ और फ्रांस में गणतंत्र की स्थापना हुयी।

16.4.5 राष्ट्रीय सम्मेलन (नेशनल कन्वेंशन)

राष्ट्रीय सम्मेलन फ्रांस की तीसरी क्रान्तिकारी सभा थी, जिसने 21 सितम्बर, 1792 से 20 अक्टूबर, 1795 तक शासन किया। इसमें कुल 782 सदस्यों में 200 जिरोंदिस्त, 100 जैकोबिन तथा 482 स्वतंत्र सदस्य थे।

राष्ट्रीय सम्मेलन ने गणतंत्र की घोषणा करके देश के लिए नया कैलेण्डर बनाया। राजा लुई 16वें को देशद्रोही घोषित किया तथा 21 जनवरी, 1793 को उसे गिलोटिन पर चढ़ाकर मृत्युदण्ड दिया। विदेशी आक्रमणों का सामना करने के लिए तीन लाख सैनिकों की एक विशाल सेना का गठन किया। 6 अप्रैल, 1793 को लोक सुरक्षा समिति गठित की, जिसे कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के असीमित अधिकार दिए गए। इसके प्रमुख सदस्य उग्र जैकोबिन दल के राब्सपियरे और कार्नो थे। एक अन्य समिति 'सामान्य रक्षा समिति' की भी स्थापना की, जिसका कार्य देश में शान्ति और व्यवस्था बनाये रखना था। इसे भी असीमित अधिकार दिए गए। क्रान्ति विरोधियों को दंडित करने के लिए क्रान्तिकारी न्यायालय की भी स्थापना की। इसके द्वारा आतंक का शासन स्थापित किया गया। इस दौरान राज परिवार के सदस्यों, हजारों की संख्या में क्रान्ति विरोधियों तथा प्रमुख जिरोंदिस्त सदस्यों को गिलोटिन पर चढ़ाया गया। 28 जुलाई, 1794 को राब्सपियरे की मृत्यु के साथ आतंक के शासन का अन्त हुआ।

राष्ट्रीय सम्मेलन ने फ्रांस में दासता प्रथा तथा वर्ग भेद समाप्त करके सामाजिक और आर्थिक समानता स्थापित करने का प्रयास किया। फ्रेंच को राष्ट्रभाषा घोषित किया तथा स्कूलों और पुस्तकालयों की स्थापना की। बुद्धि पूजा को महत्व दिया गया। विवाह और तालाक के नियम सरल बनाये गए। वित्तीय समस्या के समाधान हेतु वित्त विशेषज्ञ परिषद का गठन किया।

राजा को प्राणदण्ड देने के कारण कई यूरोपीय देश फ्रांस के विरोधी हो गये। आस्ट्रिया, प्रशा के साथ इंग्लैण्ड, स्पेन, हालैण्ड, सार्डिनिया ने मिलकर फ्रांस के विरूद्ध संगठन बनाया और फ्रांस पर आक्रमण कर दिया। प्रारम्भ में फ्रांस को पराजित करने के बाबजूद यह प्रथम संगठन फ्रांस का अहित करने में असफल रहा।

राष्ट्रीय सम्मेलन की स्थापना का उद्देश्य संविधान का निर्माण करना था। अतः उसने 1795 में संविधान तैयार किया, जिसे तृतीय वर्ष का संविधान कहा जाता है। तत्पश्चात 26 अक्टूबर, 1795 को राष्ट्रीय सम्मेलन को भंग कर दिया गया।

16.4.6 निदेशक मण्डल (डायरेक्टरी)

राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा निर्मित तृतीय वर्ष के संविधान में दो सदन वाली विधान सभा और पाँच सदस्यों के निदेशक मण्डल वाली कार्यपालिका का प्रावधान रखा गया था। उसके अनुसार पाँच सदस्यों -बर्रास, कार्नो, एबेसिया, रूबेल और ला रिबेलियरे का चयन करके निदेशक मण्डल का गठन किया गया। इस डायरेक्टरी ने 27 अक्टूबर,1795 से 19 अक्टूबर, 1799 तक शासन किया।

डायरेक्टरी का चार वर्ष का कार्यकाल अनिश्चितता और संकटपूर्ण रहा। इसके सदस्य अयोग्य और भ्रष्ट तथा अपने स्वार्थों में निहित थे। फलतः शासन व्यवस्था कमजोर पड़ने लगी और डायरेक्टरी के विरूद्ध षड़यन्त्र रचे जाने लगे। डायरेक्टरी का कार्यकाल यूरोपीय देशों के साथ लड़े गये युद्धों और उनमें तेजी से उभरते सेनापति नेपोलियन की प्रारम्भिक सैनिक सफलताओं के कारण याद किया जाता है। नेपोलियन इन युद्धों के कारण इतना लोकप्रिय हो गया कि उसके द्वारा डायरेक्टरी के शासन का अन्त करने पर जनता ने कोई विरोध नहीं किया।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. राष्ट्रीय संवैधानिक सभा के कार्यों का वर्णन कीजिए।
2. व्यवस्थापिका सभा को किन कठिनाईयों का सामना करना पड़ा ?
3. राष्ट्रीय सम्मेलन के कार्यों पर टिप्पणी लिखो।

16.5 नेपोलियन का उदय

डायरेक्टरी के अन्तिम दिनों में फ्रांस में नेपोलियन का उदय हुआ। नेपोलियन किस प्रकार फ्रांस की सत्ता और यूरोपीय राजनीति का केन्द्र बना समझने के लिए आपको उसके प्रारम्भिक जीवन के विषय में जानना जरूरी है।

16.5.1 प्रारम्भिक जीवन

नेपोलियन वंश से इतालवी, जन्म से कोर्सिकी और राष्ट्रीयता से फ्रांसीसी था। उसका जन्म कोर्सिका द्वीप में अजासियो नामक स्थान पर 15 अगस्त, 1769 को एक इटालियन परिवार में हुआ। उसके पिता कार्लो बोनापार्ट वकील थे, परन्तु उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। उसकी माँ लेटीजिया रमोलिनो एक परिश्रमी महिला थी और उसको सदैव महान बनने की प्रेरणा देती थी। नेपोलियन चार भाइयों और तीन बहनों के बाबजूद एकाकी रहना पसन्द करता था। अपने विद्यार्थी जीवन में वह कुलीन वर्ग का न होने के कारण हीनभावना से ग्रसित रहता था और इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप वह जीवन भर कुलीन परिवारों से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करता रहा।

फ्रांस की सरकार ने कोर्सिका के विद्रोहियों को शान्त करने हेतु उन्हें रियायत देना प्रारम्भ किया, तब उसका प्रभाव नेपोलियन के जीवन पर भी पड़ा। उसे फ्रांस में ब्रीन के सैनिक स्कूल मे शिक्षा प्राप्त करने हेतु छात्रवृत्ति प्राप्त हुयी। पढ़ने में उसकी रूचि थी और वह भूगोल, इतिहास, राजनीति, गणित और महापुरूषों की जीवनी पढ़ता था। वह जूलियस सीजर और सिकन्दर से प्रभावित था।

शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात 16 वर्ष की उम्र में वह फ्रांस की सेना के तोपखाने हेतु चुन लिया गया और उसे स्थल सेना में लेफ्टीनेंट जनरल बना दिया गया। इसी दौरान राष्ट्रसभा के द्वारा कोर्सिका को फ्रांस के अन्य राज्यों की भंाति

समानता का अधिकार देने पर नेपोलियन जैकोबीन दल का सदस्य बन गया। नेपोलियन को उन्नति करने का प्रथम अवसर तूलों में मिला। 28 अगस्त, 1793 को अंग्रेजी जहाजी बेडे ने फ्रांस पर आक्रमण कर तूलों पर अधिकार कर लिया। परन्तु नेपोलियन ने तीन महीने के अन्दर अंग्रेज सेना को पराजित करके तूलों से मुक्त करा दिया। यह नेपोलियन के जीवन की प्रथम महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। इस सफलता के कारण उसे ब्रिगेडियर जनरल का पद प्रदान किया गया। उसको दूसरी महत्वपूर्ण सफलता 5 अक्टूबर, 1795 में मिली, जब पेरिस में संविधान से असंतुष्ट होकर लोगों ने राष्ट्रीय सम्मेलन के विरूद्ध विद्रोह कर दिया। नेपोलियन ने विद्रोहियों का पूर्ण दमन करके फ्रांस को गृह युद्ध से बचा लिया। राष्ट्रीय सम्मेलन की रक्षा करने के कारण वह सेनापति बर्रास का स्नेहपात्र बन गया और उसे समस्त आन्तरिक सेना का सेनापति नियुक्त कर दिया गया। 1796 में उसने जोसेफिन बोआरनै नामक विधवा से विवाह कर लिया। जोसेफिन के अभिजात्य संबधों के कारण यह विवाह नेपोलियन की उन्नति में सहायक बना।

16.5.2 प्रारम्भिक सैनिक उपलब्धियां

नेपोलियन की सैनिक योग्यता से प्रभावित हो डायरेक्टरी ने उसे इटली के अभियान का सेनाध्यक्ष नियुक्त किया। इटली का अभियान अप्रैल,1796 से अप्रैल,1797 तक चला। आस्ट्रिया और सार्डीनिया की सम्मिलित सेना में सत्तर हजार सैनिक थे और नेपोलियन की सेना उसकी आधी थी। सर्वप्रथम उसने सार्डीनिया पर आक्रमण करके उसे बुरी तरह पराजित किया और उससे सेवॉय और नीस के प्रदेश प्राप्त किये। इसके बाद नेपोलियन ने मिलान पर अधिकार किया और रिवोली और आरकोला के युद्धों में अपनी जान को जोखिम में डालकर आस्ट्रिया की सेना को परास्त किया। फरवरी, 1797 में माण्टुआ भी छीन कर वह आस्ट्रिया की राजधानी वियना की ओर बढ़ने लगा तो आस्ट्रिया के सम्राट ने सन्धि करने का प्रस्ताव रखा और युद्ध रोक दिया गया।

इस मध्य उसने मई, 1797 में परमा, मोडेना के ड्यूकों तथा जून, 1797 में नेपिल्स के शासक और पोप से संधि करके लड़े गये युद्धों का खर्चा भी विजित प्रदेशों से प्राप्त किया। पोप ने नेपोलियन को आविन्यों, वालोन्या और फेरारा का क्षेत्र दे दिया और 3 करोड़ फ्रेंक, 500 बहुमूल्य ग्रंथ तथा अनेक कलात्मक चित्र भी भेंट किये। नेपोलियन ने विजित क्षेत्र को ट्रान्सपोडेन और सिस्पेडेन गणतंत्र के रूप में संगठित किया। तत्पश्चात इटली के पूर्वी क्षेत्र वेनिस पर अधिकार कर लिया। जून में इन क्षेत्रों का पुनर्संगठन करके उसने ट्रान्सपोडेन, सिस्पेडेन, रोमान्या, लीगेशन्स और वेनिस के गणतंत्र को मिलाकर सिसएल्पाइन गणतंत्र और जिनोआ तथा उत्तर पश्चिम के प्रदेशों को मिलाकर लिगूरियन गणतंत्र बना दिया। 1799 में उसने दक्षिणी इटली के क्षेत्रों नेपल्स आदि में पार्थेनोपियन गणतंत्र की स्थापना की। इस अभियान से अधिकांश इटली पर आस्ट्रिया का प्रभाव खत्म हो गया और फ्रांस का प्रभाव कायम हो गया।

अंत में नेपोलियन ने आस्ट्रिया के साथ 17 अक्टूबर, 1797 को कैम्पो फोर्मियो की संधि की। इस सन्धि के अनुसार-

- आस्ट्रिया द्वारा फ्रांस को बेल्जियम प्रदान कर दिया गया।
- लोम्बार्डी पर फ्रांस का अधिकार स्वीकार कर लिया गया।
- राइन का प्रदेश भी फ्रांस को दे दिया गया।

- वेनिस के इरिट्रिया और डाल्मेशिया क्षेत्र आस्ट्रिया को देकर वेनिस के पश्चिमी भाग को सिसएल्पाइन में मिलाकर फ्रांस के अधीन कर दिया गया।

यह सन्धि नेपोलियन की सैनिक सफलता के साथ-साथ उसकी महान कूटनीतिक विजय थी। इस प्रकार अपने एक ही अभियान में नेपोलियन ने फ्रांस की राजनैतिक सीमा उसकी प्राकृतिक सीमाओं तक मिला दी। फ्रांस में नेपोलियन अत्यन्त लोकप्रिय हो गया और उसे राष्ट्रीय नायक कहा जाने लगा।

फ्रांस के विरूद्ध बने प्रथम गुट में अब इंग्लैण्ड ही शेष रह गया था, जिसे प्रत्यक्ष युद्ध में हराना सम्भव न जानकर नेपोलियन ने मिश्र पर अधिकार करने की योजना बनाई। उसका विचार था कि मिश्र पर अधिकार करके वह इंग्लैण्ड के भूमध्यसागरीय और एशियायी व्यापार को बाधा डालकर उसकी आर्थिक शक्ति को क्षीण कर देगा। फ्रांस के डायरेक्टर भी नेपोलियन की लोकप्रियता से भयभीत होकर उसे फ्रांस से दूर रखना चाहते थे। अतः उसकी मिश्र अभियान की योजना को स्वीकृति मिल गयी।

19 मई, 1798 को नेपोलियन ने लगभग चालीस हजार सैनिकों के साथ मिश्र की ओर प्रस्थान किया। मिश्र के प्रसिद्ध नगरों सिकन्दरिया और माल्टा पर अधिकार करके वह काहिरा पहुँचा और पिरामिडों के युद्ध में विजय प्राप्त की। नील नदी के तटीय क्षेत्र पर उसका पूर्ण नियंत्रण हो गया। इस अभियान में उसके साथ भूगर्भवेत्ता, पुरातत्ववेत्ता, इंजीनियर, डॉक्टर आदि विद्वान भी गये थे, जिन्होंने मिश्र की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का अध्ययन करके कई महत्वपूर्ण खोजें कीं। नेपोलियन के स्थायी कार्यों में मिश्र में किए गए खोजपूर्ण कार्यों की गणना प्रमुख रूप से की जाती है।

नेपोलियन काहिरा में ही था तब इग्लैण्ड के सेनापति नेल्सन ने अबूकर की खाड़ी के युद्ध में फ्रांसीसी बेड़े को परास्त किया। मिश्र पर अधिकार करने के कारण तुर्की के सुल्तान ने भी नेपोलियन के विरूद्ध युद्ध प्रारम्भ कर दिया। भारत से लॉर्ड वेलेजली ने नेल्सन की सहायतार्थ सेना भेज दी। इस प्रकार नेपोलियन की सेना चारों ओर से घिरकर नील नदी के युद्ध में नेल्सन के हाथों बुरी तरह पराजित हुयी। नेपोलियन ने तुर्की के अधीनस्थ सीरिया पर आक्रमण किया, परन्तु वहाँ भी असफल रहा। बीमारी और अंग्रेजों द्वारा लगातार पीछा किये जाने के कारण उसकी सेना नष्ट होती जा रही थी। यूरोप के शासकों ने फ्रांस के विरूद्ध द्वितीय गुट की स्थापना कर ली। अंत में नेपोलियन ने थोड़े से साथियों के साथ छोटे जहाज से फ्रांस लौटने का फैसला किया।

नेपोलियन की प्रारम्भिक सैनिक उपलब्धियाँ विशेषरूप से इटली की सफलता ने फ्रांस में उसको लोकप्रिय बना दिया था। फ्रांस में वापस आने पर उसका फ्रांसीसी जनता ने जोरदार स्वागत किया। इस समय डायरेक्टरी (निदेशक मण्डल) के भ्रष्ट शासन और देश में व्याप्त अराजकता से फ्रांस की जनता तंग आ गयी थी। महत्वाकंाक्षी नेपोलियन ने सत्ता पर अधिकार करने हेतु उचित समय जानकर डायरेक्टरी के विरूद्ध षडयन्त्र रचा। इस षडयन्त्र में उसने ऐबेसीये, तालिरां और फूशे आदि को अपने साथ मिला लिया। तीन प्रमुख निदेशकों पर दबाब डालकर इस्तीफा ले लिया गया और दो निदेशकों को नजरबंद कर दिया गया। वरिष्ठ परिषद के अधिकांश सदस्य नेपोलियन के समर्थक थे तथा पांच सौ सदस्यों की परिषद का अध्यक्ष उसका भाई लुसीयन था। दोनों सदनों के अधिवेशन में विरोधियों को अपने सैनिकों के

द्वारा भयभीत कर नेपोलियन ने संचालक मण्डल को समाप्त करने का प्रस्ताव पास करा लिया। इस प्रकार 10 नवम्बर, 1799 को 19वें ब्रूमेयर के आठवें कूप द इतात द्वारा सत्ता परिवर्तन कर दिया गया।

16.5.3 1799 का संविधान

डायरेक्टरी के अन्त के बाद सत्ता तीन कौंसिल- नेपोलियन, सीये और ड्यूको के हाथ में आ गयी। नया संविधान बनाने का कार्य कौन्सिल को सौंपा गया। 1799 का संविधान फ्रांस की क्रंाति के पश्चात चौथा संविधान था। इस संविधान की रूपरेखा नेपोलियन द्वारा इस तरह तैयार की गयी कि सारी शक्ति उसी के अधिकार में रहे। इस संविधान से फ्रांस की आवश्यकता की पूर्ति और नेपोलियन के निरंकुश शासन की स्थापना हुयी।

कार्यपालिका के लिए तीन सदस्यों की कौंसिल समिति का प्रावधान रखा गया, जिसकी कार्यावधि दस वर्ष रखी गयी। इनमें प्रथम कौंसिल को समिति का अध्यक्ष बनाया गया और यह पद नेपोलियन को दे दिया गया। शासन की सम्पूर्ण शक्ति प्रथम कौंसिल में केन्द्रित थी। द्वितीय और तृतीय समिति का कार्य प्रथम कौंसिल को परामर्श देना था। नेपोलियन ने सीये और ड्यूक को हटाकर अपने समर्थक कैम्बेसरी और लैब्रून को द्वितीय और तृतीय समिति नियुक्त कर दिया था। इससे सम्पूर्ण शक्ति उसी के हाथ में केन्द्रित हो गयी। संविधान में चार सदनों वाली व्यवस्थापिका का प्रावधान रखा गया।

- राज्य परिषद-इसका कार्य विधेयक की रूपरेखा तैयार करना तथा उच्च न्यायालय के कार्य करना था।
- सीनेट-यह संविधान की सुरक्षा के लिए उत्तादायी थी।
- ट्रिब्यूनेट-विधेयक पर वाद विवाद कर सकती थी, लेकिन पारित नहीं कर सकती थी।
- व्यवस्थापिका सभा-विधेयक पर मतदान कर सकती थी, लेकिन वाद विवाद नहीं कर सकती थी।

इन सभाओं के सदस्यों का चुनाव सूची तैयार करके अप्रत्यक्ष चुनाव द्वारा किया जाता था। सूचियां इस तरह से तैयार की जाती थी कि इनका सदस्य वही हो सकता था, जिसको नेपोलियन चाहे। इस प्रकार गणतंत्र केवल दिखावा मात्र था, वास्तविक सत्ता नेपोलियन के ही हाथ में थी।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नेपोलियन के जीवन की घटनाओं पर प्रकाश डालिए।
2. कैम्पो फोर्मियो की संधि की प्रमुख धारायें बताते हुए उसके महत्व को स्पष्ट करिए।
3. 1799 के संविधान पर टिप्पणी लिखो।

16.6 प्रथम कौंसिल के रूप में सुधार

फ्रांस में व्याप्त अव्यवस्था को दूर करने के लिए प्रथम कौंसिल बनने के पश्चात नेपोलियन ने अनेक सुधार किए। उसके प्रशासनिक कौशल को प्रकट करने वाले यह सुधार उसकी स्थायी उपलब्धियाँ सिद्ध हुये।

फ्रांस की आन्तरिक व्यवस्था स्थापित करते समय उसने एक ओर क्रान्ति के सिद्धान्तों को स्थिरता प्रदान की तो दूसरी ओर बूर्बा राजवंश द्वारा स्थापित परम्परागत व्यवस्था को भी नवीन रूप देकर पुनर्स्थापित किया। उसके द्वारा किए

गए कार्यों से फ्रांस में आधुनिक राज्य और समाज के सिद्धान्तों की स्थापना हुयी। सभी सुधारों के मूल में समानता के सिद्धान्त को अधिक महत्व दिया गया। लेकिन प्रशासनिक व्यवस्था का केन्द्रीकरण, प्रेस पर प्रतिबन्ध आदि द्वारा उसने बूर्बा कालीन व्यवस्था के कुछ क्रान्ति विरोधी तत्वों को भी शासन में समाहित किया। उसका मानना था कि फ्रांस की जनता समानता चाहती है, स्वतंत्रता नहीं।

16.6.1 प्रशासनिक सुधार

नेपोलियन ने प्रथम कौंसिल का पद ग्रहण करते ही स्थानीय प्रशासन की समस्त व्यवस्था को केन्द्रित कर दिया। उसने देश के प्रशासकीय विभाजन को पूर्ववत रहने दिया। 1800 में उसने पुरातन व्यवस्था के इन्टैंडेंटों के सदृश अधिकारियों की नियुक्ति करके पुरातन व्यवस्था में थोड़े संशोधन के साथ केंद्रीकृत शासन स्थापित किया। अब केन्द्र द्वारा प्रत्येक विभाग में प्रीफेक्ट और जिलों में उप प्रीफेक्ट तथा नगरों और कम्यून में मेयर नियुक्त किये जाने लगे। यह अधिकारी निरन्तर केन्द्र के सम्पर्क में रहते थे। केन्द्र सरकार नीति निर्धारण करती थी, इनका कार्य केन्द्र की नीतियों को समान रूप से सम्पूर्ण राज्य में लागू करना था। इनकी सहायतार्थ निर्वाचित परिषदों की स्थापना भी की गयी, जिनका कार्य अपने स्थानों के लिए राष्ट्रीय करों को तय करना था। नेपोलियन ने सचिवालय का भी विकास किया और मारे के नियंत्रण में राज्य मंत्रालय बनाया, जो देश का केंद्रीय लेखा कार्यालय बन गया। स्थानीय प्रशासन और नौकरशाही की यह व्यवस्था थोड़े परिवर्तनों के साथ आज भी फ्रांस में प्रचलित है।

16.6.2 पोप से समझौता

क्रान्तिकालीन सरकारों ने चर्च के प्रभाव को कम करने का प्रयत्न किया, परन्तु फ्रांस में अधिकांश जनता कैथोलिक और रूढ़िवादी थी। राजतंत्रवादियों के साथ मिलकर धार्मिक विरोधी सरकार के लिए समस्या उत्पन्न करते थे। नेपोलियन का धर्म के सम्बन्ध में स्पष्ट मत था कि फ्रांस का एक धर्म होना चाहिए, जो राज्य के नियंत्रण में रहे। इस दृष्टिकोण और तत्कालीन परिस्थितियों के साथ उसने धार्मिक नीति का निर्धारण किया और पोप के साथ सम्बन्ध सुधारने का कूटनीतिक प्रयास किया। पोप भी फ्रांस जैसे महत्वपूर्ण देश को अपने प्रभाव क्षेत्र से अलग नहीं रखना चाहता था। 1801 में नेपोलियन ने पोप पायस सप्तम के साथ एक समझौता किया, जिसको कोन्कोर्दा कहा गया। इस समझौते के अनुसार-

1. कैथोलिक धर्म को फ्रांस की बहुसंख्यक जनता का धर्म स्वीकारा गया तथा फ्रांस के सभी नागरिकांे को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की गयी।
2. चर्च को राज्य के अधीन माना गया और चर्च के अधिकारी राज्य के कर्मचारी माने गये।
3. चर्च के बिशपों की नियुक्ति का अधिकार प्रथम कौंसिल को मिला, पोप को मात्र औपचारिक स्वीकृति का अधिकार दिया गया। बिशप सरकार की अनुमति से पादरी नियुक्त कर सकते थे।
4. राज्य बिशपों और पादरियों को वेतन देता था और उनको देशभक्ति की शपथ लेनी होती थी।
5. क्रान्ति के दौरान चर्च की जो भूमि जब्त की गयी थी, उसको वापिस नहीं किया गया तथा चर्च को स्थायी सम्पत्ति खरीदने का अधिकार भी नहीं रहा।

6. शिक्षा पर चर्च का नियन्त्रण समाप्त कर दिया गया।

7. क्रान्ति के समय बन्दी बनाये गये पादरियों को मुक्त कर दिया गया तथा जो फ्रांस छोड़कर चले गये थे, उन्हें पुनः आने की अनुमति दे दी गयी।

इस प्रकार इस समझौते से नेपोलियन ने उन सभी बातों को पोप से स्वीकार करा लिया, जिसका प्रारम्भ में पोप ने विरोध किया था। परन्तु फ्रांस के उग्रवादी और कैथोलिक दोनों ही इस समझौते से संतुष्ट नहीं थे। कैथोलिकों की इच्छानुसार चर्च को अपना पुराना महत्व नहीं प्राप्त हुआ था, दूसरी ओर क्रान्ति के विचारों के विपरीत न चाहते हुए भी कैथोलिक फ्रांस का राज्य धर्म बन गया था। पोप और नेपोलियन के सम्बन्ध भी बहुत समय तक अच्छे न रह सके। नेपोलियन ने प्रोटेस्टेंटो के अधिकारों को स्पष्ट करने के लिए अधिकार पत्र दिया और फ्रांस में धर्मनिरपेक्ष राज्य का संस्थापक बना। 1804 में अपने राज्याभिषेक के दौरान उसने पोप से मुकुट धारण करने के स्थान पर पोप के हाथ से मुकुट लेकर स्वयं अपने हाथों से पहन कर पोप का अपमान किया था। पोप पायस सातवें ने महाद्वीपीय योजना को स्वीकारने से इन्कार कर दिया, तो नेपोलियन ने पोप के राज्य पर अधिकार कर लिया। तब पोप ने नेपोलियन को धर्मद्रोही घोषित कर दिया। फलतः नेपोलियन ने पोप को बन्दी बना लिया। इससे फ्रांस और यूरोप के कैथोलिक उससे नाराज हो गये।

इसके बाबजूद कोन्कोर्द समझौता अगले 100 वर्षों तक जारी रहा और चर्च और राज्य में एकता बनी रही।

16.6.3 कानूनी सुधार

नेपोलियन का सबसे स्थायी कार्य नागरिक कानूनों का संकलन था। उसने कानूनी क्षेत्र में व्याप्त असंगतियों को दूर करने और एकरूपता स्थापित करने की ओर प्राथमिकता से ध्यान दिया। इसके लिए उसने चार सदस्यों की एक समिति गठित की, जिसके द्वारा तैयार की गयी कानूनी संहिता को नेपोलियन कोड कहा गया। इसमें पाँच तरह के कानूनों का संकलन हुआ।-

- नागरिक संहिता (सिविल कोड)
- नागरिक प्रक्रिया की संहिता (कोड ऑफ सिविल प्रोसीजर)
- फौजदारी कानून (पीनल कोड)
- अपराधमूलक प्रक्रिया की संहिता (कोड ऑफ क्रिमिनल प्रोसीजर)
- व्यवसाय सम्बन्धी कानून (कॉमर्शियल कोड)

इन कानूनों को तीन स्रोतों - फ्रांस के परम्परागत कानून, रोमन कानून और क्रान्ति के अनुभवों से संकलित किया गया। उसकी 1804 में बनी नागरिक संहिता (सिविल कोड) उसके सभी कानूनों मे सबसे अधिक प्रभावशाली थी। इनमें समानता के सिद्धान्त को स्वीकारा गया, स्वतंत्रता को नियंत्रित किया गया तथा विशेषाधिकार और सामन्ती नियम समाप्त कर दिये गये।

नागरिक संहिता के अनुसार-परिवार को एक पवित्र इकाई माना गया और उसमें पिता को सर्वोपरि माना गया। पैतृक सम्पत्ति पर सभी पुत्रों का सामान अधिकार माना गया। सिविल मैरिज और तलाक को स्वीकारा गया। लेकिन स्त्रियों को

पूर्णतया उनके पति के अधीन कर दिया गया। व्यक्तिगत सम्पत्ति के सिद्धान्त को मान्यता दी गई और भूमि पर स्वामी के अधिकार को सख्त बनाया गया। ब्याज की दरें निश्चित कर दी गयीं। एकमात्र सरकार ही सम्पत्ति का अधिग्रहण कर सकती थी। औद्योगिक समूह और धार्मिक संस्थान सम्पत्ति का संग्रह नहीं कर सकते थे।

नागरिक संहिता के अतिरिक्त जो अन्य संहिताये लागू की गयीं, वह निरंकुशता की भावना से प्रभावित थीं। दण्ड संहिता में राजनीतिक अपराधों को रोकने के लिए मृत्यु दंड, उम्र कैद, देश निर्वासन, संपत्ति जब्त जैसे कानून लागू किए गए। फौजदारी मामलो में जूरी प्रथा समाप्त कर दी गयी। व्यवसाय संहिता साधारण व्यापार, समुद्री व्यापार, दिवालियापन तथा अन्य व्यापारिक मामलों का नियमन करती थी।

नेपोलियन की कानूनी संहिता फ्रांस के आधुनिक कानूनों का स्रोत है। इस कानूनी संहिता के निर्माण में नेपोलियन ने व्यक्तिगत रूचि दिखायी थी और उसकी इच्छानुसार ही इनका निर्माण हो सका था। इस कारण उसे दूसरा जस्टीनियन भी कहा जाता है।

16.6.4 शिक्षा में सुधार

नेपोलियन ने शिक्षा को राष्ट्र के विकास और प्रशासनिक व्यवस्था सुव्यवस्थित करने का प्रमुख साधन माना। उसने शिक्षा के विकास हेतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनाई, जिसके द्वारा शिक्षा पर राजकीय नियंत्रण लगा कर उसे राष्ट्रीय और धर्मनिरपेक्ष बनाया गया। इस नई शिक्षा का आधार था-ईसाई धर्म की मूलभूत नैतिकता, राज्याध्यक्ष के प्रति समर्पण और विश्वविद्यालय के मूल नियमों का पालन। नेपोलियन ने शिक्षा को तीन स्तरों पर विभाजित किया।-प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा।

प्रत्येक नगर में प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय स्थापित किये गये। प्रीफेक्टों और उप प्रीफेक्टों की देख रेख में शिक्षा का कार्य सौंपा गया। अनुशासन और सैनिक शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया जाता था। माध्यमिक स्तर पर लीसे नामक सैनिक स्कूलों की स्थापना की गयी। उच्च शिक्षा के लिए पेरिस विश्वविद्यालय का पुनर्गठन किया गया। विश्वविद्यालय पर सरकार का पूर्ण नियन्त्रण लागू किया गया। पेरिस विश्वविद्यालय के प्रमुख शिक्षकों और अधिकारियों की नियुक्ति नेपोलियन स्वयं करता था। विश्वविद्यालय स्वायत्त संस्था के स्थान पर शिक्षा विभाग का एक अंग बना दिये गए। विश्वविद्यालय के प्रमाणपत्र के बिना नया स्कूल खोलने या सार्वजनिक रूप से शिक्षा देने का किसी को अधिकार नहीं था। शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए नॉमर्ल स्कूल खोले गये। नेपोलियन ने पैदल सेना के लिए सेंट सीर ऑफिसर्स स्कूल की स्थापना की और तकनीकी शिक्षा हेतु एकोल पॉलीटैक्नीक की स्थापना की। निर्धन और मेधावी छात्रों हेतु छात्रवृत्ति की व्यवस्था भी की गयी। नेपोलियन ने नारी शिक्षा ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उनके लिए प्राथमिक स्तर तक ही शिक्षा की व्यवस्था की गयी, जो धार्मिक संस्थाओं के अधिकार में रखी गयी।

16.6.5 आर्थिक सुधार

नेपोलियन ने प्रथम कौंसिल बनने के पश्चात आर्थिक स्थिति सुधारने के कई प्रयास किए। आर्थिक क्षेत्र में सरकारी नियन्त्रण और मुद्रा के विकास हेतु नेपोलियन ने पेरेगो के सहयोग से 1800 में बैंक ऑफ फ्रांस की स्थापना की। इसे नोट जारी करने का एकाधिकार दिया गया। साथ ही इस बैंक से ऋण प्राप्त करने की व्यवस्था भी की गयी। बैंक ने फ्रांस

की मुद्रा स्थिति को दृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कृषि के विकास हेतु बंजर और रेतीले इलाकों को उपजाऊ बनाने का प्रयास किया गया। नहरों की व्यवस्था ठीक की गयी। परन्तु भू सुधार और उत्पादन वृद्धि हेतु कोई मौलिक सुधार नहीं किये गए। राजस्व और करों की वसूली केन्द्रिय सरकार के अधीन रखी गयी। इससे करदाता और सरकार दोनों को लाभ हुआ। करों को व्यक्ति की आर्थिक स्थिति के आधार पर निर्धारित किया गया।

नेपोलियन ने औद्योगिक क्षेत्र में मशीनीकरण करने के स्थान पर पुरातन व्यवस्था को ही बनाये रखा। वह औद्योगिक क्रान्ति के महत्व को नहीं समझ सका। फ्रांस के कारखाने पुराने ढंग से उत्पादन करते रहे। यद्यपि ऊनी उद्योग, लोहे का निर्माण, नील, चुकन्दर से चीनी तथा सोडा बनाने की विधि का विकास हुआ। तथापि नवीन तकनीकी का प्रयोग और मशीनीकरण को बढ़ावा न देने के कारण फ्रांस उच्चकोटि के माल का उत्पादन न कर सका। उसने मजदूर संघों को गैर कानूनी घोषित कर मजदूरों पर कड़ा नियन्त्रण स्थापित किया। परन्तु मजदूरों और किसानों की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति का वह विशेष ध्यान रखता था। उसने अन्न के निर्यात पर प्रतिबन्ध और डबलरोटी के दाम निश्चित कर दिए थे। उसके युद्धों पर व्यय का दबाब राज्य की आय पर नहीं पड़े इसलिए वह युद्धों का खर्च भी विजित प्रदेश से वसूलता था। विजित प्रदेश से प्राप्त धन एक अलग निधि के रूप में 'डोमेन एक्स्ट्राआडिनेयर' में जमा होता था, जिसे सेनापतियों को पारितोष स्वरूप प्रदान करने के साथ-साथ युद्ध सम्बन्धित आवश्यक खर्चों में प्रयोग किया जाता था।

नेपोलियन मुक्त व्यापार के सिद्धान्त के विपरीत व्यापार पर राज्य का पूर्ण नियन्त्रण चाहता था। उसके अनुसार कोष पर नियन्त्रण और व्यापार में संतुलन के लिए राज्य का हस्तक्षेप आवश्यक है। उसने पुरातन व्यवस्था के अनुसार कुछ व्यापार श्रेणियों को स्थापित किया। नेपोलियन द्वारा मुक्त व्यापार, औद्योगिकीकरण, नवीन तकनीक का प्रयोग आदि की उपेक्षा तथा पुरानी सुरक्षा नीति को अपनाना समयानुकूल नहीं थी। इस कारण उदारवादी मध्यम वर्ग और पूंजीवादी उससे नाराज हो गये और फ्रांस पूंजीवाद और औद्योगिक विकास में इंगलैण्ड की अपेक्षा पीछे रह गया।

16.6.6 सांस्कृतिक और सामान्य हित के कार्य

नेपोलियन ने लगभग 229 अच्छी सड़कों का निर्माण कराया था। तीस सड़कें पेरिस को फ्रांस के प्रमुख नगरों से जोड़ती थीं। नदियों पर पुल बनाये गये और नहरों का निर्माण किया गया। सीन नदी पर मजबूत पुलों को बनाया गया। पेरिस का पुननिर्माण किया गया और उसे यूरोप के सबसे सुन्दर और भव्य नगर के रूप में स्थापित किया गया। नेपोलियन स्वयं इटली और मिश्र से कला कृतियां पेरिस को सजाने के लिए लाया था। पेरिस में ला मादलैन का गिरजाघर का निर्माण किया गया। थियेटर, म्यूजियम और बेघर लोगों के लिए आवास गृहों का निर्माण किया गया। पुराने राजप्रसादों तुइलरी और फौंतैब्लो को पुनः सुसज्जित किया गया। जोसेफिन के लिए मालमेजों नामक सुन्दर महल का निर्माण कराया गया। भवनो और फर्नीचर निर्माण में एक नई शैली का विकास हुआ, जिसे साम्राज्य की शैली कहा जाता है। नेपोलियन ने शिक्षा और संस्कृति के विकास के लिए जनता पुस्तकालय भी स्थापित किये। तुलों और शेरब्रुग बन्दरगाहों का विकास भी किया गया।

नेपोलियन के समय में प्रमुख चित्रकार दावी और ऐंग्र ने नेपोलियन के युद्धों की सुन्दर कलाकृतियों द्वारा उसको महिमा मंडित करने का कार्य किया। नेपोलियन ने साहित्य और पत्रकारिता पर कई प्रतिबन्ध लगा कर उसकी

स्वाभाविक प्रगति को रोक दिया था। फलतः फ्रांस में साहित्य का अधिक विकास नहीं हो सका। उस समय के प्रमुख फ्रांसीसी साहित्यकार शातोब्रियां और मैडम द स्ताएल उसके विरोधी थे।

नेपोलियन ने परम्परागत कुलीन वर्ग के महत्व को कम करने तथा जन सामान्य और कर्मचारियों में देश के प्रति समर्पण की भावना जाग्रत करने के लिए एक सम्मान 'लीजियन ऑफ ऑनर' की स्थापना की, जिसके द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्धियों के लिए लोगों को सम्मान देकर एक नया विशिष्ट वर्ग बनाया।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

नेपोलियन के सिविल कोड का महत्व स्पष्ट कीजिए।

1. पोप के साथ नेपोलियन के समझौते की प्रमुख धाराऐं बताते हुए समीक्षा कीजिए।
2. फ्रांस में शिक्षा के सुधार के लिए नेपोलियन ने क्या व्यवस्था की?

16.7 प्रथम कौंसिल कालीन विदेश नीति

फ्रांस में संविधान निर्माण एवं आन्तरिक क्षेत्र में शान्ति स्थापित करने के पश्चात नेपोलियन बोनापार्ट ने फ्रांस के विरूद्ध बने द्वितीय गुट की ओर ध्यान दिया। आपको बताया जा चुका है कि नेपोलियन जब मिश्र अभियान में व्यस्त था, तभी यूरोपीय देशों ने फ्रांस के विरूद्ध द्वितीय गुट की स्थापना करली थी। इस गुट में आस्ट्रिया, इग्लैण्ड, रूस, तुर्की, नेपल्स और पुर्तगाल आदि देश सम्मिलित थे। यह गुट फ्रांस की सीमाओं के लिए निरन्तर खतरा बनता जा रहा था। अतः उसने शीघ्रता से द्वितीय गुट के विरूद्ध युद्ध की योजना बनाई।

16.7.1 आस्ट्रिया से युद्ध

आस्ट्रिया ने इटली पर अधिकार करके उसके प्रथम अभियान की उपलब्धियों को नष्ट कर दिया था। अतः नेपोलियन ने सर्वप्रथम आस्ट्रिया पर आक्रमण की योजना बनाई। उसने दक्षिण पश्चिम में इटली की ओर से आस्ट्रिया पर स्वयं आक्रमण किया और उत्तर पश्चिमी दिशा राइन क्षेत्र से अपने सेनापतियों को भेजा। मोरंेगा और होहेनलिंडेन के प्रसिद्ध युद्धों में फ्रांस की सेना ने सफलता प्राप्त की और आस्ट्रिया को पुनः सन्धि करने पर विवश किया। 1801 में आस्ट्रिया और फ्रांस के मध्य ल्यूनेविल की सन्धि हुयी, जिसमें केम्पोफोर्मिया की शर्तों को ही दुहराया गया। फ्रांस का बेल्जियम और राइन नदी के बाएँ किनारे पर पुनः अधिकार हो गया और इटली के गणतंत्रों बटेवियन, हेल्वेटिक और सिसएल्पाइन का वह स्वयं राष्ट्रपति हो गया।

16.7.2 द्वितीय गुट का अन्त

1800 में रूस आस्ट्रिया से नाराज होकर द्वितीय गुट से अलग हो गया। 1801 में नेपोलियन ने आस्ट्रिया से सन्धि कर ली। इसके पश्चात नेपल्स ने भी आत्म समर्पण कर दिया। रूस ने स्वीडन, प्रशा और डेनमार्क के साथ मिलकर सशस्त्र तटस्थता की नीति अपनायी, जिसका उद्देश्य इंग्लैण्ड को फ्रांस के माल के लिए तटस्थ देशों के जहाजों की तलाशी लेने से रोकना था। स्पेन ने फ्रांस से मित्रतापूर्ण सबंध स्थापित करके लुसियाना दे दिया। 1801 तक द्वितीय गुट में केवल इंग्लैण्ड ही फ्रांस का शत्रु रह गया था।

16.7.3 इंग्लैण्ड से समझौता

फ्रांस का इंग्लैण्ड के साथ लगभग दस वर्ष से युद्ध चल रहा था। दोनों ही देश शान्ति चाहते थे। नेपोलियन समझ चुका था कि शक्तिशाली नौ सेना के बिना इंग्लैण्ड को पराजित करना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त वह फ्रांस की गृहनीति के क्षेत्र में सुधार भी करना चाहता था। दूसरी ओर इंग्लैण्ड ने भी बढ़ते राष्ट्रीय ऋण और जनता के असन्तोष के कारण समझौते का रूख अपनाया। फलतः 1802 ई. में दोनों देशों ने आमियां की सन्धि कर ली। इस सन्धि के अनुसार- इंग्लैण्ड ने फ्रांस की कौंन्स्यूलेट सरकार को मान्यता प्रदान की। श्रीलंका और ट्रिनीडाड को छोड़कर फ्रांस के विजित उपनिवेशों को वापिस कर दिया। फ्रांस ने पोप के क्षेत्रों और नेपिल्स से अपनी सेनायें हटा लीं। आयोनियन द्वीप की स्वतंत्रता और पुर्तगाल की अखण्डता को फ्रांस ने स्वीकारा। मिश्र तुर्की को लौटा दिया गया।

यह सन्धि स्थायी सिद्ध नहीं हुयी, यह दोनों देशों के मध्य एक युद्ध विराम मात्र थी। 1803 में इनके मध्य पुनः युद्ध प्रारम्भ हो गया, जिसने 1805 में यूरोपीय युद्ध का रूप ले लिया।

16.7.3 औपनिवेशिक राज्य

यूरोप में अपनी सीमाओं का विस्तार करने के साथ-साथ वह फ्रांस के लिए एक औपनिवेशिक राज्य की स्थापना करना चाहता था। उसने स्पेन से लुसियाना का प्रदेश प्राप्त किया। फ्रेन्च गुयाना को अमेजन नदी तक बढ़ाया। सैंट डोमिगो (वेस्ट इंडिज में हैती) को जीतने का प्रयत्न किया। भारतीय राज्यों पर भी प्रभाव स्थापित करने की कोशिश की। परन्तु इंग्लैण्ड के विरोध के कारण वह औपनिवेशिक विस्तार में अधिक सफलता नहीं प्राप्त कर सका।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. द्वितीय गुट में कौन-कौन से देश सम्मिलित थे?
2. आमियां की सन्धि से इंग्लैण्ड और फ्रांस के मध्य क्या समझौता हुआ?

16.8 सम्राट के रूप में नेपोलियन (1804-1814)

नेपोलियन अत्यन्त महत्वाकांक्षी था। 1802 में उसने जनमत संग्रह कराकर अपने को जीवन पर्यन्त प्रथम कौंसिल नियुक्त करा लिया। 1804 में पुनः जनमत संग्रह कराकर वह फ्रांस का सम्राट बन गया। 2 दिसम्बर, 1804 को नाट्रडम के प्रसिद्ध चर्च में उसका राज्याभिषेक किया गया, जिसमें शामिल होने के लिए सम्पूर्ण यूरोप के शासक और विशिष्ट लोग पेरिस आए। उसने राजमुकुट पोप के हाथ से लेकर स्वयं धारण कर लिया। फ्रांस में नेपोलियन का एकतंत्र शासन स्थापित हुआ। सम्राट बनने के पश्चात वह यूरोप पर सर्वव्यापी साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न देखने लगा। उसके सम्राट बनने के पश्चात अगले दस वर्षों का इतिहास निरन्तर युद्धों का इतिहास है।

नेपोलियन की साम्राज्यवादी नीति के विरूद्ध यूरोप के देशों ने भी इंग्लैण्ड के नेतृत्व में गुट की स्थापना की। इस गुट में इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया, रूस और स्वीडन थे तथा इसका लक्ष्य फ्रांस को उसकी मूल सीमाओं के अन्दर रखना था। यह गुट फ्रांस के विरूद्ध यूरोपीय देशों का तृतीय गुट कहलाया। नेपोलियन ने इस गुट के विरूद्ध अपने अभियान का प्रारम्भ 20 अक्टूबर, 1805 ई0 को आस्ट्रिया पर आक्रमण कर उल्म के युद्ध में उसे पराजित करके किया। तत्पश्चात इंग्लैण्ड को समुद्री युद्ध में पराजित करने की योजना बनाने लगा।

16.8.1 इंग्लैण्ड से युद्ध

नेपोलियन की साम्राज्यवादी योजना को सर्वाधिक चुनौती देने वाला उसका चिर परिचित शत्रु इंग्लैण्ड था। नेपोलियन ने इंग्लैण्ड की व्यापारिक गतिविधियों पर रोक लगाने के लिए हेनोवर पर अधिकार कर लिया था और जर्मनी के बन्दरगाह इंग्लैण्ड के लिए बन्द कर दिये थे। दूसरी ओर इंग्लैण्ड का प्रधानमंत्री पिट फ्रांस के विरूद्ध गुट का निर्माण करने में संलग्न था। फलतः 21 अक्टूबर, 1805 में दोनों देशों के मध्य प्रसिद्ध ट्रेफलगर का युद्ध हुआ। इस युद्ध में नेपोलियन ने सामुद्रिक सेना का नेतृत्व विलनव को सौंपा। इंग्लैण्ड का नौसेनाध्यक्ष नेल्सन था। नेल्सन के कुशल नेतृत्व में इंग्लैण्ड की सेना ने फ्रांस और स्पेन के संयुक्त नौसैनिक बेड़े को पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया। युद्ध में नेल्सन मारा गया, लेकिन इंग्लैण्ड की नौसैनिक श्रेष्ठता सिद्ध हो गयी। इसके पश्चात नेपोलियन ने कभी इंग्लैण्ड के विरूद्ध प्रत्यक्ष युद्ध नहीं किया।

16.8.2 आस्ट्रिया पर आक्रमण

ट्रेफलगर के युद्ध में पराजित होने के शीघ्र बाद ही नेपोलियन ने आस्ट्रिया पर आक्रमण कर दिया। 2 दिसम्बर, 1805 को आस्टरलित्स के युद्ध में आस्ट्रिया और रूस की संयुक्त सेनाओं के साथ उसका भंयकर युद्ध हुआ। इसे 'तीन सम्राटों का युद्ध' कहा जाता है। इस युद्ध में नेपोलियन को अपने जीवन की महानतम विजयी प्राप्त हुयी। उसके विरूद्ध बना तृतीय गुट भंग हो गया। आस्ट्रिया ने विवश होकर 25 दिसम्बर, 1805 में उसके साथ प्रेसबर्ग की सन्धि की, जिसके अनुसार

- आस्ट्रिया को वेनेशिया, इस्ट्रिया तथा डेलमेशिया के प्रदेश इटली के राज्य को देने पड़े तथा नेपोलियन को इटली का राजा स्वीकार करना पड़ा।
- फ्रांस के मित्र बवेरिया और वर्टेम्बर्ग को स्वतंत्र राज्य के रूप में स्वीकारा गया। आस्ट्रिया को टाइरोल का प्रदेश बवेरिया तथा पश्चिम का कुछ क्षेत्र वर्टेम्बर्ग को देना पड़ा।
- बेडेन को ग्रेन्ड डची बनाया गया तथा उसे भी आस्ट्रिया के पश्चिम से कुछ क्षेत्र दिलवाये गये।

यह सन्धि नेपोलियन की महान विजय थी। इस सन्धि से आस्ट्रिया की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंची। आस्ट्रिया से लगभग तीस लाख जनसंख्या वाले क्षेत्रों को ले लिया गया तथा राइन, इटली और स्विट्जरलैण्ड से उसका सम्बन्ध टूट गया।

16.8.3 मध्य यूरोप का पुनर्गठन

नेपोलियन द्वारा आस्ट्रिया की पराजय और प्रेसबर्ग की सन्धि के दूरगामी परिणाम निकले। नेपोलियन राजाओं का निर्माता बन गया। उसने जुलाई, 1806 में जर्मनी का पुनर्निमाण किया और बवेरिया, वर्टेम्बर्ग तथा 14 अन्य जर्मन राज्यों को मिलाकर 'राइन का परिसंघ' बनाया। जर्मनी के कई छोटे राज्यों को समाप्त कर इस राइन संघ में मिला दिया गया। नेपोलियन को इस परिसंघ का संरक्षक स्वीकारा गया। इस प्रकार उसने आस्ट्रिया और प्रशा की सीमा पर एक बड़ा राज्य खड़ा कर दिया। इसके बाद 6 अगस्त, 1806 में नेपोलियन ने पवित्र रोमन सम्राट के पद का अन्त कर दिया। पवित्र रोमन सम्राट फ्रांसिस अब केवल आस्ट्रिया का सम्राट रह गया।

प्रेसबर्ग की सन्धि से इटली में भी आस्ट्रिया का प्रभाव समाप्त हो गया था। नेपोलियन ने नेपल्स में बूर्बा शासक को हटाकर फरवरी, 1806 में जोजफ बोनापार्ट को शासक बना दिया। हालैण्ड में भी उसने जून, 1806 में लुई बोनापार्ट को शासक नियुक्त किया। इस प्रकार फ्रांस के चारों ओर अधीनस्थ राज्यों का घेरा बनाकर नेपोलियन ने अपने सम्बन्धियों को उन राज्यों का शासक बना दिया।

16.8.4 प्रशा की पराजय

प्रशा का सम्राट फ्रेडरिक विलियम तृतीय नेपोलियन के विरूद्ध गुट में शामिल नहीं हुआ था, क्योंकि बेसेल की सन्धि (1795) के पश्चात से वह तटस्थ था। प्रेसबर्ग की सन्धि के द्वारा जर्मनी पर नेपोलियन के हस्तक्षेप से प्रशा नाराज हो गया और उसने युद्ध की घोषणा कर दी। 14 अक्टूबर, 1806 को जेना और आवरस्टेट के युद्ध में नेपोलियन ने प्रशा को बुरी तरह पराजित किया। प्रशा के सम्राट ने रूस में शरण ली। अतः नेपोलियन ने तुरन्त ही रूस पर आक्रमण कर दिया। तत्पश्चात 1807 में टिलसिट सन्धि द्वारा प्रशा से अनेक क्षेत्रों को पृथक कर उसे दंडित किया गया। प्रशा के पश्चिमी प्रान्तों से वेस्टफेलिया राज्य बनाकर नेपोलियन ने अपने भाई जेरोम बोनापार्ट को शासक बना दिया। प्रशा के पूर्वी प्रान्तों से नवीन राज्य डची आफ वारसा स्थापित कर सैक्सनी के ड्यूक को दे दिया। प्रशा को बहुत सी धनराशि क्षतिपूर्ति के रूप में देनी पड़ी तथा उसकी सेना घटाकर 22 हजार निश्चित कर दी गयी। इस प्रकार इस सन्धि से प्रशा का अत्यन्त अपमान हुआ तथा उसका राज्य आधा रह गया।

16.8.5 रूस से सम्बन्ध

फरवरी, 1807 में ईलो के युद्ध में नेपोलियन कर रूस के साथ घमासान युद्ध हुआ। नेपोलियन के जीवन के सबसे भयंकर रक्तपात वाले युद्धों में से एक होने के बावजूद यह युद्ध अनिर्णायक रहा। पुनः जून, 1807 में फ्रीडलैण्ड के युद्ध में रूस पराजित हुआ। रूस को विवश होकर टिलसिट की सन्धि पर हस्ताक्षर करने पड़े। 8 जुलाई, 1807 को की गयी इस सन्धि द्वारा नेपोलियन ने कूटनीति से रूस को अपना मित्र बना लिया। टिलसिट की सन्धि की प्रमुख धाराएं थीं।-

1. दोनों देशों ने यूरोप को अपने प्रभाव क्षेत्रों में बाँट लिया। पश्चिमी और मध्य यूरोप में नेपोलियन और पूर्वी यूरोप में जार अलेक्जेंडर को अपनी इच्छानुसार कार्य करने की स्वतंत्रता मिल गयी।
2. रूस ने हालैण्ड, इटली और जर्मनी में नेपोलियन द्वारा किये गये परिवर्तनों को मान्यता दी।
3. गुप्त रूप से तय हुआ कि रूस इंग्लैण्ड और फ्रांस के मध्य समझौते का प्रयत्न करेगा और यदि इंग्लैण्ड राजी न हुआ तो रूस इंग्लैण्ड के विरूद्ध नेपोलियन के व्यापारिक युद्ध में नेपोलियन का सहयोग करेगा।
4. इसी प्रकार तुर्की में फ्रांस मध्यस्थता करेगा और यदि तुर्की फ्रांस की मध्यस्थता को अस्वीकार करेगा तो रूस और फ्रांस तुर्की को आपस में बाँट लेंगे।
4. नेपोलियन ने जार के आग्रह को स्वीकार कर प्रशा के राज्य को पूर्णतः समाप्त नहीं किया। परन्तु जैसा कि आपको बताया जा चुका है, इस सन्धि द्वारा प्रशा का विघटन कर दिया गया।

टिलसिट की सन्धि नेपोलियन के जीवन का चरमोत्कर्ष था। उसका साम्राज्य अपने शिखर पर। सन् 1805 और 1807 के विजय अभियान नेपोलियन के कुशल सैनिक नेतृत्व के सर्वाधिक गौरवपूर्ण अध्याय थे। अब इंग्लैण्ड के अतिरिक्त लगभग समस्त यूरोप उसके आधिपत्य में था।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. फ्रांस के विरूद्ध किन यूरोपीय राज्यों ने तृतीय गुट की स्थापना की और क्यों?
2. प्रेसबर्ग की सन्धि के महत्व को स्पष्ट कीजिये।
3. टिलसिट की सन्धि के परिप्रेक्ष्य में नेपोलियन और रूस के सम्बन्धों की व्याख्या कीजिये।

16.9 नेपोलियन के पतन में सहायक घटनायें

नेपोलियन अपनी विजयों और उपलब्धियों को स्थायित्व नहीं प्रदान कर सका। 1807 ई0 के पश्चात उसके युद्धों और कार्यों ने उसको पतन के करीब पहुँचा दिया। नेपोलियन ने स्वयं कुछ घटनाओं को अपने पतन का कारण माना। उसने पोप से सम्बन्ध, स्पेन की अनैतिक विजय, रूस के अभियान और इंग्लैण्ड के विरूद्ध महाद्वीपीय नीति को अपने पतन के लिए उत्तरदायी माना।

16.9.1 महाद्वीपीय योजना

टिलसिट की सन्धि के पश्चात इंग्लैण्ड ही एकमात्र अविजित देश था, जिसको पराजित किये बिना यूरोप की प्रभुता प्राप्त नहीं की जा सकती थी। इंग्लैण्ड भौगोलिक दृष्टि से चारों ओर से समुद से घिरा था और उसका नौसैनिक बेड़ा भी विश्व में सर्वोत्कृष्ट था। टै[a]फेलगर के युद्ध में पराजित होने के बाद नेपोलियन समझ चुका था कि इंग्लैण्ड को समुद्री युद्ध में हराना असम्भव है। नेपोलियन को विश्वास था कि इंग्लैण्ड के वाणिज्य और व्यापार पर अंकुश लगाकर उसे पराजय स्वीकार करने के लिए बाध्य किया जा सकता है। अतः इंग्लैण्ड की अर्थव्यवस्था को आघात पहुँचाने के उद्देश्य से उसने महाद्वीपीय योजना बनाई। इसके द्वारा इंग्लैण्ड के व्यापार पर प्रतिबंध लगाकर उसकी आर्थिक नाकेबन्दी की जानी थी। यह कोई नयी व्यवस्था नहीं थी, क्योंकि संविधान परिषद और डायरेक्टरी के समय में भी इंग्लैण्ड के विरूद्ध आर्थिक नाकेबन्दी की नीति को निर्धारित किया गया था। नेपोलियन ने इसे विशाल पैमाने पर व्यवहारिक रूप देने का निश्चय किया। उसने इंग्लैण्ड का आर्थिक बहिष्कार करने के लिए कई आज्ञापत्र एवं आदेश जारी करके यूरोपीय देशों पर उनका पालन करने के लिए दबाव डाला। इस नीति को नेपोलियन ने चार घोषणाओं द्वारा क्रियान्वित किया।

- बर्लिन आदेश- 21 नवम्बर, 1806 को नेपोलियन ने बर्लिन में घोषणा करके महाद्वीपीय व्यवस्था को लागू किया। इसमें उसने आदेश जारी किया कि ब्रिटिश द्वीप समूह के विरूद्ध आर्थिक नाकेबन्दी प्रारम्भ की जाती है, कोई भी ब्रिटिश जहाज किसी यूरोपीय बन्दरगाह पर नहीं आने पाये। यदि कोई अंग्रेज जहाज फ्रांस अथवा नेपोलियन के किसी मित्र राज्य में आये, तो उसे माल सहित जब्त कर लिया जाये।
- वार्सा आदेश - नेपोलियन ने 25 जनवरी, 1807 ई0 को वार्सा आदेश द्वारा प्रशा और हेनोवर के समुद्री तटों पर भी अंग्रेज व्यापार के विरूद्ध प्रतिबन्ध लगा दिया।

- मिलान घोषणा- 17 दिसम्बर, 1807 ई0 में नेपोलियन ने मिलान आदेश जारी किया। इसके अनुसार यह घोषणा की गयी कि इंग्लैण्ड के बन्दरगाहों में उपस्थित होने वाले अथवा तलाशी देने वाले जहाजों को जब्त कर लिया जायेगा, चाहे वह जहाज तटस्थ देश का ही हो।
- फाण्टेनब्ल्यू आदेश -18 अक्टूबर, 1810 ई0 को नेपोलियन ने सबसे कठोर आदेश जारी किया। इन आदेशों में कहा गया कि जब्त अंग्रेजी सामान को जला दिया जाए। साथ ही अवैध ढ़ंग से व्यापार करने वालों के लिए कठोर दण्ड एवं पृथक न्यायालय की स्थापना की गयी।

इंग्लैण्ड का प्रतियुत्तर (आर्डर इन काउन्सिल) -इंग्लैण्ड ने नेपोलियन की महाद्वीपीय योजना के प्रतियुत्तर में जनवरी, 1807 में आर्डर इन काउन्सिल नामक अध्यादेश जारी किया, जिसके अनुसार फ्रांस या उसके मित्र देशों के साथ जो जहाज व्यापार करेंगे उन पर कब्जा कर लिया जायेगा। तटस्थ देशों के जहाजों को यूरोप के किसी बन्दरगाह में जाने से पूर्व इंग्लैण्ड के बन्दरगाहों में जाना, इंग्लैण्ड के साथ व्यापार करना और लाइसेंस प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया गया।

महाद्वीपीय व्यवस्था को सफल बनाने के लिए नेपोलियन को समझौता और युद्ध दोनों का सहारा लेना पड़ा। उसने रूस से सन्धि करके तथा प्रशा और आस्ट्रिया पर दबाव डालकर उन्हें महाद्वीपीय व्यवस्था को स्वीकारने को बाध्य किया। पुर्तगाल और स्पेन से प्रायद्वीपीय युद्ध, पोप के राज्य और स्वीडन पर अधिकार, भाई लुई बोनापार्ट को अपदस्थ कर हॉलैण्ड का फ्रांस में विलय आदि कार्य नेपोलियन ने महाद्वीपीय योजना को प्रभावी बनाने के लिए ही किये।

इस व्यवस्था का प्रभाव इंग्लैण्ड पर ही नहीं, वरन् फ्रांस सहित यूरोप के अधिकांश देशों पर पड़ा। यूरोपीय देशों का आयात- निर्यात रूक गया। इंग्लैण्ड में बेरोजगारी और खाद्यान्न संकट उत्पन्न हुआ। साथ ही अमेरिका और डेनमार्क जैसे तटस्थ देशों के साथ इंग्लैण्ड के सम्बन्ध बिगड़ गये। फ्रांस तथा यूरोप के अन्य देशों में दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तुओं का अभाव होने लगा। इन देशों ने कुछ वस्तुओं का उत्पादन स्वयं करना शूरू किया, परन्तु वह इंग्लैण्ड़ के उच्चकोटि के उत्पादन का विकल्प नही बन सका। नेपोलियन को अपनी सेना के लिए ओवरकोट और जूते इंग्लैण्ड से ही मंगाने पड़े। अंततः यह व्यवस्था असफल रही। इसकी असफलता के प्रमुख कारण थे।-

1. फ्रांस के पास शक्तिशाली नौसैनिक बेड़े का अभाव था, जिससे वह हजारों मील लम्बे समुद्र तट पर नजर रख सके। शक्तिशाली नौसैनिक बेड़े के अभाव में वह खुले समुद्र में जहाजों को पकड़ने तथा इंग्लैण्ड के माल को यूरोप में आने से रोकने में असफल रहा।
2. इंग्लैण्ड का सामान चोरी छिपे यूरोप के देशों में आने लगा। बन्दरगाहों में तस्करी और भ्रष्टाचार बढ़ गया।
3. इंग्लैण्ड के पास सारे विश्व में अपने अनेक उपनिवेश थे, जहाँ से वह कच्चा माल मंगाता और तैयार माल बेचता था। यूरोपीय व्यापार पर प्रतिबन्ध का उस पर बहुत अधिक प्रभाव नहीं पड़ सका।
4. इंग्लैण्ड यूरोप से खाद्यान्न सामग्री आयात करता था। महाद्वीपीय व्यवस्था के कारण वहाँ खाद्यान्न संकट उत्पन्न हुआ। परन्तु जब यह संकट चरम में पहुँचा, तब नेपोलियन ने दस गुने दाम में अनाज इंग्लैण्ड भेजना प्रारम्भ कर दिया। नेपोलियन अनाज इंग्लैण्ड नहीं भेजता तो सम्भव था कि इंग्लैण्ड उससे समझौता कर लेता।

5. यूरोपीय देशों ने दबाव में आकर इस व्यवस्था को स्वीकारा था, अवसर मिलते ही वह इससे अलग हो गये। अनेक देश नेपोलियन के विरोधी हो गये और वह उनसे युद्धों में उलझता चला गया।

6. अधिकांश देश दैनिक उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन नहीं करते थे और इंग्लैण्ड की बनी सामग्री पर ही निर्भर थे। महाद्वापीय व्यवस्था के कारण उत्पन्न व्यापक आर्थिक कष्टों ने नेपोलियन के शासन को अलोकप्रिय बना दिया। फ्रांस में मध्यम वर्ग भी उसका विरोधी हो गया।

नेपोलियन की यह योजना अव्यवहारिक थी। अन्य देशों से अपेक्षा करना की वह कष्ट सहकर सहयोग करेंगे, नेपोलियन की भारी भूल थी।

16.9.2 प्रायद्वीपीय युद्ध

पुर्तगाल के इंग्लैण्ड के साथ राजनैतिक और व्यापारिक सम्बन्ध थे, उसने नेपोलियन की महाद्वीपीय योजना को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया था। फलतः नेपोलियन ने स्पेन के साथ मिलकर 1807 ई0 में पुर्तगाल पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया। पुर्तगाल पर अभियान के समय फ्रांस की सेनाएं स्पेन की सीमाओं का अतिक्रमण करती रहती थीं। नेपोलियन की महत्वाकांक्षा बढ़ती गयी और उसने 1808 में स्पेन पर अधिकार कर लिया। स्पेन पर बूर्बा वंश का शासक चार्ल्स चतुर्थ शासन करता था, वह एक अयोग्य शासक था। राजा का पुत्र फर्डीनेन्ड भी अपने पिता से असंतुष्ट था। नेपोलियन ने दोनों के वैमनस्य का लाभ उठाया और उन्हें स्पेन का सिंहासन त्यागने पर विवश किया। स्पेन में नेपोलियन ने अपने भाई जोसेफ बोनापार्ट को शासक नियुक्त किया।

नेपोलियन के इस कार्य को स्पेन की जनता ने अपना राष्ट्रीय अपमान समझा और पूरा राष्ट्र नेपोलियन के विरूद्ध संघर्षरत हो गया। नेपोलियन को एक दीर्घकालीन युद्ध का सामना करना पड़ा। यह युद्ध 1808 से 1813 तक चलता रहा और प्रायद्वीपीय युद्ध कहलाया। स्पेन की राष्ट्रवादी जनता का साथ पुर्तगाल और इंग्लैण्ड ने भी दिया। 1808 में स्पेन के विद्रोहियों ने फ्रांस की सेना को पराजित कर दिया। राजा जोसेफ को भागना पड़ा। नेपोलियन ने स्वयं स्पेन पर हमला करके स्पेनी सेना को पराजित किया तथा पुनः जोसेफ को स्पेन के सिंहासन पर बैठाया। 1809 ई0 में नेपोलियन मध्य यूरोप की गतिविधियों में व्यस्त हो गया। नेपोलियन की अनुपस्थिति में स्पेनी सेना ने इंग्लैण्ड के सहयोग से फ्रांसीसी फ्रांसीसी सेना को 1812-1813 में सेलमेंका और विक्टोरिया के युद्ध में पराजित किया। अंततः स्पेन और पुर्तगाल फ्रांस के नियन्त्रण से मुक्त हो गये।

स्पेन की भौगोलिक स्थिति, नेपोलियन का मध्य यूरोप के देशों में व्यस्त होना, अंग्रेज सेना की युद्ध क्षमता तथा स्पेन में राष्ट्रीयता की भावना का उदय प्रायद्वीपीय युद्ध में नेपोलियन की असफलता के कारण थे। इस युद्ध में तीन लाख फ्रांसीसी सैनिक मारे गये। स्पेन पर अधिकार नेपोलियन की भारी भूल थी। स्वयं नेपोलियन ने कहा था कि स्पेन का नासूर मेरे विनाश का कारण था। इस युद्ध के साथ ही नेपोलियन के पतन का क्रम प्रारम्भ हुआ।

16.9.3 आस्ट्रिया से पुनः युद्ध

नेपोलियन को प्रायद्वीपीय युद्ध में व्यस्त देख आस्ट्रिया ने फ्रांस के विरूद्ध अप्रैल, 1809 में युद्ध की घोषणा कर दी। किन्तु नेपोलियन के युद्ध कौशल के आगे वैग्राम के युद्ध में जुलाई, 1809 को आस्ट्रिया पराजित हो गया। आस्ट्रिया

को फ्रांस के साथ वियना की अपमानजनक सन्धि करनी पड़ी, जिसके अनुसार उसे इलीरिया के प्रान्त फ्रांस को, पूर्वी गेलेशिया रूस को तथा पश्चिमी गेलेशिया वारसा को देना पड़ा। उसे महाद्वीपीय व्यवस्था स्वीकार करनी पड़ी तथा क्षति पूर्ति के रूप में हर्जाना देना पड़ा। सन्धि के अनुसार आस्ट्रिया की राजकुमारी मेरी लुईसा का विवाह नेपोलियन से कर दिया गया। नेपोलियन ने अपनी पूर्व पत्नी जोसेफिन को तलाक देकर यह विवाह अपने विशाल साम्राज्य के लिए उत्तराधिकारी प्राप्त करने तथा पारिवारिक गौरव को बढ़ाने के लिए किया था।

16.9.4 रूसी अभियान

रूस और फ्रांस के मध्य टिल्सिट सन्धि के द्वारा मित्रता स्थापित हो गयी थी, लेकिन टिल्सिट सन्धि का आधार स्थायी नहीं था। दोनों देशों के सम्बन्ध कई कारणों से खराब होते चले गये। रूस महाद्वीपीय योजना को जारी रखने के पक्ष में नहीं था, क्योंकि दैनिक जीवन की वस्तुओं के लिए वह इंग्लैण्ड पर ही निर्भर था। रूस कुस्तुन्तुनिया पर अधिकार करना चाहता था, परन्तु नेपोलियन इसके लिए तैयार नहीं था। 1809 ई0 में नेपोलियन ने पोलैण्ड पर अधिकार का उसे रूस में मिलाने के स्थान पर ग्रांड डची ऑफ वारसा की स्थापना की तो रूस ने नेपोलियन की घोषणाओं की उपेक्षा करते हुए इंग्लैण्ड के साथ व्यापार प्रारम्भ कर दिया था। नेपोलियन रूसी घराने में विवाह करना चाहता था, किन्तु रूस के जार ने उसके इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया था।

नेपोलियन ने जून, 1812 ई0 में छः लाख सैनिकों की विशाल सेना के साथ रूस पर आक्रमण कर दिया। रूसी सेनाओं ने सीधे युद्ध करने की अपेक्षा पीछे हटने की नीति अपनायी तथा जिन नगरों और ग्रामों से वह पीछे हटते गये, उसे वह पूर्णतः नष्ट करते चले गये। अन्त में 7 सितम्बर, 1812 में बोरोडिनों के युद्ध में नेपोलियन ने रूसी सेना को पराजित किया। परन्तु उसकी यह सफलता निर्णायक सिद्ध नहीं हुयी। 14 सितम्बर को वह मास्को पहुँचा तो उसने मास्को को उजड़ा हुआ पाया। रूस का जार आत्मसमर्पण करने के स्थान पर साइबेरिया चला गया। पाँच सप्ताह मास्को में रहने के बाद कड़ाके की ठंड, अन्न की कमी, सेना में फैलती बीमारियाँ आदि से दुखी और निराश होकर नेपोलियन ने सेना को वापिस लौटने की आज्ञा दी। इस प्रकार नेपोलियन का रूसी अभियान निरर्थक सिद्ध हुआ और उसकी सैनिक शक्ति को भारी क्षति पहुँची। छ लाख की विशाल सेना में से मात्र एक लाख सैनिक बचे। इस अभियान से न केवल नेपोलियन की प्रतिष्ठा समाप्त हुयी, बल्कि यूरोपीय शक्तियों ने पुनः संगठित होकर उसके विरूद्ध शक्तिशाली गुट का गठन कर लिया।

16.9.5 प्रशा में जागृति

नेपोलियन के सैनिक अभियानों से यूरोप में फ्रांस की क्रान्ति के विचारों का प्रसार हुआ। यूरोप में राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत हुयी। स्पेन और रूस में नेपोलियन की असफलता का समाचार पाते ही प्रशा की जनता ने नेपोलियन के नियंत्रण से मुक्त होने का संकल्प लिया। प्रशा में हजारों स्वयंसेवक देश को नेपोलियन के नियंत्रण से मुक्त कराने के लिए सेना में भर्ती हो गये। फरवरी, 1813 में प्रशा के सम्राट फ्रेडरिक विलियम तृतीय और रूस के सम्राट जार अलेक्जेंडर प्रथम के मध्य सन्धि हुयी, जिसमें यह संकल्प लिया गया कि जब तक यूरोप को नेपोलियन से मुक्त नहीं करा लेते, उसके विरूद्ध युद्ध निरन्तर जारी रखेंगे। मार्च, 1813 में प्रशा ने फ्रांस के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। उत्तरी और मध्य जर्मनी के

कुछ राज्यों ने प्रशा का साथ दिया। मई, 1813 में नेपोलियन ने लुटजेन और बोटजेन के युद्ध में प्रशा और रूस की संयुक्त सेना को पराजित किया। इसी मध्य आस्ट्रिया के मैटरनिक की मध्यस्थता से नेपोलियन ने प्रशा और रूस के साथ प्लेसविज में युद्ध विराम स्वीकार कर लिया। मैटरनिक ने समझौता कराने के लिए उसके साथ सन्धि वार्ता की और कुछ प्रस्ताव रखे, लेकिन मैटरनिक द्वारा रखे गये प्रस्तावों को नेपोलियन ने स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। फलतः अगस्त, 1813 में आस्ट्रिया भी युद्ध में सम्मिलित हो गया।

16.9.6 राष्ट्रों से युद्ध

फ्रांस के विरूद्ध प्रशा, रूस, आस्ट्रिया और इंग्लैण्ड ने चौथे गुट की स्थापना करली। इस गुट में स्वीडन तथा कुछ अन्य देश भी शामिल हो गये। नेपोलियन ने शत्रु सेनाओं को पृथक-पृथक पराजित करने की योजना बनाई। सर्वप्रथम उसने अगस्त, 1813 में आस्ट्रिया को डे°स्डन के युद्ध में पराजित किया। यह नेपोलियन की अन्तिम विजय थी। चतुर्थ गुट के सदस्यों ने आपस में टॉपिल्स में सन्धि की। इसी समय बवेरिया भी इस गुट में शामिल हो गया।

मित्र राष्ट्रों और नेपोलियन के मध्य निर्णायक युद्ध लिप्जिग में 16 अक्टूबर से 19 अक्टूबर, 1813 ई0 को हुआ। मित्र राष्ट्रों की सेना ने नेपोलियन की सेना को चारों ओर से घेर लिया और नेपोलियन की करारी हार हुयी। इस युद्ध को राष्ट्रों का युद्ध कहा जाता है। नेपोलियन को अपनी बची हुयी सेना के साथ भागना पड़ा। इस युद्ध के परिणामस्वरूप नेपोलियन के द्वारा स्थापित राइन संघ समाप्त हो गया। जर्मनी स्वतंत्र हो गया और डेनमार्क मित्र राष्ट्रों के साथ मिल गया। इस युद्ध के साथ ही नेपोलियन की महाद्वीपीय व्यवस्था का अन्त हो गया।

लिप्जिग के युद्ध के पश्चात मित्र राष्ट्रों ने नेपोलियन के सम्मुख शान्ति वार्ता का प्रस्ताव रखा, जिसे नेपोलियन ने ठुकरा दिया। 28 मार्च, 1814 को मित्र राष्ट्रों ने आपस में शोमेन्ट की सन्धि करके तय किया कि उनमें से कोई भी देश नेपोलियन के साथ अलग से सन्धि नहीं करेगा। तत्पश्चात मित्र राष्ट्रों की सेना ने फ्रांस पर आक्रमण कर दिया और 31 मार्च, 1814 को पेरिस में प्रवेश किया। लाओ में पराजित होने के बाद नेपोलियन ने फाउन्टेनब्ल्यू नामक स्थान पर मित्र राष्ट्रों से सन्धि करली। फाउन्टेनब्ल्यू की सन्धि के अनुसार नेपोलियन को फ्रांस के सिंहासन को त्यागना पड़ा, उसे एल्बा द्वीप का शासक बनाया गया तथा बीस लाख फ्रेंक प्रतिवर्ष अवकाश वेतन देना निश्चित हुआ। 20 अप्रैल, 1814 को नेपोलियन को एल्बा द्वीप भेज दिया गया।

16.9.7 नेपोलियन का अन्तिम युद्ध

मित्र राष्ट्रों ने फ्रांस में बूर्बा वंश को पुनः स्थापित किया और फ्रांस की भौगोलिक सीमा जो 1792 में थी, वही पुनः तय कर दी गयी। तत्पश्चात सितम्बर, 1814 ई0 में यूरोप की समस्याओं को सुलझाने के लिए आस्ट्रिया की राजधानी वियना में मित्र राष्ट्र एकत्रित हुए। नेपोलियन एल्बा द्वीप पर शासन कर रहा था। उसके पास वियना सम्मेलन मे मित्र राष्ट्रों के मतभेद तथा फ्रांस में बूर्बा शासक लुई अठारहवें के शासन से व्याप्त असन्तोष तथा अव्यवस्था के समाचार पहुँच रहे थे। एल्बा द्वीप पर शासन करते हुए दस माह व्यतीत होने के पश्चात मार्च, 1815 में नेपोलियन अपने कुछ सैनिकों के साथ वहाँ से भाग निकला और फ्रांस पहुँचा। फ्रांस में उसका भव्य स्वागत हुआ, सैकड़ों लोग उसकी सेना

में भर्ती हो गये। लुई अठारहवाँ बेल्जियम भाग गया और नेपोलियन पुनः फ्रांस का सम्राट बन गया। परन्तु वह मात्र 100 दिन फ्रांस पर शासन कर सका।

नेपोलियन के पुनः सम्राट बनने का समाचार मिलने पर मित्र राष्ट्र आपसी मतभेद भुलाकर पुनः युद्ध की तैयारी में लग गये। उन्होंने फ्रांस पर चारों ओर से आक्रमण करने का निश्चय किया। 18 जून, 1815 को मित्र राष्ट्रों के साथ वाटरलू के मैदान में नेपोलियन के जीवन का अन्तिम युद्ध हुआ। मित्र राष्ट्रों की सेना का नेतृत्व इंग्लैण्ड का वैलिंगटन कर रहा था। इस युद्ध में नेपोलियन तथा उसकी सेना ने असाधारण साहस का परिचय दिया। किन्तु जब वह वैलिंगटन की सेना को पराजित करने वाले ही थे, तभी ब्लेचर के नेतृत्व में प्रशा की सेना वैलिंगटन की सहायतार्थ पहुंच गयी। नेपोलियन पराजित हुआ और उसने अमेरिका भागने का प्रयत्न किया। अन्ततः उसे अंग्रेज सेना के समक्ष आत्मसमर्पण करना पड़ा। नेपोलियन को अटलांटिक महासागर के सुनसान द्वीप सेन्ट हेलेना में निर्वासित जीवन व्यतीत करने के लिए भेज दिया गया। छःवर्ष पश्चात 5 मई, 1821 में 52 वर्ष की आयु में उदर के कैंसर से नेपोलियन की मृत्यु हो गयी।

16.9.8 नेपोलियन की भूलें और चारित्रिक दोष

नेपोलियन के पतन में स्वयं उसके द्वारा की गयीं भूलों और उसके चरित्र के कुछ दोषों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। नेपोलियन आत्मकेंद्रित और अति महत्वाकांक्षी था तथा एक प्रबुद्ध तानाशाह की भंाति कार्य करता था। वह अपने को केन्द्र में रखकर ही सम्पूर्ण विश्व को देखता था। फ्रांस का सम्राट बनने के पश्चात वह विश्व विजय के स्वप्न देखने लगा था। उसकी इस प्रवृत्ति ने यूरोप के सभी देशों को उसका शत्रु बना दिया था।

वह दंभी प्रवृति का होने के साथ-साथ स्वार्थी तथा निम्न मध्य वर्गीय कुंठाओं से ग्रस्त था। सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात उसने जनता की इच्छा की अवहेलना करना प्रारम्भ कर दिया था। अपने कार्य में उसे किसी का हस्तक्षेप पसन्द नहीं था। उसने अपने स्वतंत्र विचारों वाले परामर्शदाताओं रौद्रे, शाप्ताल, तालिरां और फूशे के स्थान पर साधारण योग्यता वाले तथा केवल उसकी आज्ञा मानने वाले व्यक्तियों को नियुक्त किया। उसके स्वभाव के कारण ही फूशे, तालिरां आदि उसके विरूद्ध षडयन्त्र करने लगे थे।

नेपोलियन ने अपने सभी भाई बहनों और करीबी रिश्तेदारों को योग्य न होते हुए भी उच्च पदों पर स्थापित किया। उसका परिवार राजाओं का परिवार कहा जाता है। जेम्स केम्बल के अनुसार वह अपने परिवार के लोगों के लिए शासन स्थलों का इस तरह वितरण करता था मानो क्रिसमस के दिन उपहार बांट रहा हो। उसने अपने भाईयों को होलैण्ड, स्पेन और वेस्टफेलिया में, सौतेले पुत्र को उत्तरी इटली में, बहन को टस्कनी में, बहनोई को दक्षिण इटली में शासक नियुक्त किया था। अपने पुत्र की उत्पत्ति के पश्चात नेपोलियन ने शिशु पुत्र को रोम का राजा बना दिया था। नेपोलियन के इन सम्बन्धियों ने उससे लाभ तो उठाया, परन्तु संकट के समय उसका साथ नहीं दिया।

नेपोलियन की उन्नति का आधार सैनिकवादी नीति थी। उसने सैन्य बल द्वारा ही सब कुछ प्राप्त किया था और सम्राट बनने के पश्चात भी वह निरन्तर युद्ध में व्यस्त रहता था। अपने जीवन काल में उसने लगभग चालीस युद्ध लड़े। उसने फ्रांस की राष्ट्रीय भावनाओं को सैन्यवाद में परिवर्तित कर दिया था। उसने क्रान्ति की उपलब्धियों और राष्ट्रवादी तत्वों की अवहेलना भी की। फ्रांस में प्रेस पर प्रतिबन्ध लगाना तथा कुछ पुरातन संस्थाओं की पुनर्स्थापना आदि उसके

कार्यों ने जनता में असन्तोष उत्पन्न किया। यूरोप के अन्य देशों में भी उसने पहले तो क्रान्तिकारी तत्वों का प्रसार किया, किन्तु फिर फ्रांस की सर्वोच्चता का सिद्धान्त स्थापित करके वहाँ उठ रही राष्ट्रीयता की भावना को दबाना चाहा। सम्पूर्ण यूरोप यह मानने लगा कि नेपोलियन व्यक्ति और राष्ट्र दोनों की स्वतंत्रता का विरोधी है।

उसने अपने जीवन काल में कई गलतियाँ कीं। प्रायद्वीपीय युद्ध, महाद्वीपीय योजना, पोप को बन्दी बनाना, रूसी अभियान, शत्रु को कम समझना, विस्तारवाद और युद्ध की नीति पर चलते रहना, फ्रांस के आधुनिकीकरण और आर्थिक औद्योगिकीकरण की उपेक्षा करना- ऐसे कारण थे, जिनके लिए वह स्वयं उत्तरदायी था और जो उसके पतन के प्रमुख कारण बने। स्पेन की शक्ति को कम समझना, मास्को अभियान में भीषण सर्दी में अधिक देर तक रूकना, प्लेसविज का युद्ध विराम, वाटरलू के युद्ध के समय आक्रमण में देरी करना आदि नेपोलियन की भंयकर भूलें थीं। आर्थिक रूप से सशक्त और शक्तिशाली नौसैनिक बेड़े से युक्त इंग्लैण्ड के विरूद्ध उसका अति और अव्यवहारिक प्रतिरोध भी उसके पतन में सहायक बना।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नेपोलियन ने किन घटनाओं को स्वयं अपने पतन का कारण माना ?
2. प्रायद्वीपीय युद्ध और उसके प्रभावों का वर्णन कीजिए।
3. नेपोलियन के रूसी अभियान पर टिप्पणी लिखिए।
4. नेपोलियन के चतुर्थ गुट के साथ संघर्ष का वर्णन कीजिए।
5. नेपोलियन का चरित्रगत दोष और उसकी भूलें उसके पतन के प्रमुख कारण थे। स्पष्ट कीजिए।

16.10 मूल्यांकन

16.10.1 फ्रांस की क्रान्ति के परिणाम और प्रभाव

फ्रांस की क्रान्ति एक युग परिवर्तनकारी घटना थी। जीवन का कोई भी क्षेत्र उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। फ्रांस की क्रान्ति के प्रमुख नेताओं चाहे वह उदारवादी ला फायते, एबे सिए आदि हों या उग्रवादी मारा, ब्रीसो, कार्नो, दांते, मिराबो, राब्सपियर आदि सभी ने फ्रांस की क्रान्ति के सिद्धान्तों के लिए प्रतिक्रियावादियों से संघर्ष किया और फ्रांस में पुरातन व्यवस्था का अन्त कर एक नए युग का सूत्रपात किया। नेपोलियन भी सम्राट बनने के बाद फ्रांस की क्रान्ति के सिद्धान्तों की अवहेलना नहीं कर सका। फ्रांस की क्रान्ति ने पुरातन व्यवस्था का अंत कर दिया। सामन्ती व्यवस्था और विशेषाधिकारों का अन्त करके समानता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। मानवाधिकारों की घोषणा ने इस तथ्य पर जोर दिया कि कानून जनसाधारण की सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति मात्र है। क्रान्ति ने राजा के दैवीय अधिकार के सिद्धान्त का अन्त कर दिया और लोकप्रिय सम्प्रभुता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। क्रान्तिकाल में समाज में कृषि दासता और निरंकुशता का अन्त हुआ, नागरिक स्वतंत्रता का उदय हुआ तथा राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ। फ्रांस की क्रान्ति ने चर्च के पुराने स्वरूप को समाप्त कर धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना की। शिक्षा को भी चर्च के बन्धन से मुक्त करके राष्ट्रीय और धर्मनिरपेक्ष बनाया।

क्रान्ति के सिद्धान्तों स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व की भावना ने न केवल फ्रांस वरन् सम्पूर्ण यूरोप को प्रभावित किया। नेपोलियन की सेना के साथ यूरोप के देशों में क्रान्ति के सिद्धान्त पहंुचे और वहां की जनता को स्वतंत्रता और समानता हेतु संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया। यूनान का स्वतंत्रता संग्राम को क्रान्ति के सिद्धान्तों से ही बल मिला। इटली के राज्यों में एकीकरण की भावना का प्रसार हुआ। राष्ट्रीयता की भावना से जर्मनी के छोटे-छोटे राज्य भी प्रभावित हो जर्मनी के एकीकरण के लिए प्रयासरत हुए। इंग्लैण्ड में फ्रांस की क्रान्ति का स्वागत किया गया। मानव अधिकारों के घोषणापत्र से वहाँ के साहित्यकार वर्डसवर्थ, कालरिज, वायरन, शैली आदि प्रभावित हुए। थामस पेन ने फ्रांस की क्रान्ति को एक शुभ सन्देश बताया। इंग्लैण्ड के शासकों को फ्रांस की क्रान्ति के प्रभाव को अपने देश में फैलने से रोकने के लिए समाचारपत्रों, हड़तालों आदि पर प्रतिबन्ध लगाने पड़े। एडमंड बर्क आदि कुछ लेखकों ने क्रान्ति का विरोध किया। क्रान्ति के बाद यूरोप के शासक प्रतिक्रियावादी बन गये तथा उनका उद्देश्य क्रान्ति के प्रसार को अपने क्षेत्र में रोकना था।

16.10.2 नेपोलियन का मूल्यांकन और उसके युग का महत्व

नेपोलियन की गणना आधुनिक युग के महान व्यक्तियों में होती है। वह आधुनिक युग का सबसे विवादास्पद और चर्चित व्यक्ति था। इतिहास पर जितना नेपोलियन पर लिखा गया उतना किसी अन्य व्यक्तित्व पर नहीं। डच इतिहासकार पीटरलिज ने नेपोलियन के मूल्यांकनों की व्याख्या एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पुस्तक 'नेपोलियनः पक्ष और विपक्ष' में प्रस्तुत की है। इससे पता चलता है कि कुछ इतिहासकारों ने उसको भगवान और युगनिर्माता मानकर उसकी अतिशय प्रशंसा की है, तो कुछ ने उससे अत्यधिक नफरत प्रदर्शित करते हुए उसे दुष्ट और शैतान तक सिद्ध किया है। इतिहासकार फिशर ने लिखा है-'सम्भवतः सम्पूर्ण मानव इतिहास में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं हुआ जिसको अपने समय में इतनी प्रशंसा, विरोध और घृणा प्राप्त हुई हो।'

नेपोलियन असाधारण बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न, आत्मविश्वासी, निर्भीक और उच्च स्तर का बुद्धिमान एवं शिक्षित व्यक्ति था। उसने अपनी योग्यता एवं क्षमता से अपनी उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया था और फ्रांस का सम्राट पद प्राप्त किया था। परन्तु अपनी अति महत्वाकांक्षी और दंभी प्रवृत्ति के कारण उस साम्राज्य को कायम रखने में वह असमर्थ रहा। अपनी असाधारण विजयों से सम्पूर्ण यूरोप पर प्रभाव स्थापित करके उसने फ्रांस के सम्मान को उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचा दिया था। लेकिन उसके कुछ युद्धों ने ही उसका अन्त कर दिया। कुछ इतिहासकार उसे परिस्थितियों की देन मानते हैं, परन्तु ग्रान्ट और टेम्परले के अनुसार- 'नेपोलियन एक असाधारण चरित्र और योग्यता वाला व्यक्ति था, जो किसी भी देश में, किन्हीं भी परिस्थितियों में उन्नति की चरम सीमा पर पहुंच सकता था।'

अपने सैन्य संचालन में नेपोलियन ने दूरदर्शिता और गतिशीलता का परिचय दिया था। युद्ध में स्थितियों और युद्धक्षेत्र का अध्ययन करना, युद्ध की लागत को धन या अस्त्र-शस्त्र के साथ-साथ सैनिकों की संख्या के आधार पर निर्धारित करना, व्यक्तिगत रूप से जोखिम उठाना आदि उसकी रणनीति के अंग थे। लेकिन नवीन अविष्कारों और नौसेना के संगठन में उसने अधिक रूचि नहीं दिखायी। कैम्पोफार्मिया की सन्धि उसकी कूटनीतिक उपलब्धि थी।

आमियां से टिलसिट की सन्धि तक उसके विजय अभियान फ्रांस के इतिहास का सबसे सुनहरा अध्याय है। वह फ्रांस को सर्वोच्च बनाना चाहता था, लेकिन स्वयं सर्वशक्तिमान की तरह प्रतिष्ठित रहकर।

नेपोलियन एक प्रशासक के रूप में भी असाधारण था। उसकी विधि संहिता, पोप के साथ किए हुए धार्मिक समझौते तथा शिक्षा व्यवस्था में उसकी उच्चकोटि की राजनीतिज्ञता प्रकट होती है। उसने विजित क्षेत्रों का प्रशासन व्यवस्थित और पुनर्गठित किया। उसके द्वारा निर्मित कानून, शिक्षा और प्रशासनिक व्यवस्था आज भी थोड़े से परिवर्तन के साथ फ्रांस में ही नहीं वरन् अन्य देशों में भी विद्यमान है। वह एक सफल संवाददाता भी था। उसके प्रकाशित पत्रों, डायरियों और संस्मरणों से उसकी सृजनात्मक शक्ति का पता चलता है।

नेपोलियन ने यूरोप के पुरातन राजतंत्रों के स्थान पर वर्गहीन प्रगतिशील शासन का आदर्श प्रस्तुत किया। उसने सामाजिक समानता पर अत्यधिक बल दिया, किन्तु स्वतंत्रता की भावना का दमन किया। वह फ्रांस में अत्यधिक लोकप्रिय था और अन्य यूरोपीय देशों में उतना ही अलोकप्रिय था। इतिहासकार स्लोन ने उसका मूल्यांकन करते हुए लिखा है- 'वह क्रान्ति का दमन करने वाला, मध्यवर्गीय शासक, साम्राज्यवादी जनतांत्रिक, सर्वोच्च नेता, नागरिक सुधार वाला और परिस्थितियों का शिकार था। उसकी प्रतिभा के आयाम निस्सीम थे पर उसे शैतान की किस्मत मिली थी।' नेपोलियन की मृत्यु हो जाने पर भी उसके असाधारण कार्यों की स्मृतियों को फ्रांस की जनता भुला न सकी। लुई फिलिप को उसके अवशेष सेंट हेलेना से मंगाकर पेरिस में दफन कराने पड़े। उसकी स्मृतियों के प्रभावस्वरूप नेपोलियन परम्परा की स्थापना हुई, जिससे भविष्य में फ्रांस में दूसरे नेपोलियन का साम्राज्य स्थापित हुआ।

उसकी विजयों ने नवीन यूरोप की पृष्ठभूमि का निर्माण किया। उसके सुधारों ने पुरातन व्यवस्था की जड़े नष्ट कर दीं। नीदरलैण्ड, राइन प्रदेश तथा इटली का अधिकांश क्षेत्र, जो नेपोलियन के प्रत्यक्ष अधिकार में था, की प्रशासनिक व्यवस्था समानता पर आधारित थी। नेपोलियन के पश्चात इन क्षेत्रों की जनता पुनः कुलीन और सामन्तवादी व्यवस्था को स्वीकारने को तैयार नहीं हुयी और संघर्ष का दौर प्रारम्भ हुआ। नेपोलियन के अधीनस्थ राज्यों में सामन्तवाद तथा अर्द्ध दास प्रथा समाप्त कर दी गईं तथा धार्मिक सहिष्णुता और प्रजातन्त्रीय शासन के सिद्धान्त स्थापित हुए।

नेपोलियन युग की सबसे बड़ी देन थी- राष्ट्रीयता की भावना का विकास। उसने इटली और जर्मनी के राज्यों की जो व्यवस्थायें कीं, उससे इन राज्यों में राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत हुयी। उसकी साम्राज्यवादी और निरंकुश प्रवृत्ति के प्रतिक्रियास्वरूप प्रशा, स्पेन, नार्वे, स्वीडन, नेपल्स आदि में राष्ट्रीयता की भावना विकसित हुयी।

नेपोलियन युग में समानता की भावना के प्रसार ने मध्यम वर्ग की शक्ति में वृद्धि की और अगले वर्षों में यह मध्यम वर्ग ही उदारवादी, प्रजातान्त्रिक तथा राष्ट्रवादी तत्वों के संवाहक बना। नेपोलियन के पश्चात इन तत्वों का पुरातनवादी और राजतंत्रवादी शक्तियों से संघर्ष का युग प्रारम्भ हुआ।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. फ्रांस की क्रान्ति के प्रभावों पर टिप्पणी लिखो।
2. नेपोलियन आधुनिक युग का सबसे विवादास्पद व्यक्तित्व था, समीक्षा कीजिए।
3. .नेपोलियन की फ्रांस और यूरोप को प्रमुख देन क्या रहीं, उनका महत्व बताइये।

16.11 सारांश

फ्रांस की क्रान्ति पुरातन व्यवस्था के विरूद्ध थी। विशेषधिकारों के आधार पर विघटित और विषम समाज, कमजोर नेतृत्व और अक्षम शासन व्यवस्था, राज्य की दयनीय आर्थिक स्थिति और बौद्धिक चेतना का मध्यम वर्ग में विकास आदि क्रान्ति के प्रमुख कारण थे। इन परिस्थितियों में अकाल और शासकों के अनियंत्रित खर्चों ने वित्तीय संकट उत्पन्न कर दिया। इससे निपटने के लिए जब सामन्त वर्ग पर कर लगाने का प्रस्ताव रखा गया तो सामन्तों ने इसका विरोध किया और कहा नया कर लगाने का अधिकार प्रतिनिधि सभा स्टेटस जनरल को है। सामन्तों ने स्टेटस जनरल बुलाने की मांग रखी, इसके साथ ही क्रान्ति का प्रारम्भ हुआ।

स्टेटस जनरल का प्रथम सदन पादरियों का, द्वितीय सदन सामन्तों का तथा तृतीय सदन जनसाधारण का प्रतिनिधित्व करता था। तृतीय सदन ने सदस्यों की संख्या के आधार पर मत गणना हेतु संयुक्त अधिवेशन की मांग रखी, जिसे राजा द्वारा अस्वीकार करने पर तृतीय सदन ने टेनिस कोर्ट में सभा कर अपने को राष्ट्रीय सभा घोषित कर दिया। अंततः 27 जून को तीनों सदनों को एक साथ बैठने की अनुमति के साथ राष्ट्रीय सभा को वैधानिक मान्यता मिल गयी। राष्ट्रीय सभा ने संवैधानिक राजतंत्र स्थापित करने के लिए संविधान बनाने की घोषणा की। राजा ने दमन करने का प्रयास किया तो पेरिस की भीड़ ने क्रान्ति का नेतृत्व किया और 14 जुलाई को बास्तील के दुर्ग को नष्ट कर दिया। तत्पश्चात समस्त देश में क्रान्ति फैल गयी। अगले दो वर्षों तक राष्ट्रीय सभा ने सामन्तवाद का पतन, मानवाधिकारों की घोषणा, चर्च के अधिकारों में कटौती, मठों का अन्त, आर्थिक सुधार आदि कार्य किया तथा फ्रांस के लिए 1791 के नये संविधान का निर्माण किया। नये संविधान के आधार पर व्यवस्थापिका सभा का गठन हुआ। इस सभा में विभिन्न दलों के लोग निर्वाचित हुए, लेकिन गणतंत्रवादियों का प्रभाव बढ़ता गया। कई राजतंत्र समर्थक विदेश भाग गए और क्रान्ति के विरूद्ध विदेशी शक्तियों की सहायता से षड़यन्त्र रचने लगे। संवैधानिक राजतंत्रात्मक व्यवस्था में व्यवस्थापिका सभा द्वारा लिए गए निर्णयों पर राजा द्वारा हस्ताक्षर न करने तथा उसके विदेश भागने का प्रयास करने से क्रान्तिकारी नाराज हो गए। आस्ट्रिया और प्रशा के धमकी देने पर क्रान्तिकारियों ने राजा को देशद्रोही माना और उसे पद से निलम्बित कर दिया। फ्रांस विदेशी युद्धों में फंस गया। व्यवस्थापिका सभा ने फ्रांस में गणतंत्रात्मक शासन स्थापित करने के लिए 1792 का संविधान बनाया।

1792 के संविधान के द्वारा व्यवस्थापिका सभा के स्थान पर फ्रांस का शासन रराष्ट्रीय कन्वेंशन के अधीन हो गया। प्रारम्भ में गणतंत्रवादी उदार दल जिरोंदिस्त शासन में प्रभावी था। इसने फ्रांस में कई सामाजिक और आर्थिक सुधार किए। राजा पर मुकदमा चलाकर उसको मृत्यु दण्ड दिया, जिससे यूरोप के अन्य देश इंग्लैण्ड, हालैण्ड और स्पेन भी प्रशा और आस्ट्रिया के साथ फ्रांस के विरूद्ध युद्ध में शामिल हो गए। उग्रवादी जैकोबिनों ने अक्षमता का आरोप लगा जिरोंदिस्त को सत्ता से बाहर कर दिया और आतंक का राज्य स्थापित किया। हजारों लोंगों को गिलोटिन पर चढ़ा दिया गया। अंत में जनता के विद्रोह के द्वारा आतंक के शासन का अन्त हुआ। उदारवादियों ने 1795 का संविधान बनाया, जिसके आधार पर फ्रांस में निदेशक मण्डल का शासन स्थापित हुआ। उनके भ्रष्ट शासन में फ्रांस में पुनः अराजकता का माहौल हो गया। इस दौरान विदेशी सेनाओं को पराजित करके सेनापति नेपोलियन फ्रांस में लोकप्रिय हो गया था।

1799 में उसने निदेशक मण्डल का पतन कर सत्ता पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार फ्रांस में नेपोलियन युग का सूत्रपात हुआ।

फ्रांस की क्रान्ति से उत्पन्न परिस्थितियों का लाभ उठाकर नेपोलियन बोनापार्ट ने अपनी असाधारण योग्यता और प्रतिभा के बल पर एक साधारण सैनिक से उन्नति करके फ्रांस के सम्राट का पद प्राप्त किया था। क्रोसिया के अजासियो नगर में एक साधारण इतालवी परिवार में उत्पन्न नेपोलियन बोनापार्ट की शिक्षा फ्रांस में ब्रीन के सैनिक विद्यालय में हुयी। 16 वर्ष की आयु में वह लेफ्टीनेंट जनरल बन गया। तूलों के युद्ध में अंग्रेजी बेड़े को पराजित करना, उसके जीवन की पहली बड़ी उपलब्धि थी। इससे उसे फ्रांस की सेना में ब्रिगेडियर जनरल का पद प्राप्त हुआ। पेरिस में राष्ट्रसभा के विरूद्ध हुए विद्रोह का दमन करने में उसने जो योग्यता दिखायी, उससे प्रभावित हो उसे सेनाध्यक्ष बना दिया गया। डायरेक्टरी शासन के दौरान उसे फ्रांस के विरूद्ध बने गुट का अन्त करने का दायित्व सौंपा गया। उसने लोदी, आरकोल और रिवोली के युद्धों में आस्ट्रिया को पराजित किया। तत्पश्चात उसने मिश्र और सीरिया पर आक्रमण किया, परन्तु नील नदी के युद्ध में अंग्रेज कमांडर नेल्सन से पराजित होकर फ्रांस लौट आया।

नेपोलियन की प्रारम्भिक सफलताओं ने उसे फ्रांस में अत्यन्त लोकप्रिय बना दिया था, जिसका लाभ उठाकर उसने डायरेक्टरी के विरूद्ध षडयन्त्र रचा और कौंसिल शासन की स्थापना की। डायरेक्टरी के भ्रष्ट शासन से त्रस्त जनता ने प्रथम कौंसिल के रूप में उसको स्वीकार कर लिया और 1802 में जनमत संग्रह द्वारा उसे जीवन पर्यन्त प्रथम कौंसिल बना दिया गया। इस प्रकार नाममात्र के गणतंत्रात्मक शासन में नेपोलियन की निरंकुश सत्ता स्थापित हुयी। प्रथम कौंसिल बनते ही उसने फ्रांस के विरूद्ध बने द्वितीय गुट का अन्त करने के लिए आस्ट्रिया को मोरेंगा में पराजित किया और इंग्लैण्ड के साथ आमियां की सन्धि की।

प्रथम कौंसिल बनने के पश्चात नेपोलियन द्वारा किए गए सुधारों को उसकी स्थायी उपलब्धि के रूप में देखा जा सकता है। उसने प्रशासन का केन्द्रीकरण किया, पोप से समझौता करके एक धर्मनिरपेक्ष राज्य की नींव डाली, आर्थिक सुधार कर फ्रांस की आर्थिक दशा को स्थायित्व प्रदान किया और शिक्षा व्यवस्था में सुधार किया। परन्तु नेपोलियन का सबसे प्रमुख कार्य कानूनी संहिता का संकलन था, जो आज भी न केवल फ्रांस में वरन् यूरोप के अन्य देशों में भी थोड़े सुधार के साथ प्रचलित हैं।

सन् 1804 में नेपोलियन जनमत संग्रह कराकर फ्रांस का सम्राट बन गया। अपनी अति महत्वाकंाक्षी और साम्राज्यवादी नीति के तहत वह यूरोप पर सर्वव्यापी राज्य स्थापित करने का स्वप्न देखने लगा। फ्रांस के विरूद्ध बने तृतीय गुट का अन्त करने के लिए हुए संघर्ष में सबसे पहले उसका इंग्लैण्ड के साथ ट्रैफेलगर का युद्ध हुआ, जिसमे उसकी सेना पराजित हुयी। नेपोलियन ने तुरन्त बाद आस्ट्रिया पर आक्रमण कर उसे आस्टरलित्स के युद्ध में पराजित किया। इस युद्ध से इटली के अधिकांश क्षेत्र पर उसका अधिकार हो गया। नेपोलियन ने पवित्र रोमन साम्राज्य का अंत और राइन संघ की स्थापना की। तत्पश्चात प्रशा और रूस को पराजित किया। रूस के साथ की गयी टिलसिट की सन्धि के समय वह अपने उन्नति के शिखर पर था।

सन् 1807 के पश्चात उसके युद्ध और कार्यों विशेषरूप से इंग्लैण्ड के विरूद्ध महाद्वीपीय व्यवस्था और उसके परिणामस्वरूप यूरोप के अन्य देशों के साथ उसके कटु सम्बन्धों ने उसे पतन की ओर अग्रसर कर दिया। पुर्तगाल पर अधिकार, स्पेन से प्रायद्वीपीय युद्ध में पराजय, मास्को अभियान की असफलता, यूरोप में फैलती तीव्र राष्ट्रीयता की भावना ने नेपोलियन की सत्ता को अंत के निकट पहुँचा दिया। उसके विरूद्ध यूरोपीय राष्ट्रों ने चतुर्थ गुट की स्थापना की और 1813 में लिप्जिग तथा 1814 में लाओं के युद्ध में नेपोलियन को पराजित कर दिया। पराजित नेपोलियन को फाउन्टेनब्ल्यू की संधि के अनुसार एल्बा द्वीप का शासक बनाया गया। 1815 में नेपोलियन पुनः फ्रांस लौट आया और 100 दिन शासन करने के पश्चात मित्र राष्ट्रों की सेना द्वारा वाटरलू के युद्ध में बुरी तरह पराजित हुआ। उसे सेंट हेलेना के द्वीप में बन्दी बना दिया गया। इस प्रकार नेपोलियन और उसके युग का अन्त हुआ।

फ्रांस की क्रान्ति और नेपोलियन के युग में फ्रांस यूरोपीय राजनीति की धुरी बन गया था। क्रान्ति के सिद्धान्तों ने सम्पूर्ण यूरोप को प्रभावित किया। यूरोप के कई देशों में राष्ट्रीयता का विकास और पुरातन प्रथाओं का अन्त हुआ और एक नवीन यूरोप का उदय हुआ।

16.12 तकनीकी शब्दावली एवं प्रमुख कथन

- सान्ज क्यूलोत- नगर के छोटे दुकानदार, कारीगर, मजदूर और गरीबों का समूह।
- गिलोटिन-मृत्यु दण्ड देने के लिए प्रयुक्त यंत्र।
- कूप द इतात- राज्य पर अथवा शासन सत्ता पर शक्ति अथवा छल से अधिकार करना अथवा हिंसात्मक क्रान्ति द्वारा सरकार को पलट देना।
- कम्यून-फ्रांस में शासन की न्यूनतम इकाई, नगर सभा।
- ब्रूमेयर- कोहरा पड़ने का माह ''22 अक्टूबर से 20 नवम्बर तक'', फ्रांस मे 1793 से 1806 तक प्रयोग में लाए गए कैलेण्डर का माह।
- 'मुझे फ्रांस का राजमुकुट धरती पर पड़ा मिला और तलवार की नोंक से मैंने उसे उठा लिया।'- नेपोलियन बोनापार्ट
- 'फ्रांस के लोग समानता चाहते हैं, स्वतंत्रता नहीं।'- नेपोलियन बोनापार्ट
- 'मेरे कानूनों का संग्रह मेरी विजयों से अधिक स्थायी रहेगा।'- नेपोलियन बोनापार्ट
- 'स्पेनी नासूर ने मेरा विनाश कर दिया।'- नेपोलियन बोनापार्ट
- 'नेपोलियन के पतन के नाटक में तीन दृश्य मास्को, लिप्जिग तथा फाउन्टेनब्ल्यू प्रमुख हैं। वाटरलू इस नाटक का उपसंहार है।'- इतिहासकार फिशर

16.13 स्वमूल्यांकित प्रश्न के उत्तर

इकाई 16.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न

1. देखिए **16**.3.1

2. देखिए **16**.3.2 और **16**.3.3

3. देखिए **16**.3.4में दूसरा पैरा

इकाई **16**.4 के स्वमूल्यांकित प्रष्न

1. देखिए **16**.4.3

2. देखिए **16**.4.4

3. देखिए **16**.4.5

इकाई **16**.5 के स्वमूल्यांकित प्रष्न

1. देखिए **16**.5.1
2. देखिए **16**.5.2
3. देखिए **16**.5.3

इकाई **16**.6 के स्वमूल्यांकित प्रष्न

1. देखिए **16**.6.4
2. देखिए **16**.6.3
3. देखिए **16**.6.5

इकाई **16**.7 के स्वमूल्यांकित प्रष्न

1. द्वितीय गुट में आस्ट्रिया, इंग्लैण्ड, रूस, तुर्की, नेपल्स तथा पुर्तगाल आदि देश सम्मिलित थे।
2. देखिए **16**.7.3

इकाई **16**.8 के स्वमूल्यांकित प्रष्न

1. देखिए **16**.8 का द्वितीय पैरा
2. देखिए **16**.8.2
3. देखिए **16**.8.5

इकाई **16**.9 के स्वमूल्यांकित प्रष्न

1. देखिए **16**.9
2. देखिए **16**.9.2
3. देखिए **16**.9.4
4. देखिए **16**.9.6 एवं **16**.9.7
5. देखिए**16**.9.8

इकाई **16**.10 के स्वमूल्यांकित प्रष्न

1. देखिए **16**.10.1
2. देखिए **16**.10.2

3. देखिए **16**.10.2

16.14 संदर्भग्रंथ सूची

1. थामसन, डेविड- यूरोप सिन्स नेपोलियन
2. गर्शाय, लियो- द फ्रेंच रिवोल्यूशन एण्ड नेपोलियन
3. रोज, जे. होलैन्ड- द रिवोल्यूशनरी एण्ड नेपोलियनिक एरा
4. हेज, सी.जे.एच.-ए पोलिटिकल एण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑफ मार्डन यूरोप, भाग 1एवं 2
5. फिशर, एच.ए.एल.- बोनापार्टिज्म

16.15 सहायक और उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वर्मा, लाल बहादुर-यूरोप का इतिहास,भाग-2, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली,1998
2. गुप्ता, पार्थसारथी (सम्पादक)-यूरोप का इतिहास, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली,1987
3. हेजन, सी.डी.- आधुनिक यूरोप का इतिहास (अनुवादक-सत्यनारायण दुबे)
4. केटलबी, सी.डी.एम -हिस्ट्री ऑफ मार्डन टाइम्स
5. ग्रान्ट एण्ड टेम्परले-उन्नीसवीं तथा बीसवीं सदी के यूरोप का इतिहास (अनु0-बाबूराम गुप्त)

16.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. फ्रांस की क्रान्ति के प्रमुख कारणों पर विस्तार से लिखिए।
2. फ्रांस की क्रान्ति के परिणामों और प्रभावों पर टिप्पणी लिखिए।
3. नेपोलियन बोनापार्ट के प्रथम कौंसिल के रूप में सुधार कार्यों की समीक्षा कीजिये।
4. नेपोलियन बोनापार्ट की महाद्वीपीय व्यवस्था से आप क्या समझते है? इस व्यवस्था की असफलता के कारणों का विश्लेषण करिए।
5. नेपोलियन की प्रमुख विजयों का वर्णन कीजिए, जिनके द्वारा उसने यूरोप में एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया।
6. नेपोलियन के पतन के प्रमुख कारणों की समीक्षा कीजिये।